महादेवी
विचार और व्यक्तित्व

महादेवी
विचार और व्यक्तित्व

महादेवी जी के सम्बन्ध मे विश्वम्भर 'मानव'
को लिखे गये शिवचन्द्र नागर के पत्र

शिवचन्द्र नागर, एम ए , एल-एल बी
सम्पादक मातृभूमि मराठी, दैनिक
अमरावती (महाराष्ट्र)

प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद

प्रथम संस्करण 1953
द्वितीय संस्करण 1985
तृतीय संस्करण 1986

मूल्य : सत्तर रुपये (70-00) मात्र

प्रकाशक : प्रेरणा प्रकाशन, 3 खालसा (बड़े डाकघर के पीछे), मुरादाबाद, ए
341/4, गोविन्दपुरी, कालकाजी, नई दिल्ली

मुद्रक : हिमालय मुद्रणालय, बरेली

समर्पण

प्रिय बहिन

फिलीस मेरिया को

जिन्होंने अपनी हँसी तथा आँसुओं में भाग लेने का मुझे पावन अधिकार दिया, पर मेरे आँसुओं को जो सदैव अपनी प्रेरणा और स्नेह के आँचल से पोंछती ही रहीं।

आमुख

किसी कागज पर अनजाने खीची हुई रेखाओ को यदि कोई चित्र की सँज्ञा दे दे, तो उन रेखाओ को खीचने वाला हर्ष की अपेक्षा आश्चर्य मे अधिक डूब जाएगा। 6 मई, 1949 को स्थायी रूप से प्रयाग आ जाने पर एक दिन सध्या समय चाय पीते-पीते 'मानव' जी ने मुझसे कहा तुम्हारे पत्र छपने जा रहे है। मैं समझा नही। इस पर उन्होने मुझे बताया तुम्हारे पत्र मैं नष्ट नहीं कर सका। उन सबको एक साथ पढने पर मुझे लगा उनमे अनायास ही महादेवी जी के विचारो और उनके व्यक्तित्व का एक चित्र-सा खिच गया है। यह बात सुनकर मैं चुप रह गया। पर उस समय मेरा मन उस रेखा खीचने वाले की सी अनुभूति मे डूब गया था।

मैंने तो तब भी उसे हँसी की ही बात समझी थी, पर आज तो वह बात सत्य बनकर आपके और मेरे सामने पुस्तक रूप मे आ रही है। 'मानव' जी ने अपने वे पत्र जो उन्होने इन पत्रो के उत्तर म मुझे लिखे थे, इनके साथ छपने को नही दिये। इसके लिए मैंने उनसे बहुत अनुरोध किया, पर मेरे अनुरोध को उनकी कठोरता से अन्त मे पराजित ही होना पडा। मैंने उनसे इसका कारण भी कई बार पूछा, पर मेरे प्रश्न को प्रति बार उनकी रहस्यमय मूकता से टकरा कर वापिस लौटना पडा और उनका वह मौन आज भी मेरे लिए रहस्य बना हुआ है।

ये पत्र कैसे और क्यो लिखे गये, यह बात सोचकर तो मैं स्वय आश्चर्य मे डूब जाता हूँ। सोचता हूँ जिस प्रकार कहानी कहने वाले के लिए सबसे बडी प्रेरणा सहानुभूतपूर्ण श्रोता का मिलना है, उसी प्रकार पत्र लिखने वाले के लिए सबसे बडी प्रेरणा यही है कि जिसे वह पत्र लिख रहा है उसमे उसे एक ऐसा सहानुभूतिशील मन मिल जाये जिसमे वह अपनी आवाज की प्रतिध्वनि सुन सके, अपने भावो और विचारो की प्रतिकृति देख सके और अपनी दुर्बलताओ की धरोहर विश्वासपूर्वक रख सके, जिसका व्यक्तित्व एक ऐसा दर्पण हो जो पत्र लिखने वाले की चेतना की किरणो को कुठित न कर दे, बल्कि उन्हें शत-सहस्रगुनी शक्तिशाली बनाकर लौटा दे। सौभाग्य से 'मानव' जी मे मुझे ऐसा ही मन और ऐसा ही व्यक्तित्व अनायास मिल गया था। अत इन पत्रो को लिखाने का सारा श्रेय उन्ह ही है।

इन पत्रो की केन्द्र-बिन्दु निश्चित रूप से श्रीमती महादेवी वर्मा ही रही हैं, पर उनके साथ कही कही अन्य साहित्यिको के व्यक्तित्व की भी कुछ छोटी मोटी झाँकियाँ आ गई हैं। मुझे उन साहित्यिको के व्यक्तित्व का कुछ भाग विशेष परिस्थितियों,

वातावरण और सीमाओं के अन्तर्गत ही पढने को मिला; अतः यदि मैं कोई बात उनके मन के प्रतिकूल कह गया होऊँ, तो विश्वास है वे उसे अपने विषय मे आंशिक सत्य समझकर उसे स्वीकार कर लेंगे।

जहाँ तक महादेवी जी के व्यक्तित्व और विचारो का सम्बन्ध है, वहाँ मैं तो केवल इतना ही कह सकता हूँ कि यह तो महादेवी जी के विराट व्यक्तित्व का केवल एक चित्र मात्र ही है। वह कैसा बन पडा है, यह आप लोगो के निर्णय का विषय है। जिस प्रकार वर्षा की सृष्टि मे पवन का काम खाली इतना रहता है कि वह समुद्र से जल को उड़ा कर ले आता है पर उस वाष्पीभूत जल को फिर जल-कणो मे परिवर्तित कराकर प्यासी धरा पर सुधा के मोती बरसाने का श्रेय गिरिमाला को ही है; इसी प्रकार इस पुस्तक के प्रणयन मे मेरा काम तो केवल पवन का सा ही रहा है, बाकी श्रेय तो महादेवी जी और 'मानव' जी को ही मिलना चाहिए।

इस समय तो मैं उस भोले-भाले किसान की भाँति ही मूक रहना चाहता हूँ जो अपने खेत मे लहलहाते अंकुरो को देखकर इस असमंजस मे पड जाता है कि वह इस सुन्दर उपज के लिए किस-किस का कृतज्ञ हो—समुद्र का ? हिमालय का ? पवन का ? प्रकाश का ? या धरती का ?

अपनी वस्तु के विषय मे मुझे तो कुछ भी कहने का अधिकार नही, पर 'मानव' जी ने एक दिन इसे एक ऐसे मंगल-कलश की उपमा दी थी जिसमे तीन व्यक्तियो के सुधारस की पावन त्रिवेणी का जल बंद हो। इस घट को आज आप सबके हाथो में सौंपते हुए मुझे निश्चित रूप से बडा हर्ष हो रहा है।

प्रयाग
माघ पूर्णिमा 2007

शिवचंद्र नागर

30 ए० वेली रोड,
इलाहाबाद
15/10/46

आदरणीय 'मानव' जी'

मैं यहाँ सकुशल आ गया हूँ, पर अभी मेरा मन यहाँ नही लग रहा। घर-घर ही है, बाहर बाहर ही। सोचता हूँ यदि एक दिन बाहर भी घर हो जाये तो !

सध्याएँ तो यहाँ की भी सुन्दर होती हैं, पर आप जैसे सहृदय साहित्यिक तथा साहित्य चर्चा के अभाव मे यहाँ ऐसा कुछ भी नही कि मन और प्राण थोडे से पलो के लिये भी जीवन के स्थूल धरातल से उठकर सूक्ष्म सौदर्य की आलोक सृष्टि मे विचरण कर सकें। पता नही वह कौन सा रस और कौन सी प्रेरणा थी जिससे हम दोनो महादेवी जी के काव्य और जीवन के सबध मे घटो बातें करते रहते थे—डूबे-डूबे से खोये-खोये से, और विवश होकर उठते समय यही मन करता था कि क्या ही अच्छा होता यदि इस चाय वाले को अपनी दुकान बन्द न करनी पडती। लगता है ये सध्याएं जिनकी पलको मे हमने बात-बात मे एक स्वप्नलोक का सा निर्माण कर लिया था अब नही लौटेंगी।

मैं महादेवीजी से दो बार मिलने जा चुका हूँ, पर दोनो बार ही भेंट नही हो पायी। अब तो मैंने अपना मन ऐसा बना लिया है कि जब मैं इनसे मिलने जाता हूँ तो अन्तर मे मिलने की आशा लेकर नही जाता। इसलिए यदि इनसे भेंट नही हो पाती तो उससे न तो दुख ही होता है, न क्षोभ और पछतावा ही। एक दिन जब मैं प्रयाग मे आया ही था तो विश्वविद्यालय मे अपना नाम लिखाकर सबसे पहले इन्ही से मिलने गया था। इन्होने फिर दूसरे दिन आने को कहा। दूसरे दिन गया तो तीसरे दिन की सध्या को बुलाया और तीसरे दिन सध्या को पहुँचा तो फिर चौथे दिन प्रभात के लिये कह दिया। तीसरे दिन की सध्या को जब मुझे इनसे बिना मिले लौटना पडा तो मेरी आँखों मे आँसू आ गए थे। आशा है ऐसे आँसू फिर कभी नही आयेंगे।

इस मिलने न मिलने के विषय मे अब मैंने अपना सोचने का क्रम बदल दिया है। मैं सोचता हूँ कि हम उनसे अपने सतोष अथवा अपने काम के लिये मिलने जाते हैं। ऐसे मे यदि वे नही मिलती तो हमे दुख, क्षोभ अथवा पछतावा क्यो होना चाहिये ? वे कलाकार हैं। हम बाहर खडे-खडे कैसे जान सकते हैं कि वे किस 'मूड' मे हैं। किसी से भी मिलकर बातचीत का रस और सुख इसी मे निहित है कि मिलने

वाला तथा मिलने के लिये आने वाला दोनो अपने मानसिक सामजस्य के सर्वोत्तम पलो मे हों। मेरा विचार है कि कलाकार जीवन और जगत के सौंदर्य का पारखी होने से सबसे धनी प्राणी होता है। उससे मिलकर भी यदि कोई अतृप्त-सा लौटता है तो समझ लेना चाहिये कि अवश्य ही उनकी भेंट मे कहीं असामजस्य की किरकिरी रह गयी है। और फिर मिलने के लिये कलाकार अकेला है और उससे मिलने आने के लिए अनेक, जिनमे से बहुत से तो केवल समय नष्ट करने के लिए चले आते हैं।

तीसरे दिन सध्या को इनसे बिना मिले लौटने की दुखानुभूति मे आंसू अवश्य आ गए थे, पर चौथे दिन प्रभात मे इनसे मिलकर लौटने पर जो सुखानुभूति हुई वह उस दुखानुभूति से कई गुनी थी उस मिलने को मैं भेंट नही कह सकता। वह दस-पन्द्रह मिनट का परिचय मात्र ही था। पर आज इतने दिनो बाद भी मुझे लग रहा है कि पन्द्रह मिनट का वह परिचय भी बहुतो की कई घण्टो की भेंट से बहुत मूल्यवान था।

यह बात सत्य है कि आगन्तुको से मिलने न मिलने के लिए न तो महादेवी जी का कोई सिद्धान्त ही है और न मिलने के लिए कोई नियत समय ही। यह सब उनकी सुविधा-असुविधा पर ही निर्भर करता है। कुछ भी हो, कलाकार को सामान्य व्यक्तियो के धरातल पर उतर कर सामान्य नियमो मे न तो बांधा ही जा सकता और सामान्य दृष्टि से देखा ही जा सकता है। मैं समझता हूँ कल परसो मे अवश्य ही उनसे भेंट हो सकेगी और उसी समय मैं आपकी पुस्तक का पैकेज उन्हें दे सकूंगा।

हाईस्कूल मे मैंने महादेवीजी की 'नीरजा' पढी थी। तब से पता नही क्यो अन जाने ही उनके काव्य से एक मोह सा हो गया है और उनके व्यक्तित्व के प्रति सहज जिज्ञासा-भाव को जन्म मिला है। इसके भी पूर्व वहाँ से पांच सौ मील दूर एक गांव के मिडिल स्कूल मे अपनी पाठय-पुस्तक मे मैंने इनका लिखा हुआ एक लेख 'बद्री-नारायण की यात्रा' पढा था। उसमे एक वाक्य आया था स्वर्ग के उत्तु ग चरणो से ही नरक की अतल गहराई बंधी हुई है। यह वह वाक्य है जिसने मेरा परिचय महादेवी नाम से पहले-पहले कराया था। और यह वाक्य आज भी मुझे उतना ही सारगर्भित और सुन्दर लगता है जितना आज से छह साल पहले कभी लगा था। उस समय उस गांव से मैं इस कला और साहित्य के केन्द्र प्रयाग मे पहुँचने की कल्पना भी नही कर सकता था और महादेवी जी से मिलने का तो स्वप्न भी मेरी गांव क वाता-वरण मे ढली हुई किशोरावस्था की सीमित दृष्टि के लिए अत्यन्त विशाल था। पर जीवन की महत्त्वाकाक्षा, उसके सघर्ष और शिक्षा की भूख ने मुझे यहाँ ला पटका है और मेरे लिए यह बडे सौभाग्य की बात है कि आज मैं महादेवी जैसे महान् कला-कारो के नगर मे रह रहा हू।

स्नेहाकाक्षी
शिवचन्द्र नागर

30 ए० वेली रोड,
इलाहाबाद
28/10/46

आदरणीय 'मानव' जी,

कई दिन से आप मेरे पत्र की प्रतीक्षा में होंगे, किन्तु मैं इधर महादेवी जी के उत्तर की प्रतीक्षा में था। इस बार भी उनके यहाँ कई बार जाने के उपरान्त भेंट हो सकी।

महादेवी जी के निवास-स्थान पर मैं 20 ता० की सन्ध्या को गया। परिचारक ने बताया दिन में उन्हें ज्वर आ गया था, अतः इस समय तो नहीं, पर कल सुबह को मिल सकेंगी। मैं 21 के प्रभातकाल में 9 बजे फिर गया। 20 मिनट की प्रतीक्षा के उपरान्त उनसे भेंट हो पाई। मैंने आपकी पुस्तक का पैकेज हाथ में दिया। सर्वप्रथम उन्होंने आपकी कुशल-क्षेम पूछी। मैंने कहा—ठीक है। "यह उनका नया प्रकाशन है न?" मैंने कहा, "हाँ?" पुस्तक खोली। कहा, "पत्र तो फिर पढ़ूँगी और तभी ठीक-ठीक उत्तर दूँगी।" यह कहकर पत्र और पुस्तक दोनों को सोफे के एक ओर रख दिया। मैंने पूछा, "आपका स्वास्थ्य आजकल कैसा है?" बोली, "कुछ ठीक नहीं, कभी-कभी हल्का सा ज्वर आ जाता है।" "क्या आपकी कोई नवीन रचना निकट भविष्य में देखने को मिलेगी?" "अभी तो ऐसी आशा नहीं करनी चाहिए; क्योंकि आजकल मैंने अपने स्वास्थ्य से समझौता कर लिया है।"

और तब मंगलप्रसाद पारितोषिक की बात चल पड़ी। कहने लगीं, "अपने किए हुए पर कीर्ति या पुरस्कार की बात कभी भी मेरे मन में नहीं आई। यही कारण है कि मैं अपने बारे में पढ़ती तक नहीं। कदाचित् मानव जी भी इसीलिए बुरा मान रहे हों। कुछ व्यक्तियों ने तो मुझ पर इसीलिए लिखना भी बन्द कर दिया है कि मैंने उनका लिखा हुआ कभी पढ़ा ही नहीं।" इसी प्रकार कुछ देर बातचीत चलती रही। अन्त में मेरे पूछने पर कि पत्र का उत्तर आप कब तक दे सकेंगी, बोलीं, "27 की सन्ध्या को मिलियेगा।"

आज 27 की सन्ध्या थी।

ड्राइङ्ग रूम में डाक्टर उनका परीक्षण कर रहा था। मुझे 15 मिनट प्रतीक्षा करनी पड़ी। डाक्टर आजकल उन्हें इन्जेक्शन दे रहा है। उसने बताया है कि शरीर में कैल्शियम और विटेमिन 'बी' की कमी है। एक महीने तक इन्जेक्शन लेने होंगे।

आज की बातचीत में कुछ समीपता का-सा अनुभव हो रहा था। मैंने पूछा, "आपने 'मानव' जी के पत्र का उत्तर लिख दिया क्या?"

बोली, "हाँ, तीन चार दिन हुए उनका एक पत्र और आया था। दो दिन हुये मैंने जवाब लिख दिया है।" मैंने पूछा, "आपको अपने इस गीत का अंग्रेजी अनुवाद कैसा लगा?" "दो तीन दिन से मेरी तबियत ठीक नही रही, अत मैं उसे नही देख सकी। यही मैंने 'मानव' जी को भी लिख दिया है। कल परसो को पढूँगी तो मैं आपको बताऊंगी।"

फिर 'नोआखली' के बारे मे बात चल पडी। कहने लगी, 'दो तीन दिन से मेरे मन मे एक बडी अशाति और उथल पुथल मची हुई है। बगाल तथा युक्त-प्रान्त के बुद्धिवादी वर्ग को इस समय कुछ करना चाहिए। इस समय कदाचित् इस मानसिक अशान्ति को शान्त करने के लिये मैं कुछ लिखती, पर आखो से विवश हूँ और कविता डिक्टेट कराई नही जा सकती।" फिर कहने लगी, "बगाल का स्त्री-समाज बहुत पीछे है। पर यदि वे पशुबल का शारीरिक बल से विरोध नही कर सकती, तो उन्हे आत्मिक बल से करना चाहिए। बगाली लडकियो मे कला तो है। कला की प्रवृत्ति उनमे ऐसी है कि नृत्य और सगीत बहुत जल्दी 'पिक अप' कर लेती हैं, तूलिका पर भी उनका हाथ अच्छा चलता है, पर होती हैं बिल्कुल लता जैसी।"

प्रसग को बदलते हुए मैंने कहा, "पत और निराला तो बदल गये। उन्होने अपना पथ बदल दिया, पर आप अब भी उसी पथ पर हैं।" उस पर बोली, "भाई, मैं क्या बदलती। मुझ मे कोई चीज बाहर की नही आई थी। मैंने तो आज से 10 साल पहले जो लिखा था वह आज भी सच है। पत ने कामनामय सौंदर्य पर लिखा, पर जब उन्हें जीवन की विषमता का पता लगा, तो वे बदल गये। मेरे जीवन मे तो कोई ऐसी बाहर की वस्तु थी नही। मेरा तो जो कुछ भी था, अन्तर्मुखी था। मैंने तो करुणा और स्नेह का अनुभव किया है। यदि मनुष्य करुणा को अपना धर्म बना ले और अपने स्नेह की परिधि में विश्व को समेटने का प्रयास करे तो वह जीवन मे सुखी रह सकता है।'

मैंने पूछा, "मानव जी ने 'रहस्य साधना' मे आपके सम्बन्ध मे लिखा है, 'वैदिक-काल से लेकर आज तक महादेवी जैसे असाधारण व्यक्तित्व की स्त्री लेखिका ने–ऐसी अतुल मेधाविनी दार्शनिक कवयित्री ने–इस भारत भूमि मे जन्म नही लिया।" इस कथन को यदि आप सच नही मानती तो कन्ट्राडिक्ट (Contradict) कीजिए। बोली, "मैं अपने विषय मे कुछ नही कह सकती, पर मीरा ने जो जैसा लिखा है, उसे मैं कभी भी नही पा सकती।"

इसी प्रकार डेढ घटे बातचीत हुई। महादेवी जी का 'कमल' कुत्ता और 'गोधूली' बिल्ली दोनो मर गए। एक दूसरी बिल्ली 'सुनयना' है। वह हम लोगो के बीच मे आ गई थी। पहले मेरी गोदी म आ बैठी, फिर महादेवी जी के पास जा बैठी। महादेवी जी ने बडे ही भावुक ढग से बिल्ली से बातचीत की। बोली, 'तू नही जानती सुनयना, मेरे हाथ मे दर्द है, इन्जेक्शन लगा है, पर तू क्या जाने।"

अब मैं उनसे 6 नवम्बर को मिलूँगा।

मुरादाबाद के नवीन समाचार लिखियेगा। आजकल आपकी दिनचर्या क्या है? घर पर सब कुशल-पूर्वक होंगे। मकान का झगड़ा अभी चल ही रहा है क्या?

स्नेहाकांक्षी

नागर

3

30 ए० वेली रोड

इलाहाबाद

17/11/46

आदरणीय 'मानव' जी,

पत्र आपका यथासमय मिल गया था। मैं अपनी एक कहानी 'धज्जियाँ' और दूसरा एक अनुवाद 'बड़ी बहिन' भेज रहा हूँ। 'धज्जियाँ' 'गल्प-एकादशी' के लिए है और 'बड़ी बहिन' पृथ्वीराज जी मिश्र को दे दीजियेगा। उन्होंने किसी अनुवादित कहानी को 'अरुण' में भेजने के लिये कहा था। 'धज्जियाँ' कहानी में आप संशोधन कर दीजियेगा और यदि ठीक समझें तो नाम भी बदल दीजियेगा। अपना परिचय स्वयं लिखने में संकोच तो होता है, पर आपका अनुरोध है, अतः लिखे दे रहा हूँ।

जन्म स्थान—कस्बा मीरापुर जिला मुजफ्फर नगर।

जन्म तिथि—द्वितीय चैत्र की कृष्ण पक्ष द्वितीया।

पिता का नाम—पं० विशन चन्द्र नागर।

300 वर्ष से उत्तरी भारत में आये हुये एक गुजराती परिवार में जन्म हुआ। जन्म के ठीक दो वर्ष बाद ही चैत्र कृष्ण द्वितीया को, जिस दिन सुबह को माता जी ने मेरे जन्म दिवस का उत्सव मनाया था, उसी दिन सन्ध्या को उनका सौभाग्य-सिंदूर पुछ गया, पिताजी का देहान्त हो गया। अपने पितृव्य पं० देवीचन्द्र व्यास की संरक्षता में, जो संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे, मेरा लालन-पालन हुआ और बचपन से ही उन्होंने संस्कृत के श्लोक रटा रटा कर शैशव मन में ही साहित्यिक भावनाओं का पोषण किया।

प्राथमिक शिक्षा गाँव में ही हुई, पर फिर मैं मुरादाबाद अपने बड़े भाई साहब के पास आ गया। उनका मुझ पर विशेष स्नेह था और है। गवर्नमेन्ट कॉलिज से हाईस्कूल और इंटरमीडियेट पास किया। साहित्य सम्मेलन की 'साहित्य-रत्न' परीक्षा पास की। अब प्रयाग विश्वविद्यालय में हूँ।

साहित्य

प्रणय गीत (गद्य काव्य) सन् 1944 ई० में प्रकाशित

ज्योत्स्ना (कविता) सन् 1945 ई. मे प्रकाशित
अनुवाद :
श्री के एम मुन्शी के

* 1 किसका अपराध (उपन्यास)
* 2 स्वप्न द्रष्टा (उपन्यास)
* 3 ध्रुवस्वामिनी देवी (नाटक)
* 4. शिशु और सखी (आत्म-कथा)

'गाधी अभिनन्दन ग्रन्थ' के द्वितीय सस्करण मे गुजराती विभाग का सम्पादन किया। प्रयाग विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग से प्रकाशित होने वाली 'अर्थशास्त्र मालिका' का इस समय सम्पादक हूँ।

इसमे बहुत कुछ बेकार है। कहानी सग्रह मे परिचय म लिए आवश्यक अश लें लीजियेगा।

मैंने सेवक राम को पत्र लिख दिया है। कल मैं और दो-तीन पुस्तक विक्रेताओ से मिला था। वे आपकी पुस्तक चाहते हैं पर कहते थे कि यदि आपके पास यही हो तो दे दीजियेगा। डाक खर्च देने के बाद हम कुछ पडता नही। आप बडे दिन की छुट्टियो मे किसी के हाथ 10 महादेवी की रहस्य-साधना, 10 खडी बोली के गौरव-ग्रन्थ और पाँच-पाँच 'अवसाद' और 'निराधार' भेज दीजियेगा। मुझे बहुत दु ख है कि मैं ऐक्समस की छुट्टियो मे आपके दर्शन नही कर सकूँगा।

एक लम्बे व्यवधान के बाद आज सुश्री महादेवी जी से भेंट हुई। जब मैं उनके ड्राइ ग रूम में घुसा तो एक परिवर्तन पाया। चारो कोनो पर रखी हुई मूर्तियाँ हटा दी गई थी। सामने शीशे की अलमारी में भगवान कृष्ण की त्रिभगी मूर्ति थी। एक ओर 'सरस्वती' की प्रतिमा थी। दोनो प्रतिमायें नीले पर्दो के बीच से दृष्टिगत होती थी। सामने वाली दीवार पर दो मूर्तियाँ और थी। एक महात्मा 'गाधी' की और दूसरी महात्मा 'ईसा' की। सोफे सब हटा दिये गये थे। कमरे का फर्श सुन्दर कालीनो से सजा हुआ था। एक ओर नीचे गद्दे थे और गद्दो पर सुनहरी कालीन। बैठने के स्थान के पीछे की ओर दो गोल मखमली खोल के तकिये थे। तकियो के नीचे ऐसा लगता था जैसे उन गद्दों पर दो व्यक्तियो के बैठने का स्थान हो। आगे एक फीट ऊँची टेबिल पर सुनहरी मखमली टेबुलपोश चमचमा रहा था। उस पर एक बिल्कुल सुनहरा कलमदान। कलमदान पर दो तीन सुन्दर कलम। इससे यह पता लगता है कि महादेवी का ऐस्थेटिक सेंस (Aesthetic sense) और सेंस आव प्रपोर्शन (sense of proportion) कितना बढा चढा है। सब कुछ देखकर मैंने यह अनुमान लगाया कि आज कोई बैठक होने वाली है। दो ही मिनट बाद महादेवी

* ये अनुवाद किताब महल, इलाहाबाद, से प्रकाशित हो चुके हैं।

जी आ गई । उस समय वे बिल्कुल ऐसी लग रही थी जैसे हल्के धूमिल वातावरण मे से चाँदनी हँस रही हो। बात यह थी कि उनके गले मे एक ग्रे (Grey) रग का शाल पडा था। मैं उनको प्रणाम ही कर पाया था कि हँस कर कहने लगी, "आज तो हमारी मीटिंग है।" उनकी हँसी मे और इस वाक्य में ऐसा भाव था जैसे वे कह रही हो कि आज उनके पास बातचीत के लिए अधिक समय नहीं है। फिर भी वार्तालाप का स्रोत कहीं इन विवशताओ के पाषाणो मे दब सकता था ? मैने कहा, "कौनसी मीटिंग और कब है ?" कहने लगी, "साहित्यकार ससद् की अन्तरग कार्यकारिणी की मीटिंग है आज दो बजे। पर अभी मैं गुप्त जी के साथ 'रसूलाबाद' ससद् के लिये जमीन देखने जा रही हूँ।" पहले जब मैं उनसे मिला था तो मैं गुजराती-लेखक 'स्नेह रश्मि' की पुस्तक 'स्वर्ग और पृथ्वी' के अनुवाद की पाडुलिपि महादेवी जी को दे आया था। मैं चाहता था कि साहित्यकार ससद् से यह निकले। राजनारायण महरोत्रा तो 15 प्रतिशत रॉयल्टी देना चाहते हैं। साहित्यकार ससद् लेखको की सस्था है, उनका भला चाहती है, 20 प्रतिशत कम से कम देगी। महादेवी जी ने भी मुझसे कहा था कि हम 20 प्रतिशत से कम और 30 प्रतिशत से अधिक नही देंगे। मैंने पूछा, "आपने मैन्यूस्क्रिप्ट (Manuscript) पढी ?" बोली, "हाँ, मैंने पढ ली, मैं उसे आज अन्तरग में रखूँगी और अन्तिम निर्णय एक दो दिन बाद दे सकूँगी।"

मैंने आपके पत्र के लिये कहा। कहने लगी, "बडा आश्चर्य है! मैं तो मानव जी को दो पत्र लिख चुकी। एक तीसरा रजिस्ट्रार का अलग था।" मैंने कहा, 'रजिस्ट्रार का पत्र तो उन्हें मिल गया, पर आपका कोई पत्र उन्हे नही मिला!" मैंने पूछा, "इग्लिश अनुवाद के बारे मे आपने क्या लिखा ?"

बोलीं, "मुझे कुछ अश उसका बहुत पसन्द आया। मैंने उन्हे उसके बारे मे भी लिखा था और लिखा था कि वे साहित्यकार ससद् मे भी कुछ करें।" वे आपकी सेवायें साहित्यकार ससद मे चाहती हैं। पर कह रही थी कि वे इसके नियम-बन्धन को मान सकेंगे या नही, जानती नही। मैं उन्हे इसका विधान भेज रही हू।

मैंने पूछा, "नोआखली के बारे मे अब आप क्या सोच रही हैं ?" बोलीं, "मैं चाहती हूँ कोई व्यक्ति वहाँ जाये। उसे हम आने जाने तथा वहाँ रहने की सब सुविधायें तथा खर्च देंगे। हम चाहते हैं कि वह वहाँ की दशा का निरीक्षण कर हमें कुछ मौलिक साहित्य दे ?" मैंने पूछा, "वहाँ की ऐबडक्टिड (Abducted) गर्ल्स के बारे मे आप का क्या विचार है ?" बोली, "वे तो बिल्कुल पवित्र हैं। भला सोचो तो यदि एक बुरा आदमी एक स्त्री को भ्रष्ट करता है तो यह उस स्त्री की लज्जा नहीं, यह तो मनुष्यता की लज्जा है।"

महात्मा गाधी की मूर्ति देखकर मुझे पुरानी बात याद आ गयी। मैंने पूछा, "आप कहती हैं कि जो भी मैंने लिखा है वह अपने अन्तर की बात लिखी है। मेरे

जीवन में बाहर से कुछ नहीं आया। तो फिर महात्मा गाधी पर जब वे फास्ट (Fast) कर रहे थे, 21 कवितायें और 21 चित्र क्यो बनाये ?" इस पर जरा वे रुकी, सँभली और बोली, "भाई, एक व्यक्ति पर झूठा आरोप लगाया गया हो, उसकी असत्यता सिद्ध करने के लिए उसने अपने प्राणो की बाजी लगा दी हो, वह कारावास मे बन्दी हो, ऐसी दशा में वह बाहर की वस्तु नही रह जाता, परिस्थितियो ने उसे मेरे अन्तर की वस्तु बना दिया था। वह उस समय करुणा और स्नेह का पात्र था। मैंने कभी भी गाधी पर या किसी पर कोई काव्य नही लिखा। टैगोर की मृत्यु के उपरान्त उन पर एक कविता लिखी थी। उनके जीवित रहते हुए कुछ नही।"

बातचीत मे एक जगह उन्होने यह भी पूछा कि 'मानव जी आजकल क्या कर रहे हैं ?' मैंने कहा, "अब तो केवल साहित्य-सृजन ही मे उनका समय बीतता है।" तो बोली, "बहुत ठीक है। एक व्यक्ति यदि केवल साहित्य-सृजन ही करे तो दस साल मे वह अपना एक स्थान बना सकता है। दूसरी झझटो मे फँसकर हम ऐसा नही लिख पाते जैसा लिखना चाहते है।" इस पर मैं बोला, "पर आज की अवस्था ऐसी है कि केवल साहित्य-सृजन से रोटी की समस्या हल नहीं हो सकती।" तो बाली, 'यदि लेखक स्वय ही प्रकाशक भी हो, जैसे मानव जी हैं, तो फिर उसके लिए कोई कमी नहीं।"

फिर मैंने महादेवी जी से आपकी वह 'खिलाने पिलाने' की बात कह दी। बोली, "वह आयें तो !" हम बातचीत कर ही रहे थे कि इतने मे श्री मैथिलीशरण गुप्त दो अन्य व्यक्तियो के साथ आ पहुँचे। महादेवी जी ने आगे बढकर उनका स्वागत किया। मैं महादेवी जी क पीछे था। 'गुप्त जी' को मैं प्रणाम भी न कर पाया था कि महादेवी जी मेरी ओर सकेत कर 'गुप्त जी' स बोली, "आपके एक दर्शनार्थी पहले से ही मौजूद हैं।' इस पर मैंने उन्हे प्रणाम किया। उन्होने भी बडी नम्रता से हाथ जोडे। महादेवी जी अन्दर चली गई। मै बढकर गुप्त जी के पास आ गया। बोल, "मुझे आपके दर्शन की बडी इच्छा थी। आप स्वस्थ तो है ?" उन्होने हाथ जोडे और बोले, 'ऐसे ही चलता रहता है।" मैं बोला, "अब आपकी कौन-सी नवीन कृति निकल रही है ?" बोले, "अभी कारागार मे, जेल-जीवन पर कुछ गीत लिखे थे। कदाचित् वे निकलेंगे।"

आज गुप्त जी क एक नवीन रूप मे दर्शन हुए। एक खादी की टोपी, मोटी खादी का एक कुर्ता, एक खादी की धोती वे पहने हुये थे। कुर्ते के नीचे सभवत रुई की बडी थी, हाथ मे बेंत था। दाढी मूँछ दोनो साफ थी। पर साथ-साथ क्लीन शेव भी नही थे, थोडे-थोडे बाल उग रहे थे। बाल सफेद और काले मिले-जुले गजरे थे। थोडी देर बाद ही महादेवी जी अपना हैंड-बेग लिये आ पहुँची। बाहर निकल कर ताँगे की पिछली सीट पर सुश्री महादेवी और श्री मैथलीशरण गुप्त बैठ गये। नमस्ते हुई। ताँगा एक ओर चल दिया और मैं दूसरी ओर।

पत्र आवश्यकता से अधिक लम्बा हो गया। आपका 'विजय' कब से निकलना आरम्भ होगा ? आप अपने श्वसुर साहब को अपने विचारो के अनुसार उस पत्र मे परिवर्तन करने के लिए परस्यूएड (Persuade) कीजिएगा। आपको याद होगा 'अभ्युदय' कहानी का पत्र था, पर अब बिल्कुल बदल गया। आप उसे 'नवयुग' की तरह बना सकते हैं।

आप इलाहाबाद कब आ रहे हैं? बम्बई से आपके पास पत्रो का कोई उत्तर आया क्या ? आपके मकान के बारे मे क्या रहा ? क्या कोई पेशी की तारीख पड गई है।

'गल्प-एकादशी' कब तक प्रकाशित होगी ? मैं समझता हूँ जब उसमे कुछ लेखक और बढा रहे हैं तब अब उसका नाम 'गल्प पूर्णिमा' हो जाना चाहिए।

मैं ठीक हूँ। आशा है आप भी अपने परिवार के सब सदस्यो सहित स्वस्थ तथा प्रसन्न होंगे। आपके पत्र की प्रतीक्षा करूँगा।

स्नेहाकांक्षी
शिवचन्द्र नागर '

4

30 ए० बेली रोड
इलाहाबाद
29/11/1946

आदरणीय 'मानव' जी,

कई दिन से पत्र लिखने की सोच रहा था, पर पता नही क्यों नही लिखा जा सका।

आज प्रातःकाल सात बजे सुश्री महादेवी जी से भेंट हुई।

आज उनका कमरा फिर पुराने ढग से सजाया जा रहा था। कुछ प्रतिमायें अपनेस्थान पर आ चुकी थी, पर कुछ नही। मैं कमरे मे घुसा। तीन मिनट किसी परिचारक की प्रतीक्षा मे खडा रहा। इतने मे क्या देखता हूँ कि एक पिक्चर स्टैण्ड (Picture-stand) भक्तिन आगे-आगे लिये आ रही है और दूसरा पीछे-पीछे महादेवी जी। बेचारी बुढिया भक्तिन से हलका-सा पिक्चर स्टैण्ड भी उठ नही रहा था और महादेवी जी के रुग्ण, निर्बल हाथ भी सुलभता से सहज मे ही उसे नही उठा पा रहे थे, पर फिर भी महादेवी जी और भक्तिन इस प्रकार काम मे जुटे हुए थे जैसे एक ही परिवार के सदस्य हो। आप जानते ही होंगे भक्तिन उनकी रसोई का काम करती है और 'स्मृति की रेखायें' मे पहला रेखाचित्र उसी पर है।

मुझे देखते ही महादेवी जी ने पिक्चर स्टैण्ड वही छोड दिया और उनके हाथ मेरे प्रणाम के प्रत्युत्तर मे उठ गये। वही जमीन पर कालीनों से सजे हुए सिंहासन पर

महादेवी जी अधिष्ठित हो गईं। पास ही सामने की ओर मैं बैठ गया। अपने अस्त-व्यस्त वेश में भी महादेवी महादेवी ही थी। कदाचित् अभी उन्होंने स्नान नहीं किया था पर फिर भी मैंने देखा हास्य-रश्मियाँ उनके मुख की मलीनता पर अपना कोमल आलोक डालकर उसको वैसा ही बना रही थी जैसी वे पहले लगती थी।

बातचीत आरम्भ हुई। मैंने कहा, "मैं कल मुरादाबाद जा रहा हूँ। सोचा जाने से पहले आप से मिल लूं।" "बहुत अच्छा किया तुमने। कल जा रहे हो। मुझे मानव जी को एक पत्र भी देना है। पत्र लेते जाना, आज मैं लिख रक्खूंगी।" मैंने कहा, "हाँ, जरूर लेता जाऊंगा।" फिर बोली, "आपका अनुवाद मैंने पढ लिया, "कुछ कहानियाँ बहुत अच्छी है, पर हमारी अन्तरग कार्यकारिणी यह चाहती है कि हम गुजराती के प्रतिनिधि कहानी लेखकों का एक सग्रह निकालें। आज ऐसा ही कीजियेगा।" मैंने कहा, "ठीक है, समर वैकेशन (Summer vacation) मे वैसा कर सकूंगा।" बोली, "हाँ, कीजियेगा, धीरे-धीरे करते रहियेगा।"

मैंने पूछा, "रसूलाबाद जी आप गईं थी वह साइट गुप्त जी को कैसी लगी ?" बोली, "उन्हें तो बहुत पसन्द आई पर रुपये का सवाल है, चालीस हजार रुपये चाहिए और दिसम्बर के पहले सप्ताह तक प्रबन्ध करना है।" इस पर मेरे मुंह से निकल गया, "चालीस हजार एक बहुत बडा सम (sum) है। आपने इसके लिये क्या सोचा है ?" इस पर वे जरा गम्भीर हुई। फिर बोली, "चालीस हजार बडा (sum) है तो क्या है, हम भी तो बडे आदमी है। होने को तो एक लाख रुपया भी कुछ अधिक नही होता।" मैंने कहा, "कलाप्रिय पूंजीपति चाहे तो इससे भी अधिक दे सकते हैं।" इस पर बोली, "ऐसे पूंजीपति भारतवर्ष मे कहाँ ? पूंजी तो उन व्यक्तियो के पास है जो पूंजी-पिशाच हैं। यहाँ का पूंजीपति रुपया दे सकता है, पर कलाकार को झुका कर देना चाहता है और कलाकार झुकना नही जानता।"

आज हम जमीन पर बैठे थे। मुझे आपके घर पर आकर चटाई पर बैठने की बात याद आ गई। पता नहीं कुछ ऐसी बात है जब दो व्यक्ति इस प्रकार समतल पर बैठकर वार्तालाप करते हैं तो कुछ निकटता (Nearness) का अनुभव होता है। ऐसा ही अनुभव आज मैं भी कर रहा था। आज मैंने सब चीजें बहुत पास से देखी। कलमदान चमकीले रगो से विचित्र पीतल का था। वह मयूर-पुच्छी था और दावात के दोनो कोनो पर दो मोर अपनी नृत्य-मुद्रा मे बने हुए थे। राइटिंग टेबुल (writing table) पर बिछा हुआ मेजपोश बारीक परशियन ढग का था जिसके कोनो पर फारसी मे कुछ लिखा था।

इस समय भी उन्हे 100 डिगरी बुखार था। बता रही थी सध्या को अधिक हो जाता है। ऐसी अस्वस्थ दशा मे मैंने उन्हें अधिक कष्ट देना ठीक नहीं समझा। चलती बार मैंने कहा, "आप अस्वस्थ रहती हैं और मैं आपको ऐसी अवस्था मे भी

बहुत कष्ट देता रहा हूँ। पता नही आपको बुरा तो नही लगता ? बोली, 'बुरा क्या लगता ? मैं अस्वस्थ रहती हूँ यह तो मेरा ही दोष है।'

मैंने विदा ली। कल मैं उनसे पत्र लेने जाऊँगा। जिस दिन आपको यह पत्र मिलेगा उस दिन सध्या को मैं भी मुरादाबाद पहुँच जाऊँगा। उस दिन यदि आप हमारी तरफ आयें तो घर पर भी आइयेगा, नही तो फिर दूसरे दिन प्रात काल मै आपके दर्शन करूँगा ही।

आपने लिखा है, "इतने छोटे काम के लिये झझट उठाने की आवश्यकता नहीं।" इसमे झझट की क्या बात है ? मैं अपने और आपके काम को दो समझता ही नही। यह बात मैं केवल सैद्धान्तिक रूप से ही नही कह रहा। भविष्य मे प्रयाग मे रहना चाहता हूँ। मुझे तो सदैव अपने विषय मे यही भय बना रहता है कि आपने तो अपना अमित स्नेह मुझ पर उडेल दिया है, पर कही मैं आगे चलकर कोरी मरुभूमि ही न निकलूँ। अपने काम को यदि आप झझट कहेगे या समझेंगे तो मैं समझूँगा आप मुझे अपना नही समझते।

स्नेहाभिकांक्षी

नागर

5

30 ए० वेली रोड
इलाहाबाद
30/11/46

आदरणीय 'मानव' जी,

जैसा कि कल महादेवी जी ने मुझे बुलाया था, मैं सुबह साढे सात बजे उनके यहाँ गया। पूछने पर परिचारक से पता लगा कि वे कही गई हैं, घटे भर बाद आयेंगी। मुझे चौक बाजार जाना था, अत मैं वहाँ चला गया और वहाँ से ठीक घटे भर बाद लौट आया। द्वार पर एक रिक्शा खडी थी जिससे मैंने जान लिया कि महादेवी जी जहाँ गई थी वहाँ से लौट आई हैं।

मैं प्रसन्नता से खिला हुआ चेहरा लिये हुये ड्राइग रूम मे घुसा। मेरी दृष्टि केन्द्रीय प्रधान स्थान पर अधिष्ठित सुश्री महादेवी जी पर पडी। प्रणाम किया। पास मे दो व्यक्ति और बैठे थे—एक गगाप्रसाद पाडेय और एक दूसरे व्यक्ति जिनके लम्बे लम्बे बाल थे, क्लीन शेव, रग गोरा, आँखें साधारणतया अच्छी। ये दोनो व्यक्ति चाय पी रहे थे। एक प्लेट मे गुजराती नमकीन चिउडा था, दूसरी प्लेट मे कुछ विभिन्न प्रकार की बर्फियाँ और तीसरी प्लेट म कुछ शतरे की फाँकें, बेदानी अनार के दाने और तराशे हुये सेब के टुकडे। मैं अभी बैठ भी नही पाया था कि महादेवी जी बोल

पडी, बैठो भाई चाय पियो। मैंने जरा सकुचा कर कहा, "नही रहने " मैं पूरी बात भी न कह पाया था कि महादेवी जी उठकर अन्दर चली गई। उनके अन्दर जाते ही पाडेय जी बोले, 'खाइयेगा" मैंने कहा, "हाँ, हाँ, मैं ले लूंगा।" दूसरे व्यक्ति बोले, "परिचय हो जाना चाहिये।" इस पर मैंने अपना परिचय दिया। फिर मैं पाडे जी को सम्बोधित करके बोला, "आपको मैं " दूसरे व्यक्ति की ओर सकेत कर पाडे जी ने कहा, "आप हैं इलाचन्द्र जी जोशी!" मैंने उन्हें प्रणाम किया। प्रणाम का उत्तर देने पर जोशी जी कदाचित् अपना पूरा परिचय देना चाहते थे कि पाडेय जी ने फौरन टोक दिया, "बस केवल आपके नाम की बात थी अब " मैं फौरन बोल पडा, "देखा तो मैंने आपको कई बार था और यह धारणा भी अपने मन मे बना ली थी कि आप कोई साहित्यिक हैं, पर परिचय का सौभाग्य आज ही हुआ।" मैं इतना ही कह पाया था कि महादेवी जी एक प्याला और प्लेट लिये हुए आ पहुँची और अपने स्थान पर बैठ कर चाय बनाने का उपक्रम करने लगी। मैंने चायदान की ओर हाथ बढाकर तुरन्त कहा, "नही नही, मैं स्वय बना लूंगा।" इस पर बडे ही स्नेहमय ढग मे बोली, "छोटे यह काम नही किया करते, यह काम तो घर मे मा-बहिनें ही किया करती हैं।' चायदान की ओर बढे हुए हाथ तुरन्त लौट गये और अन्दर ही अन्दर मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे कोई ऐसी चीज उन्होने इस वाक्य द्वारा दे दी हो, जो मुझे कभी किसी ने न दी थी। बात यह है कि मेरी माता जी तो हैं, पर मैं जानता नही मेरे लिये कितना स्नेह उनके हृदय मे है। मैं अपने एक बडे भाई के साथ उनसे दूर ही दूर रहता हूं। वैसे मरी बडी बहिन भी हैं, पर उनके स्नेह का भी मुझे अधिक अनुभव नहीं। पर आज मुझे ऐसा लग रहा था जैसे महादेवी जी ने मेरी माँ और बहिन दोनो का असीम स्नेह एक छोटे से वाक्य की सीमा मे बांध कर दे दिया हो। इसे सुनकर मैंने केवल मद हास्य सा बखेर दिया। एक क्षण बाद उसी बात मे योग देते हुये जोशी जी की ओर मुडकर वे बोली, 'क्या बताऊँ छोटे तो छोट है ही, पर बडे भी मेरे सामने छोटे ही हो जाते हैं। गुप्त जी बडे हैं उनके प्रति सम्मान का भाव भी है, पर जब यहाँ आते हैं तो तुम देखते ही हो किस तरह व्यवहार करते हैं, निराला जी बडे भाई है, पर बडे भाई जैसी कोई भी बात नही करते।' चाय का प्याला उन्होने मेरे सामने रख दिया था पर मैं महादेवी जी के मुख की ओर देख रहा था। अपनी बात समाप्त करते ही महादेवी जी फलो की ओर सकेत कर बोलीं, "खाओ न ' मैंने तुरन्त खाना आरम्भ कर दिया। एक दो घूंट चाय पीकर मैं बोला "मैं आठ बजे भी आया था।' "हाँ, मैं रसूलाबाद चली गई थी, जोशी जी को जमीन दिखानी थी।' यह बात वे कह रही थी, पर उनकी मुख-मुद्रा से कुछ इस प्रकार का भाव टपक रहा था जैसे निश्चित समय पर न मिलने के लिये पछता रही हो। इस पर मैं हंस कर बोला, 'मानव जी वाला वह पत्र लिख दिया क्या आपने ?" "वह पत्र तो मैं लिख ही नही सकी, किस समय जा

रहे हैं आप ?" मैंने कहा, "तीन बजे।" "इधर से आप जायेंगे ही, यदि आप उस समय लेते जायें तो अच्छा हो।" मैंने कहा, "मैं प्रयाग स्टेशन से बैठूंगा इसलिये इधर को तो आना नहीं होगा, अच्छा हो आप अभी लिख दें, मैं प्रतीक्षा करूंगा।" बोली, "अच्छा !" इसी बीच मैं पहला चाय का प्याला समाप्त कर चुका था। चायदान का पानी समाप्त हो चुका था। खाली चायदान लेकर महादेवी जी फिर अन्दर चली गईं। उनके अन्दर जाते ही पाडेय जी बोले, "आप मानव जी का कोई पत्र लाये थे क्या ?" मैंने कहा, "दो महीने हुये तब एक पत्र लाया था।" "हमे तो मानव जी मेरठ मे एक बार मिले थे," जोशी जी ने पाडेय जी की ओर मुड कर कहा। "हमने तो उन्हे एक बार देवी जी के यहाँ ही देखा था," पाडेय जी बोले। "मानव जी हैं कौन ? वे भी 'नागर' हैं क्या ?" मैंने कहा, "नही, पहले अपन नाम के आगे शाडिल्य लिखा करते थे ?"

"शाडिल्य कौन हुये ?"

"शाडिल्य ब्राह्मणों का एक गोत्र है।'

"फिर आपका उनका क्या सम्बन्ध है ?" इस प्रश्न पर मुझे जरा हँसी आई और मैं कुछ कहना ही चाहता था कि जोशी जी बोले, "अरे जैसा हमारा और आपका है, ऐसा ही होगा।" इतने मे महादेवी जी वही से हँसती हुई चाय लेकर आ गईं।

मैंने सोचा कि इस बार चाय मुझे स्वयं ही बनानी चाहिये। यह ठीक नही लगता कि महादेवी जी मेरे जूठे प्याले को हाथ से छूकर फिर उसमें चाय बनायें। मैने स्वय चाय बनाने के लिये बहुत ही आग्रह किया, पर उन्होने एक न सुनी। प्याले को हाथ से लेकर दूसरा प्याला चाय का बनाया। फिर पाडेय जी से बोली, "चाय लो।" वे बोले "अब नहीं।"

"तो क्या अब तीन प्याले लेने की आदत छोड दी ?" इस पर मैं जरा जोर से हँस पडा। मैं दूसरा प्याला पी चुका था, महादेवी जी मुझसे बोली, "और लोगे ?" मैंने बडी नम्रता से कहा, "नहीं।"

इधर-उधर की बातें चली। जोशी जी कह रहे थे, "जगह बहुत अच्छी है। जमीन आप खरीद ही लीजियेगा। चालीस हजार मे ऐसी जमीन नही मिल सकती।" पाडेय जी बोले, "पाँच हजार से कम मे तो कुआँ भी नही बन सकता।" महादेवी जी चुप रही। थोडी देर बाद बोलीं, "....... ... ने देखो रुपये नहीं भेजे।" जोशी जी बोले, "एक नम्बर झूठा आदमी है।" थोडी देर बाद जोशी जी बोले, "अच्छा अब आज्ञा दीजियेगा।" यह कह कर वे चलने के लिए उठ खडे हुये। द्वार तक महादेवी जी गईं और पीछे-पीछे मैं भी। फिर वे दोनों चले गये और हम दोनो ड्राइंङ्ग रूम मे लौट आये। अब वातावरण बिल्कुल शांत हो गया था। "अच्छा आप बैठिये, मैं अभी आती हूँ," यह कहकर वे अन्दर चली गईं। कमरे मे मैं अकेला था। मैं अपने

स्थान से उठा, कमरे मे रखी हुई प्रत्येक प्रतिमा के पास जाकर देखा। आज मैंने चोरी से महादेवी जी के कमरे का कोना-कोना देखा। उनके राइटिंग डेस्क के पास एक फाइल का गट्ठर रखा था, जो मैं समझता हूँ साहित्यकार ससद् का था। 'विशाल भारत' की कुछ फाइल्स भी थी। राइटिंग टेबल पर आज दो छोटे लाल शीशे के गुलदस्ते रखे थे जिन पर चादी के तार जड़े थे। उनमे 'रात की रानी' अपनी सुरभि कमरे मे बखेर रही थी। पाण्डेय जी तथा जोशी जी के विषय में भी मैं सोचता रहा।

मैं कमरे मे अकेला था। पन्द्रह मिनट बीत गये। इस बीच केवल कभी कभी कागज उठा कर इधर-उधर रखने की आवाज आती थी। इसी बीच कमरे से सुनयना गुजरी। मैंने उसे बुला लिया। वह बड़े प्यार से आकर मेरी गोद मे बैठ गई। मेरा अकेलापन दूर हो गया। मैं सुनयना से बातें करने लगा। सबसे बड़ी बात तो यह कि महादेवी जी के यहाँ के चित्र तथा उनके कुत्ते बिल्ली भी चेतन से प्रतीत होते हैं। उस एकाकीपन मे मौन रहते हुए भी मुझे वे बात करते से लगे। पन्द्रह मिनट तक मैं सुनयना को गोद मे बिठा उसके मुँह स मुँह मिला बातें करता रहा और वह अपनी आँखें फिरा कर मेरी बातो का उत्तर-सा देती रही। आज कमरे के लगभग सभी गुलद.न बदल दिए गये थे और आज सभी मे रजनीगन्धा सुसज्जित थी।

किसी के कुर्सी से उठने की आवाज हुई और महादेवीजी एक पत्र और एक रसीद बुक तथा कुछ और कागज लिए हुए आई और बोली, "आपको देर हो गई। होस्टल से मुझे एक शिष्या को बुलाना पडा तब पत्र लिखा गया। यह पत्र और यह विधान तो मानव जी को दे दीजियेगा और इसमे जो कुछ साहित्यिको से 'लेखक निधि' के लिए हो सके, वह एकत्र कर लेना और रसीद मे मेरी जगह तुम अपने हस्ताक्षर कर देना। फिर अपनी अन्तरग समिति का प्रस्ताव ढूँढने लगी, अँग्रेजी का मिल गया पर हिन्दी का नही मिला। बोलीं, "अग्रेजी का तो ठीक नही रहेगा, कोई देखेगा तो भला क्या कहेगा।" फिर उन्होने फाइल मे से निकाल कर हिन्दी का भी दिया। हाथ मे रसीद बुक देती हुई बोली, "जो भी लेखक दे दें वह ले लेना, घर-घर टक्कर मारते मत फिरना। तुम्हारी जा तीन कहानियाँ रह गई थी वे बहुत ढूँढने पर भी नही मिलीं, मैं ढूढ कर चपरासी के हाथ तीन बजे से पहले तुम्हारे घर भिजवा दूँगी।" मैंने कहा, "फिर भिजवा दीजियेगा जब भी आपको सुविधा हो। बोली, "अब तुम गुजराती कहानियो का सकलन कर देना, मुझे गुजराती पुस्तको की सूची दे देना, मैं मंगा लूँगी और हम यह कोठी खरीद लें तो बस एक पुस्तकालय का प्रबन्ध कर दूँ। निराला जी को बुला लूँ। एक कमरे मे आनन्द से रहेंगे। एक नौकर रख दूँगी। बस ठीक रहेगा। परीक्षा समाप्त होने पर तुम भी वही आ जाना और वही काम किया करना।' इसका मैं उत्तर क्या देता? बोला, "मेरे घर के सब आदमी मेरी मामी, मामी, मौसी इत्यादि आपके दर्शन की बहुत इच्छुक हैं मैं उनसे कहता हूँ माघ

मेले पर प्रयाग चलो तो दर्शन हो जायें, पर उनका आना नही होता। एक बार आप ही न मुरादाबाद हमारे घर चलियेगा। आप वहाँ तो कभी गई भी नहीं।" "हाँ, मुरादाबाद तो आज तक गई तो नही, देखो कभी आऊँगी। पर क्या आऊं लोग कोलाहल बहुतमचा देते हैं।" मैं बोला, "मैं किसी को भी आपके आने की सूचना नही दूँगा, पर आप आइये अवश्य।" "तो फिर कभी आऊँगी, जून मे मैं देहरादून जाया करती हूँ, वहाँ महादेवी कन्या पाठशाला मे मेरी एक मित्र हैं। वहाँ जाऊँगी तब आऊँगी।" मैंने पूछा, "आप अपने विषय मे इतनी मौन क्यो रहती है?" "भाई मै अपने विषय मे क्या कहूँ? कुछ हो तो कहूँ। लोग अपनी जीवनी लिखते हैं, पर मैं क्या लिखूँगी। मैं तो बचपन से ही भिक्षु होना चाहती थी, पर मेरी माता जी ने यह सब पसन्द नही किया। वे बोली कि यह ठीक नही। मैंने उनकी आज्ञा का पालन किया, पर फिर भी मैं अपरिग्रही रही। आज भी मुझे भगवा वस्त्र बहुत अच्छे लगते हैं। अपनी-अपनी बात है। मेरी छोटी बहिन है, वह गृहस्थी मे बहुत सुखी है। उसके सात-आठ बच्चे हैं, पर मुझे शुरू से ही यह सब अच्छा नही लगता था।" इस पर मैंने कहा, "यह तो अच्छा ही है। यदि आपको गृहस्थी अच्छी लगती तो आपके स्नेह की परिधि सकुचित हो जाती, पर आज आप उस परिधि मे समस्त विश्व को समेट सकती हैं।" मैं बोला, "मैंने सुना है, आपने किसी 'विदुषी' पत्र का सम्पादन किया है?" "नही तो, एक 'महिला' पत्र विद्यापीठ से निकलता था। उसके सम्पादक-मडल मे जरूर नाम था, चाँद का सम्पादन किया जब तक किया, पर अब तो मुझे यह अच्छा नही लगता। अब जब ससद् का पत्र निकलेगा तो उसका सम्पादन करूँगी।" थोडी देर बाद मैं बोला, "यदि मैं आपको किसी विषय पर बोलने के लिये आमन्त्रित करूँ तो आप आयेंगी?" "तुम जानते हो कि यूनिवर्सिटी तो मैं जाती नही।" मैं बोला, "नही, मैं अपनी किसी गोष्ठी मे आमन्त्रित करूँगा।" तो बोली, "देखा जाएगा, अभी तो आप ही हमारे यहाँ आते रहियेगा।" "वह तो मैं आता ही रहूँगा। जब तक आपके दर्शन नही हुए थे, तब तक मेरा आपसे 'एकलव्य' का सा सम्बन्ध था और आज ..." हँस कर बोली, "जब तुम पहली बार आए थे तो तुमने यही बात कही थी न पर मै द्रोणाचार्य नही बनूँगी। मैं अगूठा नही लूँगी। मुझे वे बडे बुरे लगते हैं।" मैं बोला, "द्रोणाचार्य तो क्रूर थे, पर आप तो वैसी नही हैं।" वे बोली, "कुछ नही भाई, अब हमारा तो समय बीत ही गया समझो, अब तो तुम लोग ही हमारे पीछे-पीछे आओगे।" "पर मुझे तो पग-पग पर यही भय बना रहता है कि पता नहीं हम आपके पद चिन्हो का भी अनुसरण कर सकेंगे या नहीं।" "ऐसी कोई बात नही" महादेवी जी ने हँस कर उत्तर दिया।

तुरन्त ही मैं बोला, "आप कही आना-जाना क्यो पसद नही करती?" जरा गम्भीर होकर बोली, "जब मनुष्य इधर-उधर फिरने लगता है तो फिर उसे वैसा ही जीवन अच्छा लगने लगता है और वह बिखर जाता है। यदि मैं जाऊं तो कही मुझे

फूलो के दो-तीन हार मिल सकते हैं, मान-पत्र मिल सकता है लोग मेरी तारीफ म लम्बे लम्बे व्याख्यान दे सकते हैं, पर जहाँ तक पास पहुँचने की बात है उनके पास जाने पर भी मैं उनके इतने अधिक पास नही पहुँच सकती जितना यहाँ मैं बैठे बैठे पहुँच सकती हूँ।'

मैंने प्रश्न किया, 'आप क्या विदेश नही जाना चाहती? 'पहले जाना चाहती थी, पाली म रिसर्च करने का मेरा इरादा था, पर पाली के विद्वान गुरु डा० की मृत्यु हो गई, अत फिर वह विचार छोड दिया। मैं बोला आप वैसे ही भ्रमण के लिए बाहर जाना पसद नही करती? बोली, 'पश्चिम मे तो जाने का कोई इरादा नही। वहाँ के आदमियो को मैं यही बहुत देख चुकी। मुझे बिल्कुल अच्छे नही लगे। कभी जाऊँगी तो चीन और तिब्बत। मैं बोला 'भारत का भ्रमण तो आपने किया होगा। बोली, "कई बार बद्रीनारायण यात्रा पैदल की है। 'अब आप बद्रीनारायण नही जायेंगी? बोली, 'अब कैलाश जाने का इरादा है। पर अब आप पैदल नहीं जा सकेंगी। 'नही यह बात नही मैं अभी इतनी दुबल नही हूँ। फिर थोडी देर देहरादून तथा मसूरी की ओर के उन स्थानो पर बात चलती रही जिनका पर्यटन मैं कर चुका हूँ।

मैंने अंग्रेजी के अनुवाद के विषय मे फिर पूछा। व बोली मुझ उसमे से कुछ बाते बहुत पसन्द आईं।' मैं बोला तो फिर मैं उनको दूसरे गीतो के अनुवाद के विषय में लिखूँगा। अपनी कवितायें या तो आप छाँट दीजियेगा या मानव जी छाँट देंगे। वे बोलीं, 'मानव जी ही ठीक से छाँट सकेंगे।

मैं बाला मानव जी ने पहल तो आने को लिखा था पर अब कुछ नही लिखा मुरादाबाद मे साहित्यिक वातावरण बिल्कुल नही। वहाँ वे बिल्कुल Oblivion में हैं। मैं उनसे इलाहाबाद आने के लिये कहता हूँ तो टाल देते हैं। हमारी ससद की जमीन का ठीक ठाक हो जाये। फिर तो प्रेस इत्यादि का काम ही इतना हो जायगा कि आप लोग ही करेंगे नही तो और करेगा कौन? आजकल मानव जी मुरादाबाद मे क्या कर रहे हैं? मैं बोला, कुछ लिखते रहते है और परिवार कितना है? उनकी माता जी हैं पत्नी हैं और दो छोटे छोटे बच्चे। पिता जी की मृत्यु दो महीने हुए तब हो गई। जरा उदास होकर बोली 'उनके कन्धो पर उत्तर दायित्व तो बहुत है। उस समय की उनकी मुख मुद्रा से पता लगता था जैसे वे कुछ सोच रही हो। सहसा बोली बहुत दर हो गई। मै उठ खडा हुआ। महादवी जी आज बातचीत म बहुत डूब गई थीं। धीरे धीरे कुछ सोचती हुई वे विद्यापीठ की ओर बढ गई।

स्नेहकाक्षी

शिवचन्द्र नागर

6

30 ए० वेली रोड
इलाहाबाद
12 / 12 / 46

आदरणीय 'मानव' जी

मैं सकुशल यहाँ कल दोपहर एक बजे आ गया। चलते समय आपके दर्शन न कर सका, इसका मुझे दुख है। हाँ, कल रात 8 बजे 'बच्चन' जी को आपका पत्र दे दिया था और आज सुबह मैं उनसे मिला भी था। उन्होंने कहा, "पत्र तो मैंने पढ लिया था, पर उसे मैं कहीं भूल आया।" आपका पता पूछ रहे थे, वह मैंने बता दिया है। कदाचित् वे आपको पत्र लिखेंगे। अभी सुश्री महादेवी जी के यहाँ नहीं जा सका। कल जाऊँगा।

यहाँ आकर जिस समय मैंने अपना सदूक खोला तो उसमे और तो सब सामान था ही, पर दो सुन्दर पैंड्स भी निकले। पहले तो मैं आश्चर्य करता रहा कि किसने चुप से रख दिये पर

सदैव आपका ही
शिवचन्द्र नागर

7

30 ए० वली रोड
15 / 12 / 46

आदरणीय 'मानव' जी

मैं 12 ता० को सुबह महादेवी जी के यहाँ गया था। उस समय वे किसी कार्य विशेष मे सलग्न थी, अत भेंट तो न हो सकी, पर मैं नोआखली सहायता के लिये मुरादाबाद लेखक निधि, आपका पत्र और अपना सदस्यता फार्म पहुँचा आया।

आज रविवार था। आठ बजे मैं वहाँ गया। महादेवी जी का कमरा फिर अपने पुराने रूप मे आ गया था। केवल नवीनता इतनी थी कि बड़े लम्बे वाले सोफे पर सब रेशमी काम वाले उपधान पड़े थे और दो छोटे सोफो पर जो दो उपधान पड़े थे उनका परिवेष्ठन तिरगा था—राष्ट्रीय ध्वजा का प्रतीक।

कमरे की सारी वस्तुओ मे ये उपधान ही सबसे अधिक आकर्षक लग रहे थे। पता नही महादेवी जी ने उन्हे अपनी राष्ट्रीय भावना के प्रतीक रूप तो नही रक्खा, क्योकि इस कमरे मे लगभग जितनी भी वस्तुयें हैं वे सब उनकी किसी न किसी भावना की प्रतीक मात्र ही हैं।

मैं कमरे मे जाकर बैठ गया। आज मेरा ध्यान सामने की दीवार वाले चित्रो पर गया। ये चित्र वैसे तो मैंने पहले भी कई बार देखे थे, पर इन्हें समझने का प्रयत्न आज तक कभी भी नही किया था। दीवार के आधे दाँये भाग मे जो चित्र है

वह तो समझ मे आ गया, एक विशाल वट वृक्ष के नीचे बुद्ध भगवान् तपस्या कर रहे हैं। किन्तु आधे वाँये भाग मे एक चित्र है, जिसमे एक सुन्दरी सो रही है, पास ही एक बालक सो रहा है, परिचारिका पखा डुलाती-डुलाती सो गई है और एक राजकुमार उस सुन्दरी तथा बालक को इस प्रकार देखता हुआ दिखाया गया है जैसे आज वह उन्हें अन्तिम बार देख रहा हो। पहले तो एकदम मेरी समझ में कुछ नही आया; पर फिर तुरन्त ही विचार उठा कि इस चित्र मे राजकुमार सिद्धार्थ अपनी जीवन-सगिनी यशोधरा और अपने बेटे राहुल को अन्तिम बार देख रहे हैं। फिर मैंने दोनो चित्रों को मिला कर देखा। फिर तो स्पष्ट एक पूरी कहानी बन गई। ऐसा लगता है जैसे यह महादेवी जी की अपनी ही कहानी हो। वे भी तो आज अपने परिवार से मोह-बन्धन तोडकर इस विश्व के विशाल वट वृक्ष के नीचे महिला विद्यापीठ के एकान्त कोने मे अपनी साधना कर रही है। उन्होने भी तो अपने काव्य में विश्व को बुद्ध की तरह करुणा का सदेश दिया है। आज मुझे इन चित्रो को देखकर ऐसा लग रहा था जैसे महादेवी जी ने अपने जीवन की पूरी कहानी इन दो चित्रों मे कह दी हो।

इतने मे किसी के आने की हलकी-हलकी चरण-चाप सुनाई दी। नीले पर्दों में से महादेवी जी बाहर आईं। आकर एक सोफे पर बैठ गईं। आज उनकी खद्दर की सफेद धोती की तिरगी कन्नी थी और जिस उपधान के सहारे वे बैठी थी वह भी तिरगे वस्त्र से परिवेष्ठित था। यह सब देखकर ऐसा लगता था जैसे अब महादेवी जी को राष्ट्र के प्रतीक तिरगे वस्त्र से अधिक अपनाव हो गया हो।

बैठने पर मैंने स्वास्थ्य के विषय मे पूछा। बोली, "बराबर मलेरिया चला जा रहा है। पता नहीं मैं कितनी कुनैन खा चुकी। डाक्टर लोग कुनैन के लिये मना करते हैं। अब कुनैन न खाऊँ, तो करूँ क्या" मैंने पूछा, "क्या टेम्परेचर प्रतिदिन हो जाता है?" बोली, "इस समय मैं ठीक हूँ। बारह बजे के बाद कुछ सर्दी सी लगेगी, फिर कुछ टेम्परेचर हो जायगा।" मैंने कहा, "आप काम भी तो बहुत करती रहती हैं। तभी तो आप स्वस्थ नहीं हो पाती?" बोली, "भाई काम न करूँ तो फिर काम कैसे चले?"

फिर कुछ मिनट तक किसी ने कुछ नहीं कहा। बोली, "आप तो मुरादाबाद से बहुत रुपया ले आये।" "हमे तो सकोच लगता है इतना कम देते हुये और आप कह रही है बहुत है" मैंने कहा। फिर हंसकर कहने लगी, "मानव जी ने इतने अधिक रुपये क्यो दिये? हमे उनकी यह बात बिल्कुल अच्छी नहीं लगी।" मैंने कहा, "नोआखाली की बात तो छोडिये उन्हे तो इस बात का बहुत दुख था कि वे ऐसे समय मे जब कि ससद् को जमीन खरीदने के लिये रुपये की आवश्यकता है वे कुछ नहीं कर सकते।" इस पर वे कुछ गम्भीर सी हो गई और बोली, "लेखक निर्धन होता है, पर फिर भी सब कुछ दे सकता है। तुमने अपना आदमी समझ कर उन पर

जोर दिया होगा, मैं उन्हे अभी लिखूंगी कि हम उनके पांच रुपये रख रहे हैं और बाकी वे लौटा लें।" यह कह कर वे फिर हँस पडी। मैंने कहा, "मैं तो पहले ही नही ले रहा था पर मैं उनकी बात लौटा नही सका। इस पर वे तो यही कहते रहे कि मुझे दुःख है, मैं कुछ भी नही दे पा रहा हूँ।"

फिर मैंने पूछा, "ससद् की सदस्यता के बारे मे आपकी क्या नीति है ? आप इसको बढाना चाहती है या नही ?" बोली, "बढाना तो चाहते है, पर हम इसे झगडे का स्थान नही बनाना चाहते, इसलिये हमने यही रक्खा है कि हर जगह के लेखको को सगठित कर हम उनका प्रतिनिधि लें जिसके द्वारा ही हम उनकी बातें सुनें। उनके लिये उसे ही बोलने का अधिकार होगा, नही तो प्रत्येक व्यक्ति यदि अपने-अपने मतभेदो के साथ यहाँ आयेगा, तो हम किस किस को समझायेंगे ? एक दो तो समझा भी सकते हैं। ऐसा हो सकता है कि हम मुरादाबाद से मानव जी को ले लें। वहाँ एक शाखा हो सकती है। वहाँ के लेखक उसमे सगठित हो सकते हैं।" मैंने पूछा, "फिर क्या वे आपके सदस्य नही होगे ?" "होगे क्यो नही पर उनकी बात उनके प्रतिनिधि द्वारा ही सुनी जायगी।" "उन पर यही विधान लागू होगा। न ?" "हाँ, यह तो होगा ही, पर प्रतिनिधि चाहे तो कुछ उपनियम भी बना सकता है। उनके शुल्क का पैसा भी रक्खे तो क्या बुराई है ? नही तो जब उन्हे रुपये की जरूरत पडेगी, यहाँ दौडना पडेगा। वह पैसा हमे रखना थोडे ही है लेखको का पैसा लेखको पर ही खर्च होगा। यदि प्रतिनिधि अपने स्थानीय लेखको मे से किसी को सहायता या प्रोत्साहन की आवश्यकता समझता है तो यह वह करेगा।" मैने कहा, "तो फिर आप सदस्यता पत्र दे दीजियेगा मैं मुरादाबाद भेज दूं।" बोली, "मैं मानव जी को लिख रही हूं।" मैंने कहा, "पत्र कही बीच मे खो जाते है। पता नही यह पत्र छोडने वाले की भूल तो नही है, अत आप या तो रजिस्टरी से भेजियेगा, नही तो आप मुझे दे दिया कीजिए। मैं छोड दिया करूंगा।" "हाँ, यह भी ठीक है।" फिर मैंने दयानन्द गुप्त वाली बात कही। सुनकर कहने लगी, "वहाँ जाकर मुझे करना क्या होगा ?" मैंने कहा, "वसत पचमी पर एक समारोह होता है। कदाचित् उसमे बुलाना चाहते हो। मैंने तो कह दिया था कि आप कोलाहल से दूर रहना चाहती है। मानव जी कह रहे थे, यदि वे न आ सकें तो गुप्त जी आ जायें।" "पर मेरे या गुप्त जी के जाने से होगा क्या ?" मैंने बडे झिझकते हुए कहा, " एक डेढ हजार रुपया हो सकता है ?' "हमे साथ मे लेकर रुपए की भीख माँगनी हो फिर तो कितना भी रुपया हो सकता है। गुप्त जी जैसे बडे आदमी को भेजा भी जाये यदि कोई बडी बात हो।" मैं बोला, "हाँ वह तो बडी लज्जा की बात है कि आप या गुप्त जी वहाँ जायें और हम लोग एक डेढ हजार रुपए से सम्मान करें।" हँसकर बोली, "मदत जी चले जायेंगे, अपना डडा कमडल उठाकर" यह कह कर बडी जोर से हँसती रही। उनके डडा कमडल शब्द के कहने के ढग पर मुझे भी हँसी आ गई और

मैंने भी उनकी हंसी मे खुलकर सहयोग दिया। मैंने बात बढायी, "एक दूसरा ढग यह हो सकता है कि हम कुछ आजीवन सदस्य बनायें।" बोली, "हाँ यह भी हो सकता है। पर वे सदस्य लेखक ही होने चाहिए। यदि कोई और सहायता देना चाहे और लेखक न हो तो सहायक सदस्य की कोटि मे आ सकता है।" "रुपए के लिए कुछ सदस्यता तो बढानी ही चाहिए।" "बोली, "यदि सदस्यता से ही रुपया एकत्रित करने की बात होती तो तीन चार हजार सदस्य बन सकते थे, पर हमे शिव जी की बारात तो नही बनानी है। हो गई दलबदियाँ और लगे लड़ने झगडने। लेखकों की दलबदियो मे मेरा थोडा सा परिचय है।" शिव जी की बारात वाली बात पर वे खूब हँसती रही। बात आगे बढ़ाते हुए बोली, "अब तो हमे यह निश्चय करना है कि किन-किन स्थानो पर शाखायें होगी। इस प्रकार शाखायें हो जाने से यह लाभ होगा कि हम अपनी बात उन तक पहुँचा सकेंगे और मान लो ससद् की कोई पुस्तक निकली तो उसकी सेल (sale) का प्रश्न हल हो सकता है।"

इस प्रकार बहुत देर तक ससद् की बातें चलती रही। फिर मैंने पूछा, "निराला जी की जयन्ती मे आप वसन्त पचमी पर बनारस तो जा ही रही होगी ?" 'मेरा कुछ ठीक नहीं। उस दिन महिला विद्यापीठ का भी तो दीक्षान्त समारोह है। महिला विद्यापीठ का भी (Foundation day) वसन्त पचमी ही है।' "दीक्षान्त भाषण देने को किसे निमत्रित कर रही है। बोली, "राजगोपालाचार्य को बुलाने का विचार है। अब देखा जो भी आ जाये।' मैंने कहा 'कुछ भी हो निराला जी की स्वर्ण जयन्ती मे तो आप की उपस्थिति आवश्यक है।' "हम तो इन जयन्ती वालो से असहयोग कर रहे है। कितनी उल्टी बात है कि निराला जी तो बीमार हैं, उनका मस्तिष्क विक्षिप्त हो गया है, उनका कोई सतोषजनक उपचार नही और ये स्वर्णजयन्ती मनाने जा रहे है। अभिनन्दन का मोटा पोथा लेकर निराला जी क्या करेंगे ? चाहिए था कि उन्हे राँची या आगरे ले जाया जाता। उनका उपचार होता, पर हमारे यहाँ की कुछ बातें ही अजीब है। पहले की बात पीछे और पीछे की बात पहले होती है। पाँच हजार रुपए मे अभिनन्दन ग्रन्थ निकलेगा। यदि इसमे से एक या दो हजार रुपया उनके उपचार के लिए दे दिया जाता तो कुछ ठीक भी था। अभिनन्दन ग्रन्थ मे प्रकाशक का या सम्पादक का ही लाभ है।" मैंने कहा, "उसकी रायल्टी तो निराला जी को ही मिलेगी ?' "मिलेगी जब मिलेगी, इस समय तो कुछ नही। क्या पता कितने वर्षों मे ग्रन्थ निकले और बिके। इससे तो यही अच्छा होता कि कुछ रुपया निराला जी के नाम से बैंक मे जमा कर दिया जाता और उससे वे अपना काम चलाते या उस रुपए से हम किसी अध्ययन प्रिय छात्र को छात्र वृत्ति देते। वह कोई नवीन खोज करता। फिर उससे जो पुस्तक हिन्दी साहित्य को मिलती वह इस अभिनन्दन ग्रन्थ से अच्छी होती। पर आजकल कुछ बात ही ऐसी चल पडी है। गाधी अभिनन्दन ग्रन्थ निकला, प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ निकला, अब निराला

अभिनन्दन ग्रन्थ निकल रहा है। लेखकों का निकले सो तो निकले, पर प्रकाशकों का अभिनन्दन भी होने लगा। यहाँ के साहित्यिक जो करने का काम है वह नहीं करते।" मैंने कहा, "भारतवर्ष मे कुछ ऐसा रिवाज है कि मरने पर तो श्राद्ध करते हैं पर जीते जी कौडी को भी नहीं पूछते। कहने को तो कहते हैं हिन्दी साहित्य तीव्र गति से बढ रहा है, पर जागृति शून्य के बराबर है।" "यह तो है ही। नन्ददुलारे जी मेरे पास आये थे। उन्होने मुझसे सब बातें कहीं, मैंने कहा, "सम्मान तो निराला जी को मिलना ही चाहिये और मिलेगा ही और सम्मान की हम भीख भी नही माँगते, पर इस समय जिस बात की आवश्यकता है पहिले वह तो पूरी होनी चाहिये। अब मैं यही देख रही हूँ कि उनके लिए कुछ होता है या नही। यदि कुछ हो गया तो मैं बनारस जाऊँगी, नहीं तो हम स्वर्णजयन्ती मनाते हुए क्या अच्छे लगेंगे। राजनीति के क्षेत्र मे कल के आदमियो को थैलियाँ भेंट हो रही हैं और निराला जी को आज 30 साल हिन्दी की सेवा करते-करते हो गये पर उनके लिए कुछ नही। जब उन्होने साहित्य मे काम किया है तो पुस्तकें तो उन पर बहुत सी लिखी जायेंगी, पर अब तो उनके जीवन को बचाने का प्रश्न है।"

मैंने बात को बदलते हुए कहा, "किसी दिन आप गाधी जी वाले अपने चित्र दिखाइयेगा।" बोली, "देख लेना। सब अन्दर रक्खे हैं, एक दिन निकालूँगी तब देख लेना। चित्रों को देखकर फिर चित्र बनाने की इच्छा होने लगती है। और यह काम अब मुझसे होता नही, इसलिये मैंने सब चित्र अन्दर बन्द करके रख दिये हैं। जब बगाल का अकाल पडा था तो मैंने प्रदर्शिनी का आयोजन किया। यहाँ के चित्रकारो ने बहुत थोडे से चित्र दिये। उससे यह मैंने 75 चित्र बनाए। बनाते-बनाते आँख पर इतना अधिक जोर पडा कि अन्त मे मुझे तूलिका से खिंचो हुई रेखायें भी दीखनी बन्द हो गई। तब मैंने उल्टे सीधे तैलचित्र बनाये।" मैं बोला, "अब आप लिख पढ तो लेती होंगी!" बोली, "मोटा टाइप पढ लेती हूँ।" "और लिखने की बात?" "लिखा नही जाता।"

इस समय मैंने अपनी दुःख से सिक्त दृष्टि उनकी आँखो पर डाली। उनकी आँखो की पुतली का दर्पण निस्तेज चमक रहा था। उस समय मेरा मन भारी हो आया और मैंने कहा, "एक दिन मानव जी ने अपना मन भारी करके कहा था कि अब महादेवी जी अधिक दिन जीवित नही रहेंगी।" "जीना मैं चाहती ही कब हूँ" पर फिर तुरन्त सँभल कर बोलीं, 'नहीं, मैं अभी नही मरूँगी," यह बात कह कर खूब जोर से हँसती रहीं। मैंने फिर कहा, 'निराला के बाद पंत की जयन्ती होगी और फिर आपको भी अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट किया जायगा।" "यह सब मुझे बिल्कुल अच्छा नही लगता। मेरी जयन्ती नही होगी।" इस पर मैं बोला "यदि कोई दूर से आपकी पूजा करता है तो उसे रोकने का आपको अधिकार थोडे ही है।" "इसमे दूर की पूजा की बात तो नहीं। गले में फूल माला पहनाई जायेंगी, अभिनन्दन का पोथा दिया जायगा।"

यह बात उन्होने कही और हाथो से पहनाने तथा अभिनन्दन ग्रन्थ देने का अभिनय सा किया, और खूब हंसती रही। मैने फिर उनसे तुरन्त पूछा, "आपके जन्म का सन् 1907 है, पर *आपकी जन्म तिथि क्या है ?"* *"मैं होली के दिन पैदा हुई थी।* अरे, तभी तो इतनी हंसती रहती हूँ।" मैं जरा गम्भीर हो गया। फिर हंसती हुई बोली, 'होली जो जन साधारण की प्रसन्नता का दिन है ' उस दिन तो एक नवीन उत्साह रहता है। नई फसल आती है। इसलिये वैसी ही सब बातें मुझमे हैं।" यह बात सुनकर मैं चुप रह गया। इस बात मे महादेवी जी अपनी हँसी का रहस्य खोल गई थी। पहले मैं यह सोचा करता था कि महादेवी जी की हँसी कदाचित् ज्वालामुखी पर छिटकी हुई चाँदनी की तरह है, पर आज उन्होने स्पष्ट कह दिया था कि उनकी हँसी तो जलती हुई होली की तरह है जो दूसरो को उत्साह तथा उल्लास प्रदान करती है, पर स्वय जलती रहती है। उनकी बात मे योग देते हुये मैं बोला, "मेरा जन्म होली से दो दिन बाद का है। इस पर मुझे अपने पिता जी की मृत्यु तिथि भी याद आ गई। मैं बोला, "पर दो साल बाद माता जी ने जिस दिन सुबह को मेरे जन्म दिवस के उपलक्ष मे शीरा पूरी बनाया था और अपने भाग्य को सराहा था, उसी दिन सध्या को मेरे पिता जी का देहान्त हो गया। मैं उस दिन दो वर्ष का था। अब भी कभी-*कभी मेरे जन्म दिवस पर आँखो मे आँसू भर कर मेरी माता जी यह* कहानी सुना देती हैं।' इस पर वे उदास हो गई और बोली, "पता नही वह उनके जीवन मे कैसा दिन होगा। उस दिन उन्होंने एक का जन्म दिवस मनाया था और एक को विदा दी थी।" एक क्षण तक हम शात रहे। फिर मैं बात बदलते हुये बोला, "आपने मानव जी की 'निराधार' पढी।" बोली, "कविताओ की ?" "नही कहानियो की।" "हाँ पढा।" "और अवसाद भी ?" "हाँ, दोनो पढी हैं।" "निराधार के विषय मे गुप्त जी ने मानव जी को एक पत्र लिखा था। बहुत प्रशसा की थी।" "प्रशसा तो वे सबकी करते हैं।" इस पर मैं हंसकर बोला, 'तारीफ तो खैर उन्होने की थी ही, पर अलकाब आदाब की जगह उन्होने लिखा था, "प्रिय महाशय। महाशय शब्द बड़े गजब का था।" इस पर खूब हंसी। फिर बोली, "कुछ बुरा तो न था और लिखते भी क्या।" मैने कहा, "प्रिय मानव जी ही लिख देत।" फिर जोर से हंसकर बोली, "यह महाशय लिखने का आर्य समाजी ढग है।" इस पर मुझे और भी हँसी आ गई। फिर बाली, "इधर सी० पी० के लोग जो भी उन्हें लिखत हैं, उनमे से कोई दद्दा, *कोई कक्का, ऐसे लिखत हैं, उसी रिश्ते से वे भी जवाब दे देते है।" मैंने कहा,* "सियारामशरण जी तो बीमार है।" बोली, "हाँ उन्हे दमे का मर्ज है। जाडो मे यह और भी अधिक हो जाता है। लेखको को तो कुछ न कुछ कष्ट लगा ही रहता है। किसी को रुपये पैसे का कष्ट तो किसी को शारीरिक कष्ट।"

बातें करते-करते बहुत देर हो गई थी, अत बातचीत का स्रोत धीमा पड गया। जरा सी देर बाद ही मैं बोला, "कल मैंने आप पर लिखी हुई मानव जी की पुस्तक का पहला चैप्टर पढा। उसमें उन्होने लिखा है कि व "दीप-शिखा और यामा की महा-

देवी को वे नहीं देख सके।"

उस ड्राइंग रूम में या तो महिला विद्यापीठ की प्रधान अध्यापिका हँस रही थी या चाँद की गत सपादिका। इस पर वे कुछ नहीं बोली। बहुत देर तक हँसती ही रही। फिर मैंने कहा, "पर जब आप उठकर अपने अध्ययन-कक्ष म चली गई, तब उनका अनुमान था कि 'दीपशिखा' और 'यामा' की महादेवी लौट आई है।" इस पर उन्होंने केवल इतना कहा, "भाई मैं तो सब जगह एक सी हूँ" तुरन्त विषय की धारा मोड़कर बोली, "जब सन् 42 में यहाँ आसपास के गाव के गाव पुलिस ने जला दिए थे तब हमने उनके लिए जो बेचारे बेघरबार हो गये थे, बहुत स कपड़े और दवाइयाँ एकत्रित की थी। कठिनाई तो यह थी कि हम जिसको भी उन्हें लेकर भेजती थीं उसे ही पुलिस गिरफ्तार कर लेती थी। इसलिये हम स्वय ही जाया करते थे। पुलिस मुझे गिरफ्तार नहीं करती थी, बल्कि उल्टे मुझसे कहा करती थी कि हमारे बाल-बच्चों को भी देखती आइयेगा गुरुजी। वे सब मुझे जानते थे, क्योंकि पहले भी मैं उन गावों आती जाती रहती थी। पर उनकी बात तो देखिये दूसरों का घर उजाड़ रहे हैं, दूसरों के बाल-बच्चों को बेघरबार कर रहे हैं और अपनों के लिये कह रहे हैं कि उनको भी देखती आइयेगा। साथ म सी० आई० डी० भी जाता था। एक दिन हम उसे पहचान गए। हमने उससे पूछा, 'सोना बिट्टी जाओगे?" बोला, "नहीं"। हमने दूसरे गाव के लिए पूछा, "बोला नहीं" हमने कहा, "तो फिर हमारे साथ साथ चलना है तो लो, थोड़ा सामान ही ले चलो। इस तरह हमने अपना सामान ही उस पर लाद दिया। बेचारा घबरा गया और फिर तो उसने हमारे साथ साथ चलना छोड़ दिया।" मैंने कहा, "तो उन दिनों यहाँ भी आप पर दृष्टि रक्खी जाती होगी?" 'हाँ, यहाँ भी रक्खी जाती थी और उन दिनों हमारी डाक पर भी सेन्सर था।" फिर आगे बोलीं, 'सन् 42 से फिर तो विश्राम मिला ही नहीं। काम बहुत करना पड़ा। पाँच-पाँच छ-छ मील धूल मिट्टी, ऊबड़-खाबड़ में पैदल घूमना, इधर उधर के काम करना, रात में बहुत अधिक जागना। सन् 42 के बाद बगाल का अकाल पड़ गया और इतना काम मुझे निपटाना पड़ा कि मेरी आँखें और स्वास्थ्य फिर ठीक नहीं हो सके। तब स ऐसे ही चली आ रही हूँ।"

जब वे अपनी बात पूरी कर चुकीं तो मैंने पूछा, "आपकी ससद की पुस्तकें छपती कहाँ हैं?" बोलीं, "इधर उधर के प्रेसों में।" "आपके हाथ में इस समय कितना काम है?" बोलीं, "पाच छ किताबें हैं।" मैं बोला, "आजकल तो आलोचना, कहानी और उपन्यास का खूब मारकेट है।" इस पर वे बोलीं, "हाँ कविता का मारकेट बिल्कुल नहीं। यही कारण है कि बहुत से लेखक कविता के क्षेत्र से कहानी उपन्यास और आलोचना की ओर मुड़ गए हैं।"

इस समय मुझे आपकी "रहस्य साधना" वाली पुस्तक का समर्पण याद आ गया और मैं जरा हँस कर महादेवी जी से पूछ बैठा, "आपकी 'रहस्यसाधना' वाली पुस्तक का डेडीकेशन मानव जी ने 'सा' को किया है। पता नहीं ये 'सा' कौन है?"

इस पर वे बिल्कुल हंसी नही और कुछ असमजस के से भाव उनके मुख पर दृष्टिगत हुये । बोली, "कोई 'सा' से कल्पना होगी या कल्पना का कोई आधार होगा ।"

मैंने कहा, ' सा से सावित्री होता है और सावित्री उनकी पत्नी का नाम भी है पर पूछने पर वे कह रहे थे कि पत्नी को डैडीकेट Dedicate नहीं की ।" इस पर बोली, "तुमने उनसे पूछा नही" मैने कहा, "पूछा तो था पर पर उन्होंने केवल इतना ही बताया कि पत्नी का नही है और जिसे यह डैडीकेट Dedicate की गई है वह आपके काव्य को बहुत अच्छी तरह समझता है ।" इस पर वे जरा हँसी और बोली "यह रहस्य तो हमारे रहस्यवाद मे भी ऊँचा है ।" इस विषय मे तो मेरी भी धारणा वैसी ही है जैसी महादेवी जी की । आपने इस पुस्तक मे महादेवी जी के रहस्य को तो सुलझा दिया है, पर अपने रहस्य मे उलझा दिया है । कौन जाने इस रहस्य को कभी कोई सुलझा भी पाएगा ?

इतने मे उनकी एक शिष्या अपने पिता जी के साथ आ गई । मैंने विदा ली ।

स्नेहाभिकांक्षी
शिवचन्द्र नागर

8

30 ए० बेली रोड
प्रयाग
20 / 12 / 46

आदरणीय 'मानव' जी,

कई दिन से पत्र की प्रतीक्षा थी । आज सध्या को पत्र मिला । इस समय रात के 10 बजे हैं । चारो ओर नीरवता है । बस कभी-कभी कमरे के बाहर वाली सड़क पर किसी की पदचाप या कुत्ते की भौं-भौं उस शान्ति को भग कर देती है ।

मैं उस दिन विदा हो गया, उदास और निराश । कर्त्तव्य ने भावना को ललकारा और मुझे विदा होना ही पड़ा । पता नही मुरादाबाद का जीवन मुझे क्यो अच्छा लगता है । आपके साथ दस दिन किस प्रकार व्यतीत हो गये थे । यदि पूरा जीवन ही इस प्रकार व्यतीत हो जाये ? बहुत मनन के बाद मुझे तो ऐसा लगा है कि मुरादाबाद मेरे लिये 'भावना क्षेत्र' है और इलाहाबाद 'कर्त्तव्य क्षेत्र ।' इलाहाबाद मे आकर पता नही क्या बात है मुझसे गीत नही लिखे जाते । ऐसा लगता है जैसे यहाँ आने पर मेरे अन्दर का गीतकार मर जाता है । आप मुझे अपने प्रत्येक पत्र मे अपना अमित स्नेह देकर उकसाते रहते हैं, पर कुछ होगा नही । मेरे प्राणो का सगीत मर सा गया है । सगीत ही नही, कभी-कभी लगता है मैं भी मर गया हूँ । केवल ककाल मात्र शेष है ।

मैं लिखना क्या चाहता था और लिख क्या गया । हाँ, अभी कनवोकेशन डिनर से लौटा हूँ । वहाँ श्री बच्चन जी भी आये थे । मैंने उनसे कहा, "आपने पत्र नही

लिखा ?, बोले हाँ, मैं भूल गया। फिर जरा रुक कर बात को बढाते हुए बोले, 'जरा सकोच सा होता है। जब कोई मुझ पर लिखना चाहता है, जहाँ तक होता है मैं Discourage ही करता हूँ।" उनकी यह बात सुन कर मैं चुप रह गया। वास्तविक अर्थ म यह बात हिन्दी साहित्य मे महादेवी को छोडकर दूसरे के मुँह से अच्छी नही लगती। बच्चन जी यह बात कह तो रह थे, पर लोगो के मुँह मैंने यही सुना है कि साहित्यको मे वे नाम और दाम दोनो के सब स अधिक दीवाने हैं। कदाचित् वे आज पत्र लिखें, क्योंकि जब मैंने उनसे कहा, 'यदि आप न लिख सकें तो आप मुझे बतला दें, मैं लिख दूगा।" तो वे बोले, "नही मैं स्वय ही लिखूगा।"

लल्ली प्रसाद जी पांडेय का पत्र आया था। मैं उन्हे कुछ जरुर भेज दूंगा। किसी दिन अवसर मिल गया तो मिलूगा भी।

परसो सोहन लाल द्विवेदी जी से मनमुटाव हो गया। बात यह थी कि जब मैंने 'गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ' के गुजराती विभाग का और उसक अनुवाद का पूरा सशोधन कार्य किया था तो एक तो मैंने उसमे गांधी जी पर गुजराती की कविता दी थी, उसको उन्होंने छापने के लिये कह दिया था और एक वायदा उन्होने यह किया था कि अपनी भूमिका मे मेरा नाम देगें। दो महीने बाद मैंने उनको पत्र लिखा। उत्तर आया, "कविता तो मैं नही दे सका क्योकि मैं गुजराती से अनभिज्ञ हूँ।" यह बात मुझे तनिक भी बुरी नही लगी। पर अब वे यहाँ आये हुए थे। उनकी भूमिका जा रही थी। मैं उनसे मिला। मैंने कहा, "नाम तो आप दे रहे होगे ?" बोले "मैंने नाम दिये तो थे पर इस प्रकार दिये थे कि इन सज्जनो ने प्रूफ ठीक करने मे मेरी मदद की। इस पर निर्मल जी बिगड गये और बोले कि यह लिखो कि परामर्श दिया। यह मैंने लिखने से मना कर दिया, क्योंकि लिखता तो तब, जब वास्तव मे परामर्श दिया होता।" मैंने कहा, "निर्मल जी की बात छोडिये। मैंने प्रूफ नही पढ़े हैं। मैं तो प्रूफ पढना जानता तक नही।" बोले, "क्यो नाम के पीछे इतनी पर्वाह करते हो ? अब तो सब की राय यही है कि इस तरह आठ-दस नाम देने ठीक नही।" मैंने कहा" "जब आपने कहा था तो आपको नाम देना चाहिये" बोले, 'नागर। अभी तुम मे बचपना है। जरा-जरा सी बातो को इतना महत्व देते हो।" इस प्रकार उन्होंने बात ही उडा दी। यह दशा है आजकल के साहित्यिकों की। पर द्विवेदी जी की बात यहां छोडे देता हूँ। यह चर्चा दम घोटने वाली लग रही है।

'ऊर्मि' और 'शलभ' पढकर उसमे सशोधन का आपको पूरा अधिकार है। ऊर्मि 1944-45 मे लिखी गई थी। मन की जो बात ऊर्मि मे नही कह पाया वह 'अवशेष' मे कहने का प्रयत्न करूंगा। अवशेष समाप्तप्राय ही है। इसमे 101 गीत रखने का विचार है। अवशेष मे 1945-46 और 1946-47 दो वर्ष का जीवन होगा। परीक्षा के बाद 'विराम' गीत सग्रह आरम्भ करूगा जिसका पहला गीत होगा—

थक गये चरण, रुक गये चरण।

शिवचन्द्र नागर

30 ए० वेली रोड,
प्रयाग
29 / 12 / 46

आदरणीय 'मानव' जी,

कल प्रभात मे आपका 25/12/46 के प्रभात का लिखा हुआ पत्र मिला। 'प्रभात' की पुस्तको के लिये तो 'प्रभात' की प्रसन्नता ही बहुत थी। माता जी का आशीर्वाद तो सदैव वांछनीय है ही। पर भाभी जी के धन्यवाद का मैं बहुत-बहुत आभार मानता हूँ। मुझे दुख तो इस बात का है कि आर्थिक अभाव के कारण हम अपने बच्चो की शिक्षा इस प्रकार आरम्भ नही कर सकते जिस प्रकार करना चाहते है।

कल सध्या को मैं श्री लल्ली प्रसाद पाँडेय जी से मिला। बडे ही सज्जन व्यक्ति है। मैंने उनके विशेषांक के लिये एक कहानी दे दी है।

कल मैंने प्रमोद पुस्तक माला से प्रकाशित "महादेवी" पुस्तक को देखा। इसके लेखक गगा प्रसाद पांडेय हैं। उन्होने उसमे महादेवी जी की शिक्षा, उनके माता पिता के नाम और विवाह आदि की बातें लिखी हैं। सबसे बडी बात तो यह है कि पाँडेय जी पुस्तक मे भी 'देवी जी' 'देवी जी' लिखते है, जो अच्छा नही लगता। ऐसा लगता है पाँडेय जी ने महादेवी जी पर लिखा तो अवश्य है, पर अन्तर की प्रेरणा से नही लिखा।

आप शान्ति की बात करते हैं, पर मै समझता हूँ, साहित्य की सृष्टि मानसिक सघर्ष स होती है। मानसिक सघर्ष से अशांति मिलती है और इससे यह सिद्ध हुआ कि काव्य सृजन और अशांति co-existent हैं। जो professional writer हैं उनकी तो बात छोडिये, उनके लिये तो काव्य सृजन mentnl Prostitution हुआ, पर जो कलाकार है उसके जीवन मे अशाति ही उसकी कला को बल देती है, प्रेरणा देती है। मेरे विचार से कला का अकुर टूटे हुए हृदय की दरार मे उगता है और अगर दरार गह्री है तो एक दिन वह अकुर एक विशाल वट वृक्ष हो सकता है। उसकी शीतल छाया मे अभितप्त विश्व शाति पा सकता है, आया कि उसका जन्म अशांति से हुआ है: 'अवसाद' के गीत पढकर मुझे ऐसी ही शान्ति मिलती है।

23 ता० की सध्या को का तार आया था। पढ कर मैंने आज एक बिल्कुल नवीन अन्तर्द्वन्द्व का अनुभव किया। कदाचित् का यह अन्तिम समय हो। तार को पढकर मेरे अन्तर के मानव ने कहा, "तुम्हें जरूर जाना चाहिये, क्या पता की यह अतिम आकांक्षा हो कि उसके अन्तिम समय पर मैं उसके पास रहूँ।" पर दूसरे क्षण मेरे अन्तर का कलाकार आ खडा हुआ बोला, "उसका तुम्हारे जीवन मे आना तो तुम्हारी मृत्यु है। अपने जीवन के हिमानी शिखर पर अपने प्राणों का स्नेह ढाल कर जो साधना दीप तुमने जलाया है वह व्यक्ति तुम्हारे जीवन मे आकर अपने आँचल

से उसे बुझा सकता है, क्या वह तुम्हारी मृत्यु नही होगी ?" मैं वहाँ गया नही। मेरे अन्तर के कलाकार ने मेरे हाथो और पैरो मे बेडियाँ डाल दी। दुनियाँ तो इस बात को समझ नही सकती, केवल कठोर और क्रूर कहे कर रह जाएगी।

शिवचन्द्र नागर

10

30 ए० वेली रोड
प्रयाग
1/1/47

आदरणीय 'मानव' जी,

पत्र बीच म टकरा ही गये।

यह नव वर्ष का प्रभात है। आज मेरे जीवन के बीस वर्ष बीत गये। कदाचित् प्रथम चरण समाप्त हो गया। नव जीवन मे हर्ष लाएगा, चिन्ह् ऐसे दिखाई नही देते बल्कि सोचता हूँ यह वर्ष सब वर्षों से अधिक दुःख भरा होगा क्योकि आज का प्रभात ऐसा ही लग रहा है।

'ऊर्मि' के सभी गीतो में कोई व्यवस्थित कथा नही, केवल प्रणय के सरोवर में समय-समय पर उठी हुई लहरें है। इसका कारण मैं यही समझता हूँ कि यह उस अवस्था का प्रेम है, जब किशोरावस्था की सीमा युवावस्था से मिलती है। इसीलिए मैं यह भी सोचता हूँ कि मेरे हृदय मे ऐसी आग नही जैसी होनी चाहिये थी। इस दृष्टि मे मैं अभागा ही हूँ।

'मूर्ति' की क्या स्थापना करूँ ? जिस प्रणय-मूर्ति की आराधना की थी, वह तो मर चुकी अब तो केवल ससार मैं उस मूर्ति की मूर्ति रह गई है।

'मूर्ति, पत्थर की ही है, पर मैं उसमे प्राण डालना चाहता हूँ। यही मेरे जीवन की साधना है।

नव वर्ष के उपलक्ष मे प्रभात को अपना 'अमित दुलार' भेज रहा हूँ। आशा है इस वर्ष मे वह अपनी मातृ भाषा का पढना सीख लेगा। इसका भय नहीं, चाहे रुक-रुक कर ही अटक-अटक कर पढना सीखे। जरा तुतला कर बोलना और गरती-सल्ती अटक-अटक कर पढना शिशु का सौंदर्य ही है।

लिखियेगा कि आप बनारस जायेंगे या नही। यदि आप बनारस न जायें तो मैं दो दिन के लिए मुरादाबाद आऊँगा। 28 जनवरी को मेरे भानजे की शादी है। बारात मुरादाबाद ही आएगी। पता नही मन कुछ ऐसा हो गया है कि किसी की भी शादी अच्छी नही लगती। कल मैं हार्डी का 'टेस' पढ रहा था। उसमें टेस अपने प्रेमी से कहती है, "प्रियतम हम जीवन भर ऐसे ही रहेंगे, विवाह नही करेंगे।" कितनी अच्छी बात थी।

मेरे लिए तो 'निराला की जयन्ती' और विवाह दोनो ही बराबर हैं। यह आप पर निर्भर है। पता नही आप बनारस आना पसन्द करेंगे या मुरादाबाद रहना।

मल   का पत्र आया था। उसमे लिखा था कि   मृत्यु के मुख से बच गई है। इसको पढकर सुख भी हुआ और दुःख भी। अन्तर की ऐसी दशा जिसमे सुख दुख दोनो हो, बडी ही दुखदायिनी होती है। इसम घटा तक सुख-दुख की मिली हुई लहरें अन्तर के पुलिनो का घिसती रहती हैं। यह मुझे नही भाता। या केवल सुख हो या फिर केवल दुख।

पत्र मे आप अपने उमडते हुए अन्तर को रोके गए। पर मैं नहीं रोक पाता। बस मुझमे और आप मे इतना ही अन्तर है। कदाचित् यह अन्तर अवस्था तथा अनुभव का है। पर उन आँसुओ से जो आँखो से बह जायें, वे आँसू अधिक भयकर होते हैं, जो आकर लौट गए हो, उस आग से जिससे जलने को मिल रहा है वह आग अधिक प्रलयकारी है जो जली नही पर सुलग रही है।

'अवसाद' पर चित्रित कवि की आँसो का चित्र देख कर मेरी आँखो के सामने वास्तविक कवि की आँखें तैर जाती हैं। सोचता हूँ इन आँखो म अगणित बार अगणित आँसू आये हैं, उन्हे किसी के कोमल करो ने नही पोछा। कवि के बधे हुए हाथ भी उन्हें पोछने को नही उठे। वे आँसू धरा पर भी नही गिरे।
कैसे आँसू हैं वे!

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

11

30 ए० बेली रोड,
नव वर्ष की सध्या
1/1/47

आदरणीय मानव जी,

आज नव वर्ष की सध्या थी। आकाश मेघाच्छादित था। कुछ ठडी और मीठी-मीठी पवन चल रही थी। ऐसे समय मे मैं अपने पैर घर मे बधे न रख सका। अपने एक मित्र के साथ सिविल लाइन्स की ओर चल पडा। इधर-उधर घूमकर लौटना चाहा, क्योकि 6 बजे से कर्फ्यू लगने वाला था। इन साम्प्रदायिक दगो ने जीवन को ऐसा बना दिया है कि हम अपने ही पैरों की आहट पर विश्वास नही कर सकते।

लौटती बार जब हम सुश्री महादेवी जी के बगले के सामने से निकले तो देखा महादेवी जी अपने ड्राइग रूम मे बरामदे म खडी हुई किसी व्यक्ति को विदा दे रही थी। उनके दर्शन दूर से ही कर मैं उनके पास जाने और उनसे बातचीत करने के

प्रलोभन का सवरण नही कर सका। हम दोनो उनके पास चले गए। तीसरे व्यक्ति ने विदा ले ली।

ड्राइङ्ग रूम मे हम बैठ गये—महादेवी जी एक कोनेवाले सोफे पर उस दरवाजे के पास जो ड्राइग रूम को अन्दर घर से मिलता है, मेरे मित्र कुर्सी पर और दूसरे सोफे के एक कोने पर मै बैठ गया।

मैने उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे पूछा। बोली, "अब तो प्रतिदिन ज्वर आ जाता है। डाक्टर ने यह भी बताया है कि जौंडिस Jaundice हो गई है। मै सोचती तो थी कि मेरा शरीर पीला-पीला हो गया है, पर मैं समझती थी खून की कमी है, पूरी हो जाएगी।"

'डाक्टर · का ही इलाज है न' मैंने पूछा।

"नही, उनकी दवाई से कोई आराम नही हुआ। अब तो दूसरे डाक्टर का इलाज है," वे बोली।

फिर मै अपने मित्र की ओर सकेत कर बोला, "ये मेरे मित्र ·· · · है। बहुत दिनो स आपके दर्शनाभिलाषी थे।" मेरे मित्र की ओर मुड कर वे बोली, "यह छोटी सी अभिलाषा तो कभी की पूरी हो सकती थी, भाई।" "ये तो जीवन की महान् अभिलाषायें होती है किसी कलाकार से मिलने की," मेरे मित्र बोले।

"जीवित और साकार व्यक्ति को तो कभी भी देखा जा सकता है।" महादेवी जी ने हँस कर कहा।

फिर मै बोला, 'श्री सोहन लाल द्विवेदी मुझे मिले थे। मैने उनसे आपका गाँधी जी वाला चित्र लौटा देने को कहा था और यह भी कहा था कि यदि वे न लौटा सकें तो मुझे दे दें, मै पहुँचा दूँगा।" इस पर वे बोले हाँ, आप लेते जाइएगा, मेरा तो जाना नही होता। महादेवी जी बोली, "जब वह चित्र लेने के लिए आए थे तो लौटाने आने मे क्या बात थी? इण्डियन प्रेस में ही ठहरे होगे?" "अभी तो वे कही गये है।" मैंने कहा। बोली, "रांची गये होंगे?" 'हाँ रांची ही गये हैं। मुझसे कह रहे थे कि भाई कवि सम्मेलन मे प्रेसाइड preside करने के लिये एक्सप्रेस टेलिग्राम आया है। उसके जवाब मे मैंने यह लिखा है।

send double first class fare आजकल तो द्विवेदी जी ख्याति बटोरने मे लगे हुए हैं," मैंने कहा।

"इतना प्रयत्न करने पर यदि इतनी छोटी सी चीज मिल जाये तो अच्छा है।" महादेवी जी बोली।

मैंने कहा, "यह बात तो ठीक है, पर बातें तो वह उल्टी करते हैं। 'गाधी अभिनन्दन ग्रन्थ' की भूमिका मे गुजराती विभाग के सशोधन कार्य के उपलक्ष्य मे उन्होने मेरा नाम देने के लिये कहा था। अब दो महीने बाद मेरी उनसे भेंट हुई।

भूमिका छपने जा रही है। मुझे तो पूरा विश्वास था ही कि नाम अवश्य दिया होगा, पर फिर भी मैंने वैसे ही पूछ लिया कि आपने भूमिका मे नाम दे दिया क्या? बोले, 'ऐसे नाम कितने ही थे, सोचा इतने नाम देना ठीक नही रहेगा। इसलिये अब तो यह विचार छोड़ दिया है।' इस पर मैंने कहा, "बात तो कुछ नही थी, पर मैंने अपने कुछ मित्रो से यह कह दिया था कि 'गाधी अभिनन्दन ग्रन्थ' के दूसरे सस्करण मे गुजराती विभाग मे मेरा भी नाम आयेगा। अब वे देखेंगे और मुझसे कहेंगे तो मेरी बात झूठी पडेगी। इस पर बोले, "अरे नागर, तुम भी क्या छोटी सी बात के पीछे पडे?" यह सुनकर महादेवी जी खूब जोर से हँसी। बोली, "कैसी अजीब बात है जिस चीज को स्वय पकडना चाहते हैं उसे दूसरे को पकड़ने के लिए मना करते हैं।"

फिर मैं बोला, "मानव जी का पत्र आया था। उसमे लिखा था कि आपका पत्र नही मिला।" बोली, "अभी मैं लिख नही सकी।" मैंने कहा, "मैं इसी लिये पूछ रहा था कि कभी आपने लिख दिया हो।' बोली, "नही अभी मैंने लिखा ही नही।" "तो सदस्यता के फार्म दे दीजियेगा। मैं मुरादाबाद भेज दूँगा" मैंने कहा। "नही", मैं भेज दूगी। अब मैं उन्हें एक दो दिन मे पत्र लिखूँगी ही।" मैंने जरा मुस्करा कर कहा, 'अवसाद' वाले उस दिन के प्रसग पर मानव जी ने लिखा है कि यह प्रसग आपने वहाँ क्यो उठाया। महादेवी जी ने मेरे लौकिक गीतो को क्या पढा होगा और पढे भी होंगे तो उन्हे क्या अच्छे लगे होंगे।"

बोली, "मैं तो जो भी पढती हूँ तटस्थ पाठक की स्थिति मे होकर पढती हूँ और फिर लौकिक अलौकिक की क्या बात? यदि हमारे अलौकिक गीतो को कुछ लोग लौकिक समझ सकते हैं तो किसी के लौकिक गीतो को हम अलौकिक भी समझ सकते है। उन्होने चाहे किसी व्यक्ति पर लिखें हो, पर किसी व्यक्ति पर भी तभी लिखा जाता है जब उसमे कवि ने किसी अलौकिकता के दर्शन किए हो। यदि उसने ऐसा नही किया और व्यक्ति की सीमा मे ही बध गया तो एक दिन वह थक जाएगा।" मैंने कहा, "हाँ, उस व्यक्ति की मूर्ति आँखो के सामने से हट जानी चाहिए।" बोली, "हाँ यदि व्यक्ति की सीमा मे कवि उलझ गया, तो लिख नही सकेगा और यदि लिखा तो लिखेगा भी कब तक? हमें व्यक्ति का सीमित स्वरूप नही लेना चाहिए, उसका विराट स्वरूप लेना चाहिए, इससे कवि थकेगा नही और न समाप्त होगा, बढता ही रहेगा।" 'फिर बात को आगे बढाती हुई बोली, "और अलौकिक गीतो मे भी रूपक तो इस लोक से ही लिये जाते हैं। एक व्यक्ति मे जब हम अलौकिक तत्व के दर्शन करते हैं तो फिर हमे उस तत्व के दर्शन, फूल मे, पत्तियो मे, तारो मे, गगन मे सर्वत्र ही होने लगते हैं।"

उनकी बात समाप्त होते ही तुरन्त मेरे मित्र बोल पडे, "यह बात उर्दू कवियो मे बहुत पायी जाती है कि वे व्यक्ति के सीमित रूप के ही दर्शन करते हैं।" बोली,

"हाँ, उर्दू कवियो की बात तो ऐसी ही है, उनकी दुनियाँ मे तीर चलते हैं, बछियाँ घुसती हैं, गर्दन कटती है और महफिल तो ऐसी लगती है, जैसे बधशाला हो।"

"इसपर वे स्वयं भी बहुत हँसी और हम दोनो भी। कुछ क्षणो तक हम तीनो केवल हँसते ही रहे। फिर अपनी ही बात पर आती हुई महादेवी जी बोली, "प्रतिदिन कितने आदमियो के जीवन बरबाद होते हैं। कोई आत्महत्या करता है तो कोई कुए मे डूबकर जान दे देता है। अगर उनमे शक्ति है तो वे क्यो नही उस 'व्यक्ति' को प्राप्त कर लेते ? पर ये सब 'व्यक्ति' की सीमा मे बंधे हुए होत है। 'व्यक्ति' की सीमा मे बँधा हुआ व्यक्ति बरबाद ही हो जाता है।"

मैने कहा, "उर्दू की इस प्रणाली का हिन्दी पर प्रभाव पडा है। इस विषय मे फिराक साहब ने कोई पुस्तक भी लिखी है। 'तरुण' मे लेख माला भी निकल रही है। एक लेख मे उन्होने गुप्त जी के विषय म बहुत कुछ लिखा था।" महादेवी जी बोली, "हाँ, वे हिन्दी के तो विरोधियो मे से हैं।" मैंने कहा, "एक बार फिराक साहब मेरे एक मित्र से बोले कि हिन्दी मे कोई करुण रस की कविता सुनाओ। उन मित्र महोदय ने गुप्त जी की ये पंक्तियाँ सुना दी 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी। आँचल मे है दूध और आँखो मे पानी।' इस पर फिराक साहब बोले, "राम राम इस 'हाय' शब्द ने सारी रेड मार दी। करुण रस की कविता तो वह है कि सुनकर हाय निकल पड़े।" यह सुनकर महादेवी बोली, "यह बात तो उनकी ठीक है। गुप्त जी 'अहा' 'हा' 'ओ हो हो' 'हाय' ऐसे शब्द बहुत प्रयोग मे लाते हैं।"

फिर मैंने बात बदली और कहा, "कल मैंने पत्र मे" पढा था कि दस हजार रुपया निराला जी की स्वर्ण जयन्ती के लिये कलकत्ते की business community से मिल गया है। अब तो इन लोगो को निराला जी के लिए कुछ करना ही चाहिये।" वे बोली, "पर ये करेंगे नही। सब इधर-उधर लगा देंगे। कविलोग कवि सम्मेलन मे आयेंगे, कदाचित् उन्हें देंगे और आने वाले लोगो के ऊपर भी खर्च करना पड़ेगा।"

"फिर तो आप असहयोग कर रही होगी ?"

"यह कैसे हो सकता है। निराला जी को सम्मान मिले इसमे तो हमारी प्रसन्नता ही है।"

पर जब वे बीमार हैं और उनका उपचार कुछ हो नही रहा तो वे अपनी जयन्ती मे जायेंगे कैसे ?" मैंने कहा। बोली "ये लोग उन्हें ले जायेंगे तो वे चले तो जायेंगे, पर वहाँ सब आदमियो के बीच मे इधर-उधर की बात कहेंगे, यह होगा। मैं इन लोगो से कहूँगी कि उनके उपचार के लिए कुछ किया जाय। थोडे दिनो बाद तो फिर मैं उन्हे बुला ही लूंगी, क्योकि संसद की जमीन का काम हो गया है।" मैंने बडी प्रसन्नता मे कहा "हो गया ?" बोली, "हा हो तो गया। अब कोर्ट खुले तो फिर सब काम हो जाये।"

"तो फिर आप 27 जनवरी को बनारस जा रही होंगी ? वैसे तो उस दिन यहाँ भी दीक्षान्त समारोह रहेगा।" बोली, "देखो क्या होता है, पर तुम्हे जाना अवश्य चाहिये।" "मैंने मानव जी को भी यहाँ आने के लिये लिखा है। वे आयें तो कदाचित् बनारस मैं भी जाऊँगा।"

इसी बीच मेरे मित्र बोल पड़े, "name और fame ऐसी चीज हैं जिससे दुनिया का कोई भी आदमी बच नहीं पाता।" इस पर महादेवी जी बोली, "यह बात ठीक तो है पर कुछ व्यक्ति इससे बचने के लिए सघर्ष भी करते हैं।" ऐसा लग रहा था जैसे मेरे मित्र के कहे हुए नियम में महादेवी जी यह अपना अपवाद जोड रही हो। वे इतना कह ही पायी थी कि गगाप्रसाद जी पाण्डेय अपने दो साथियो के साथ घुस आये। महादेवी जी प्रणाम का उत्तर देने के लिये उधर को मुड गई। वे तीनों व्यक्ति बैठ गये। क्षण भर शान्ति रही। फिर मैं उठा, हाथ जोड कर महादेवी जी को प्रणाम किया, मेरे मित्र ने भी हाथ जोडे और महादेवी जी के मुख से कमरे के निभृत वातावरण में एक दबे हुए शात स्वर में 'जयहिन्द' शब्द गूँज उठा। तिरगे तकिये के सहारे खादी की धवल धोती में सुशोभित महादेवी जी की इस मूर्ति से कदाचित् भारतवासी अभी परिचित नहीं हैं।

हाँ, मैं यह कह रहा था कि 25 जनवरी की सुबह को आप यहाँ इलाहाबाद आ जाइयेगा। 26 की रात को यहाँ से बनारस चलेंगे और 27 की रात को मैं और आप दोनो मुरादाबाद लौट जायेंगे। फिर मुरादाबाद में मैं दो दिन रहूँगा। मैं तो यही प्रोग्राम ठीक समझता हूँ। आप अपनी सम्मति लिखियेगा। उत्तर जल्दी ही दीजियेगा।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

12

30 ए०, वेली रोड,
प्रयाग
16/1/47

आदरणीय 'मानव' जी,

15/1/47 का पत्र अभी मिला है। अब सध्या के अंतिम पल बीतने वाले हैं। कमरे की खिडकी के सीखचों से आने वाली किरणें भी अब खिसकना ही चाहती हैं। सोचता हूँ संध्या की छाया में ही यह पत्र लिख कर समाप्त कर दूँ।

पत्रो के सम्बोधन अपने-अपने मन के अनुसार रख लिये थे। इस विषय में एक पारस्परिक समझौता अवश्य हो जाना चाहिये पर समझौता आपके सोचे हुए प्रस्ताव पर नहीं होगा, बल्कि मैं तो यह सोचता हूँ कि आप की प्रस्तावित बात का उल्टा

कर दूँ। मेरे नाम के आगे से आपको 'जी' हटा देना चाहिये और मैं आदरणीय का स्थान किसी दूसरे शब्द को दूँगा, यदि मुझे कोश में मिल गया, जो इससे अधिक आदर-सूचक हो, अधिक स्नेह-गर्भित हो, अधिक सुन्दर हो।

एक साहित्यिक दूसरे साहित्यिक से मिलने पर सतर्कता से बात करता है और इस प्रकार स्वाभाविक व्यवहार पर कृत्रिमता का आवरण पड जाता है। यह देखकर मैंने तो ऐसी धारणा बना ली है कि जब भी किसी साहित्यिक से मिलूँगा तो उसके व्यवहार को उसकी साहित्यिक धारणा से सम्बन्धित नहीं करूँगा। यह बात मैंने सोहनलाल द्विवेदी से सीखी है। हिन्दी के साहित्यिक कुछ ऐसे है कि उन्हें अपनी जाति के किसी व्यक्ति से मिलने पर प्रसन्नता नहीं होती। ईर्ष्या की भावना कदाचित् उनके अन्तर को कचोटने लगती है। महादेवी जी मे यह बात नहीं। मुझे तो यह पूरा विश्वास है कि महादेवी जी का शत्रु भी यदि उनसे एक बार मिल ले, तो बाहर आने पर वह पानी हो ही जायेगा, इसमें सदेह नहीं।

आप ता 24 को मुरादाबाद से चलकर इलाहाबाद 25 को 11 या 12 बजे पहुँचेंगे। *'प्रयाग' स्टेशन पर ही उतरियेगा। यहाँ से बनारस 26 की सुबह 9 बजे* चलेंगे। अपर इण्डिया से बनारस 11-12 बजे के लगभग पहुँच जायेंगे।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

13

30 ए०, बेली रोड,
प्रयाग
2/2/47

आदरणीय 'मानव' जी,

आज ऐसा लग रहा है जैसे हम और निकट आ गए हो। आज तो मन मे यही आ रहा है कि ऊपर लिखे हुये आपके नाम के आगे से 'जी' हटा दूँ और 'जी' की जगह 'भाई' लिख दूँ, पर श्रद्धा और सम्मान की भावना मेरा हाथ रोके ले रही है।

उस समय प्रयाग स्टेशन पर ट्रेन चल दी थी और मैं भी चल दिया था अपने घर की ओर भारी मन लिये।

जवाहर रेस्ट्राँ मे चाय पी, पर कुछ दिन पहले जो आपके साथ चाय पी जाती थी, आज की चाय उससे बिल्कुल दूसरी सी थी। आप के साथ पी जाने वाले चाय के प्यालो के साथ पता नहीं कितनी स्नेहाभिसिक्त भावनाओं का आदान प्रदान होता था, पर आज की चाय मे वह रस न था, अपने भारी मन को हलका करने के लिए ही मैं पी रहा था इसे।

29 जनवरी की सध्या जीवन मे कभी भी भुलाई नही जा सकती। सूर्यास्त होने ही वाला था कि हम चाय पीकर महादेवी जी के साधना मन्दिर की ओर चल दिए थे। रजनी के शुभागमन के साथ-साथ ही हमने उनके कमरे मे प्रवेश किया था। कमरे मे प्रवेश करने से पहले एक परिचारक के हाथ आपने एक चिट पर 'मानव' लिखकर भेज दिया था। हम कमरे मे बिछे हुए फर्श पर बैठ गए थे। उस समय की कमरे मे छायी हुई निस्तब्धता को देखकर आपने कहा था, "कमरे मे मन्दिर की सी शान्ति है।" कुछ क्षण हम बैठे रहे। फिर वह परिचारक आया और बोला, "आप बैठिए, गुरु जी आ रही हैं।" आप कदाचित् न जानते हो, इस परिचारक का नाम दातादीन है और यह इलाहाबाद के पास ही किसी गाव का रहने वाला है।

थोडी देर मे महादेवी जी अन्दर से कमरे मे आयी। दोनो ओर से जुडे हुए हाथ उठे। मुझे याद है महादेवी जी ने द्वार पर आते ही प्रणाम के लिए हाथ जोड लिए थे। अन्दर आकर वे अपने आसन पर बैठ गई। एक बडा श्वेत उपधान उनकी पीठ के पीछे था, एक-एक मखमली बेल-बूटो वाले गोलाकार उपधान उनके दायें-बायें और उन मखमली गोलाकार उपध नो पर एक तिरगा चौकोर उपधान शोभा दे रहा था और मैं तो यही कहूँगा कि अब मन्दिर की देवी मन्दिर मे विराजमान थी। सूना-सूना मन्दिर अब भरा-भरा सा लगने लगा था।

मैने पूछा, "आपका दीक्षात समारोह सकुशल समाप्त हो गया ?"

"वह तो हो ही जाता" उन्होने अटल विश्वास के साथ उत्तर दिया।

"माखन लाल जी थाए थे ?" मैने पूछा।

"हाँ, अभी तो वे यही हैं।" और फिर आपकी ओर मुड कर बोली, "आप तो उनसे परिचित होगे !" और आपने कहा था "एक बार भेंट हुई थी।"

"आप बनारस नही आई। कल तो आपकी बहुत प्रतीक्षा हो रही थी,' मैने पूछा।

"उन्होने किसी को बुलाया नही। चतुर्वेदी जी को तो कोई खबर ही नही। मैं तो सोच रही थी कि दीक्षान्त समारोह समाप्त हो जाने के बाद बनारस चले चलेगे, सुमन जी आये भी थे, पर चतुर्वेदी जी के लिए कोई निमत्रण न था। फिर यह कैसे हो सकता था कि मैं घर पर आये अतिथि को छोडकर चली जाती ? एक छपी हुई सूची भेज दी थी, उसमे मेरा भी नाम था इस सम्बन्ध मे कि मुझे निराला जी का सस्मरण लिखना है, पर उसके बाद फिर उनका कोई पत्र नही आया। कवि सम्मेलन के सभापतित्व मे मेरा नाम मुझसे बिना पूछे ही छाप दिया गया था।"

"निराला जी को आपका पत्र तो बिल्कुल ठीक समय पर मिल गया था," मैंने कहा।

"हाँ, पाडे जा रहा था। उसे मैंने पत्र दे दिया था। उस बेचारे को भी कोई निमन्त्रण न था। पता नही इन्होने क्या किया जो निराला जी को जितना अधिक पास से जानते थे, उनकी उतनी ही बात नही पूछी।"

"मुझे तो पाँडे जी वहाँ दिखाई दिये नही, नही तो मैं उनसे आपका परिचय

अवश्य कराता।" मैंने आपकी ओर मुड़ कर कहा था। उस समय आपने पूछा था, "कौन पाडे ?" मैंने कहा, "गगा प्रसाद पाडे।" "ओह !" आप बोले।

"बेचारा कही भीड़ मे बैठा होगा, उसके खाने-पीने की कुछ भी बात नही पूछी। कही किसी होटल मे ठहरा था।" महादेवी जी ने कहा।

"जयती कुछ जयती सी हुई नही। कम से कम पंत जी को तो आना ही चाहिये था।" आपने कहा था।

"पत जी को तो तार दिया था, पर उन्हें लेने कोई नही गया।" महादेवी जी बोली।

"खैर आप तो विवश थी, पर दूसरे लोगो ने वाजपेयी जी की ओर देखा, निराला जी की ओर नही" आपने कहा। मैंने कहा, "हां" पर महादेवी जी इस बात का कोई जवाब नहीं दे पाईं।

"पूरे समारोह मे कोई उत्साह सा दिखाई नही देता था। न अधिक भीड़ ही थी। पजाब के डा. हरदेव बाहरी ने तो अपने भाषण मे यह बात कही थी कि यदि यह उत्सव आज लाहौर के लारेंस गार्डन मे हुआ होता तो, वहाँ पैर रखने को तिल भर जगह न मिलती।" आपने कहा।

"वेद मंत्र इत्यादि तो खूब पढे गये होगे ?" महादेवी जी ने हँस कर कहा।

"पहले वेद मत्र पढे गये। फिर एक मराठी महिला ने तिलक किया। जानकी वल्लभ शास्त्री ने निराला जी के गीत का गान किया। फिर भाषण हुए। भाषणों मे विष्णु पराडकर बहुत अच्छा बोले। जब वे बोल रहे थे तो निराला जी ने बीच मे कुछ कहा, पर वे बोलते ही रहे। ग्यारह हजार की निधि का announcement किया गया। अभिनन्दन ग्रन्थ की जगह जो दस-पन्द्रह लेख आये थे उनको फाइल मे रखकर केशव प्रसाद जी मिश्र आये और बोले ऐसे अवसर पर मैं क्या कहूँ कुछ भी नही कह सकता क्योंकि मैं अस्वस्थ हूँ और वह फाइल निराला जी को देकर चले गए। निराला जी ने अपनी कविता भी सुनाई थी। निराला जी सब काम ठीक प्रकार से कर रहे थे। मुझे तो वे पागल लगते नही !" आपने कहा।

इस पर महादेवी जी हँसकर बोली, "लोगो ने उन्हे पागल बना रखा है। एक आदमी को जब सब पागल-पागल कहने लगें, तो वह पागल न भी हो तो पागल हो जायगा।"

"जयंती के दिन मच पर बैठे हुए निराला जी बड़े भव्य लग रहे थे।" मैंने कहा।

"भव्य वे कब नही लगते ?" महादेवी जी बोली।

"किसी भी साहित्यिक समारोह मे कम से कम इतना तो होना चाहिए कि एक दूसरे का परिचय मिल जाए। पर पूरे प्रोग्राम मे इस प्रकार की कोई गोष्ठी नही रखी गई थी ? अपने पास बैठे हुए आदमी को भी हम नहीं जानते थे कि कौन है ?" आपने कहा और फिर मैं बोल पड़ा,

"कोई साहब कह रहे थे कि उनका किसी से कई वर्षों से पत्र-व्यवहार चल रहा था। यहाँ वे दोनो आए थे और पास-पास बैठे थे पर कोई भी एक-दूसरे को न जानता था। फिर अकस्मात् उनका नाम पता चलने पर स्वय एक दूसरे से वे परिचित हुए।" इस पर महादेवी जी हँसती रहीं।

"रात मे कवि सम्मेलन हुआ था, दिनकर जी ने नोआखाली पर एक अच्छी कविता सुनाई थी।" आपने कहा।

"निराला जी ने भी सुनाई थी ?" महादेवी जी ने पूछा।

"हाँ, सुनाई थी।"

"सुभद्रा कुमारी जी ने भी एक रचना सुनाई थी।" मैंने कहा।

"दूसरे दिन सुबह को साहित्य परिषद् हुई। आठ बजे का समय था। सम्पूर्णानन्द जी ठीक आठ बजे आये और मूक उद्घाटन करके चले गये।" आपने कहा। इस पर हमे हँसी आये बिना न रही। आपने बात को आगे बढाया, "साढे आठ बजे के लगभग जब हम पहुँचे, तो कुल चार आदमी वहाँ थे। विश्वनाथ प्रसाद जी कहने लगे कि हम मे से एक सभापति का आसन ग्रहण करे, एक इस प्रस्ताव को पढ दे, एक इसका अनुमोदन कर दे और एक श्रोता रहे। उनकी इस बात पर मैंने कहा, चारो काम आप ही सम्पादित कर दीजियेगा।" इस पर बडी हँसी रही थी।

नागरी प्रचारिणी के हॉल मे साहित्य परिषद् आरम्भ हुई। वाजपेयी जी ने प्रस्ताव पढा। अन्त मे उन्होंने कहा, "मुझे बडी प्रसन्नता है कि सब इस प्रस्ताव से सहमत हैं।" इस प्रकार एक अभिनय सा होता रहा जिसके सूत्रधार वाजपेयी जी थे।

'शाम को चार बजे से समीक्षा-परिषद् हुई। उसमे बोलने वालो को वाजपेयी जी एक पर्चे पर लिखे हुए कुछ पाइंट्स दे देते थे कि इनके बाहर न बोलना। इन लोगो मे डा० देवराज बहुत अच्छा बोले उनसे परिचय भी हुआ।"

'देवराज को मैं भी जानती हूँ" महादेवी जी बोली।

'डा० राम विलास ने कोई गम्भीर बात नही कही। हाँ, उन्हे मैंने कभी देखा नही था सो देख लिया। पूरे समारोह मे मेरे लिए तो इतना ही हुआ कि दो आदमियो से परिचय हो गया— डा० देवराज से और डा० रामविलास जी से।"

"तो वाजपेयी जी ने सब कामो मे अपनी ही बात रखी ?" महादेवी जी ने कहा।

"पता नही क्यो जहाँ कही भी कोई साहित्यिक gathering होती है वह कुछ समय बाद ही एक fighting arena बन जाती है।" मैंने कहा।

"जहाँ एक दो आदमी बोले कि उनकी बातो का दूसरे विरोध करने लगे। समीक्षा परिषद मे एक pamphlet बाँटा गया था। उसमे भी ऐसी ही बातें थी।" मैंने आपकी ओर मुडकर कहा। मेरे मुडने का आशय यही था कि आप उस pamphlet का आशय समझा दें। आप तुरन्त बोल पडे, "वहाँ एक pamhlet बाँटा

गया था। बात यह थी कि कही यूनिवर्सिटी की पत्रिका मे यह छाप दिया गया था कि रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास-लेखन मे हिन्दी-विभाग का हाथ था। चन्द्रबली पाडेय तो शुक्ल जी के शिष्यो मे से हैं। उन्हे यह बात असह्य हो गई। उन्होने उसके विरोध मे एक pamphlet छपवा कर बँटवा दिया। वह बात जो निर्मूल होने के कारण बिल्कुल उठ भी न पाती और शायद वही की वही दब जाती, अब दस आदमियो में फैलेगी।" यह बात महादेवी जी सुनती रही। तुरन्त ही मैं बोल पडा, "निराला जी की जयन्ती मे भी सहयोग के साथ काम नही हुआ। मुझे तो ऐसा लगता है कि बनारस के साहित्यिको मे ही आपस मे विरोध है।"

ये बातें हो ही रही थी कि इतने मे महादेवी जी की भक्तिन दो प्लेट्स मे फल, मिठाई और नमकीन लिए हुए आ पहुँची। मैने उसके हाथो मे से प्लेट्स ले ली। भक्तिन ने आज ही अपना सिर घुटाया था और घुटा हुआ सिर बिजली की रोशनी मे चमक रहा था और भक्तिन की हँसी उसके बूढे देह-पजर से बाहर इस प्रकार बिखर पड़ती थी जैसे किसी युग-युग की प्राचीन कन्दरा मे से जोर की ध्वनि करता हुआ झरना नीचे गिर रहा हो।

भक्तिन के हाथ से प्लेट्स लेकर अभी मैं नीचे रख भी न पाया था कि आपने महादेवी जी की ओर मुडकर कहा, "आज तो नागर जी ने खाना खिलाने के लिए भी मना कर दिया है।" आपकी इस बात पर मुझे हँसी आ गई और कुछ थोडा आश्चर्य भी हुआ कि इतना मौन रहने वाला व्यक्ति एकदम कैसे इतना कह बैठा।

महादेवी जी ने इतना ही कहा, "चाय तो पी लीजिए। खाना भी मिल जाएगा।" मैंने उनमें से एक प्लेट आपकी ओर रख दी, और एक अपने सामने। इतने मे लीला एक सफेद कलई के टी-सेट मे चाय ले आई। चाय महादेवी जी ने लेकर अपने सामने वाले डेस्क पर रख ली और दोनो प्यालो मे बनाने लगी। एक प्याला उन्होने अपने लिए भी बनाया। बीच-बीच मे उसमे से एक दो घूंट चाय वे भी पी लिया करती थीं। वहाँ बिल्कुल भी ऐसा नही लग रहा था जैसे हम अतिथि हो और वे हमारा आतिथ्य कर रही हों। यही लगता था कि यह हमारा वर्षों से परिचित घर है और हम इसी घर मे बसने वाले एक परिवार के सदस्य हैं।

इसी बीच बात करती-करतीं महादेवी जी पूछ बैठीं, "आप यहाँ किसी और से भी मिले ?"

इसके उत्तर मे मै बोल पडा, "इनको तो कही आना-जाना या किसी से मिलना-जुलना पसन्द ही नही।"

"साहित्यिको मे मिलने पर उनके सम्बन्ध मे बनी हुई धारणा बिखर जाती है।" मेरी बात मे योग देते हुये आपने कहा।

"फिर भी जो जीवित हैं उनसे मिलना हो चाहिए।"

'विना मिले ही उनकी कृतियों से उनको जाना जा सकता है। कोई कितना भी छिपाए पर उसकी कृति मे उसका व्यक्तित्व झलक ही उठता है।"

'व्यक्ति स मिल कर उसक सम्बन्ध म और भी कुछ जाना जा सकता है। यदि जीवन का एक भी पन्ना पलट जाता है तो यह महत्त्वपूर्ण बात है।'

'अधिकतर व्यक्तियो से मिल कर दुख ही होता है आपने उदास होकर धीमे स्वर मे कहा इसलिए जहाँ तक हो सक न मिलना ही ठीक है।' क्षण भर के लिये आप रुके। फिर आपने कहा 'वाजपेयी जी के ही दो तीन पत्र आये थे। बड़े सुन्दर पत्र थे वे पर जब बनारस पहुचे तो उन्होने एक बार भी यह नही पूछा कि हमारे ठहरने का भी कोई प्रबन्ध है। दो मिनट बात तो कर लेते।'

इस पर महादेवी जी ने हँस कर कहा "आप यह बात ही क्यो सोचते हैं। आप यही समझिए कि वे एक अच्छे पत्र लेखक है।' यह बात सुन कर मुझे बड़ी हँसी आयी। कितना मीठा व्यग्य करती हैं महादेवी जी! फिर बोली 'आप तो अभी से इतने निराश हो गए हैं। बूढो की सी बातें करने लगे हैं। हँसत खेलते चले-चलिये।" उनकी इस बात पर मैं तो हँसी रोक न सका लेकिन आपको जरा भी हँसी नही आई और आपने वैसे ही गम्भीरता से कहा, खेल बेमन स तो नही खला जाता।"

फिर भी जिन साहित्यिका से मिलने का अवसर मिल जाये उनसे मिल ही लेना चाहिए। एकबार हम प्रसाद जी से मिलने बनारस गए। वहाँ आस पास मे प्रसाद जी क नाम से उन्हें कोई जानता ही न था। वहां के आदमी पूछने लगे सु घनी साहू के यहाँ जाना है? हम तो भाई न तम्बाकू खाते और न तम्बाकू खरीदना चाहते है हमे तो प्रसाद जी क यहाँ जाना है जो कवि हैं। हाँ, वे ही सु घनी साहू जो कवित्त लिखते हैं। मैंने सोचा कौन जाने ये कवित्त लिखने वाले सु घनी साहू ही प्रसाद' जी हो! चलो चलें। प्रसाद जी हुए तो ठीक है और कोई तम्बाकू का व्यापारी हुआ तो लौट आयेंगे ' वे यह कहानी सुना ही रही थी कि इतने मे अन्दर से उन्ह किसी ने बुलाया। और 'आई कहकर वह बात बीच मे छोड कर चली गई। अन्दर उन्ह कुछ देर लग गयी। इसी बीच एक महाशय ढीला पायजामा पहन अचकन डाट हुये और हाथ मे एक बन्डल सा लिए हुए आए और एक दम अन्दर घुस हुए चले गए।

इधर अन्दर से दो थालियो म खाना भी आ गया। इतने म वे महाशय भी अन्दर स आकर बैठ गये। उनका रग गोरा था शरीर से पतले दुबल थे उनके बाल ऊपर की ओर थोडे थोडे घु घराले थे देखने म सुदर लगते थे पर अभी चेहरे पर बचपना सा था। महादेवी जी भी आकर अपनी जगह बैठ गयी। उनकी ओर जरा पास म बढी और बड़े स्नेहमय ढग से बोली चलो तुम आ तो जाते हो। तुम्हारे बड़े भाई तो इलाहाबाद आते हैं, पर यहाँ नही आत है?'

"कागज लेना है उसी के लिए आया था।" इसी बीच महादेवी जी ने उनसे हम लोगों का परिचय कराया। वे महाशय प्रेमचन्द जी के सुपुत्र अमृतराय थे। नाम से तो उन्हें हम पहले से ही जानते थे। आपने कहा, "बनारस में आप तो मेरे पास ही खड़े थे। कमलापति मिश्र ने बताया था, पर उस समय बातचीत नहीं हो सकी।" हम खाना खाने लगे। उधर महादेवी जी उनसे बात करने लगीं। "कागज कहीं अच्छा सा मिल जाए तो हमें भी खरीदना है। हम अपने पत्र का पहला अंक *'निराला अंक'* निकालेंगे। उसमें निराला सम्बन्धी लेख ही होंगे। इधर जो पुस्तकालय रखेंगे उसका नाम भी 'निराला अध्ययन मन्दिर' *ही रखेंगे और सोचते हैं कि जो विद्यार्थी निराला या पन्त पर कुछ काम करना चाहे उसे निराला छात्रवृत्ति या पन्त छात्रवृत्ति के नाम से छात्रवृत्ति भी दें। कागज का परमिट तो हमें मिल ही जाएगा, नहीं तो* तुमसे लेंगे भाई।" महादेवी जी ने हँसकर कहा। "हाँ, हाँ, जरूर।" अमृतराय जी बोले और फिर तुरन्त ही जैसे कोई अपनी भूल सुधार रहा हो, "पर सब नहीं, थोड़ा सा।"

"पहले तुम अपना तो काम करो, अभी तो तुम्हारा ही काम ठीक नहीं, फिर बचेगा तो देखा जायगा। बढ़िया वाला कागज तो तुम लगाते ही नहीं होगे। वह हमारे काम आ जायगा।"

"बाजार में पेपर आया तो है।"

"हमें भी पत्र के लिए पेपर चाहिए। पर गवर्नमेंट के सब काम ऐसे ही होते हैं। सम्पूर्णानन्द ने कुछ रुपया साहित्यिकों के लिए भी रखा है। उसमें से कुछ पुरस्कार भी दिए जायेंगे और जो सहायता के योग्य समझे जायेंगे उन्हें सहायता भी दी जायगी। अब पहले लेखक एक प्रार्थना-पत्र दें फिर बहुत दिनों बाद उस पर निर्णय दिया जायगा।"

"बंगाल गवर्नमेंट ने तो नजरुल इस्लाम को 200 रु या 250 रु देना स्वीकार किया है।" अमृतराय जी ने कहा। "पता नहीं हमारी गवर्नमेन्ट कितना देगी पर सबसे बड़ी बात तो यह है कि लेखक प्रार्थना-पत्र इत्यादि सब कुछ कैसे देगा?" महादेवी जी बोलीं।

"यह तो गवर्नमेन्ट को स्वयं पता लगाना चाहिए कि कौन सहायता के योग्य है। लेखक प्रार्थना-पत्र दे इससे तो उसके आत्मसम्मान को बड़ी चोट पहुँचेगी। कोई भी लेखक कदाचित् ऐसा न करे।" मैंने कहा।

"यह तो है ही। पर सहायता पाने पर भी जहाँ अन्याय की बात होगी वहाँ लेखक विरोध करेगा ही। चाहे वह गवर्नमेन्ट अपनी हो या पराई! अन्याय नहीं देखा जाता।" उन्होंने कहा।

एक लेखक को किसी भी स्थिति में किसी के आश्रित नहीं रहना चाहिए चाहे

वह आश्रम गवर्नमेन्ट का हो या किसी और का। उसे कुछ काम करना चाहिए।" आपने कहा।

"साहित्यिक के जैसे सस्कार वन गए है उन्ही के अनुकूल वह काम कर सकता है ? निराला जी ही साहित्यिक के अलावा और क्या काम कर सकते थे ?"

"कुछ भी करते, पर किसी की दया पर आश्रित रहना तो अच्छा नहीं।"

"अच्छा आप ही बताइये निराला जी क्या करते ? कही थानेदार हो जाते या मुनीम होकर कलम घिसते ?"

"कुछ भी करते। अगर मुझे घास भी वेचनी पड़े तो मैं उसे अपमानजनक नही समझता। काम करने मे ही गौरव है, हाथ फैलाने मे नही।" आपने कहा।

"निराला जी और कुछ नही कर सकते थे। ऐसे ही सस्कारो मे वे रहे और इन्ही मे वे रह सकते हैं। एक बार भगवती प्रसाद वाजपेयी आए थे। वे कह रहे थे कि पैसे के लिए हमको जब लिखना होता है तो कुछ भी जल्दी-जल्दी लिख देते हैं और जब अपने लिए लिखते हैं तो निश्चिन्त होकर लिखते है पर जीवन मे इस प्रकार के खाने नही बनाए जा सकते।"

"यह तो ठीक है, पर जो ऐसा कहते हैं वे पहले कुछ और हैं बाद मे साहित्यिक।"

महादेवी जी ने अमृतराय जी से भी खाने का अनुरोध किया और उन्होने भी खाना खाया। भक्तिन से बोली, "भक्तिन मोटे-मोटे परावठे कर रही हो जरा पतले बनाओ। ये शहर के आदमी हैं।"

"लीला कर रही हैं। मुझे तो करने नही देती।" भक्तिन ने अपनी भाषा मे कहा। इतने मे लीला कुछ गरम-गरम परावठे ले आई। पहले आप से लेने का अनुरोध किया। आपने तो अपने दोनो हाथो से थाली को ढक कर अपने को बचा लिया, पर उनकी उस कृपा से मैं नही बच सका। एक परावठा वह डाल ही गई। मैंने उसमे से थोडा-थोडा खाना आरम्भ किया। अब अमृतराय जी का नम्बर आया। उन्होने बहुत अनुरोध करने पर भी कुछ न लिया तो मेरी ओर सकेत कर बोली, "तुमसे तो शिवचन्द्र ही अच्छा।" मुझे इस बात पर हँसी आई कि अधिक खिलाने के लिए किस सुन्दर ढग से प्रोत्साहन दे रही थीं। आप सच समझिए यदि कही खिलाने पिलाने का काम महादेवी जी के हाथ मे दे दिया जाये तो खाने वालो को तो कुछ शिकायत *न रहेगी पर निस्सदेह एक सप्ताह का सामान पाँच ही दिन मे समाप्त हो जाया* करेगा।

अब नौ बज गए थे। अमृतराय जी ने घडी की ओर देखा और बोले, "अब चलूँ।" और उठने का उपक्रम करने लगे। महादेवी जी ने तुरन्त पूछा, "सुधा कैसी है ?"

"ठीक है।"

"और लडका ?"

"वह भी ठीक है।" उन्होने जरा मुस्करा कर लजाते हुए कहा। तुरन्त महादेवी जी पूछ बैठी।

"लडके का क्या नाम रक्खा है ?"

"आलोक ।"

"कोई कह रहा था 'बादल'। मैं सोच रही थी पहले पहल ही यह क्या नाम रक्खा। अब ठीक है। अमृत सुधा और आलोक। महादेवी जी यह कह ही रही थी कि इतने में अमृतराय जी चलने के लिए उठ खडे हुए। महादेवी जी ने अपनी बात को बढाते हुए कहा, "हाँ, सुभद्रा जी से यह कहना कि वे बहुत दिनो से नही मिली। आती हैं तो चुपचाप निकल जाती है। अब की बार जरूर मिलकर जायें। अब तो उनका देवता भी हो गया है।' इस समय तक अमृतराय जी बाहर निकल गए थे। महादेवी जी ने आपकी ओर मुडकर कहा, "इस घर से हमारा बहुत पुराना सम्बन्ध रहा है, प्रेमचन्द जी के आगे से ही। इनके घर के सभी प्राणी बहुत अच्छे हैं। प्रेमचन्द जी तो बहुत ही अच्छे थे।" इतना कहकर वे हँसने लगी और फिर बोली, "एक बार प्रेमचन्द जी यहाँ मुझसे मिलने आए। पुराने ढग की घुटनो तक की धोती पहन रक्खी थी और एक अगोछे मे कुछ कपडे लपेट रक्खे थे। नौकरो ने यह समझकर कि कोई गाँव का आदमी है, उनसे कह दिया, "गुरु जी अभी नहीं मिलेंगी ।" पता नही बेचारे कितनी देर इस नीम के नीचे बैठे रहे ।"

"कौन से नीम के नीचे ?" मैंने पूछा। "यही है न बाहर । फिर मैं आयी तो उन्हे देखा। तब से मैंने सब नौकरो से यह कह रक्खा है कि कोई भी आए मुझे फौरन सूचना मिलनी चाहिए। एक बार चाहे किसी कार वाले की सूचना देने मे देरी हो जाए, पर किसी गाँव वाले या और किसी ऐसे आदमी की सूचना तुरन्त मिलनी चाहिए।"

इसके बाद क्षण भर रुकी फिर बोली, "खैर इन दोनो घरो का सम्बन्ध तो अब हुआ है पर मेरा इन दोनों घरो से बहुत पुराना परिचय है, सुभद्रा जी से भी बहुत पुराना परिचय है।"

"जब हम यहाँ इलाहाबाद आए तो सुभद्रा जी का यहाँ एकछत्र राज्य था। उस समय कवि सम्मेलन मुझे बहुत अच्छे लगते थे। पहले से जाकर पास मे बैठ जाती थी और यही सोचती रहती थी कि कब मेरा नाम पुकारा जाये। पडित जी समस्याओ की एक लम्बी सूची दे जाते थे, और मैं उन सबकी पूर्ति किया करती थी। शायद ही कोई समस्या बची हो। जैसे ही हमारा नाम पुकारा गया कि हम पहुँच गये सुनाने। कवि सम्मेलनो मे भाग लेना बहुत अच्छा लगता था। पता नहीं यह उसी की तो प्रति-

क्रिया नही कि अब मैं कही आती-जाती नही। छठी क्लास से ही मैं कवित्त-सवैये लिखने लगी थी।"

मैंने बातचीत मे ही काटकर बडे आश्चर्य से कहा, "आप कवित्त सवैये लिखती थी? व्रजभाषा मे?" "हाँ, हाँ, व्रजभाषा के कवित्त सवैये।"

"अगर अभी बचे पडे हो तो एक बार आप उन्हे दिखाइये," आपने कहा।

"हाँ, कही बडल बँधा हुआ पडा होगा।" यह कह कर फिर उन्होने अपनी पुरानी बात पर आते हुये कहा।

"कवि सम्मेलनो मे हमे हमेशा फर्स्ट प्राइज मिला करता था। एक दिन किसी ने सुभद्रा जी से कह दिया कि एक लडकी आयी है, वह कविता लिखती है।" सुभद्रा जी बोली, "कौन है जी वह लडकी। हमसे मिलाना उसे।" खैर एक दिन हम सुभद्रा जी के पास गये। सुभद्रा जी बोली, "हमने सुना है कि तुम कविता लिखती हो। सुनाओ तो कैसी कविता लिखती हो।" हमने कई कवितायें सुनाई। सुन कर बोली, "हाँ, अच्छी लिखती हो। तुम अपनी कविता लिखकर हमारे पास भेज दिया करो। मैं ठीक कर दिया करूँगी।"

"कहाँ भेज दिया करू" मैंने पूछा।

"जबलपुर"

'फिर आपने भेजी?"

"मैंने सोचा क्या भेजूँगी। नही भेजी।" महादेवी जी ने कहा।

"पत जी भी यहाँ म्योर सेन्ट्रल कालिज मे पढा करते थे। एक बार यहाँ हिन्दू हॉस्टेल मे कवि सम्मेलन हुआ। वहाँ हम भी गये। पत जी भी लडको मे बैठे थे। इन्होंने बाल तो अपने बढा ही रक्खे थे। तब हम नही जानते थे कि ये पत जी हैं। खैर, उस कवि सम्मेलन मे फर्स्ट प्राइज तो मिल गया, पर बाद मे मैं अपनी सहेलियो से यही पूछती रही थी कि वह लडकी लडको मे क्यो बैठी थी?" इस पर बडी हँसी आई। फिर बोली, "उन दिनो पत जी के भाई देवीदत्त जी भी उनके साथ ही पढते थे। जब असहयोग आन्दोलन चला तो एक मीटिंग हुई। जब उसमे हाथ उठवाये गये कि कौन-कौन कालिज छोडेगा तो उनके बडे भाई देवीदत्त जी ने तो अपना हाथ नही उठाया पर पत जी ने उठा दिया। इसी सिलसिले मे पत जी की पढाई छूट गई थी और देवीदत्त जी ने यही से बी० ए०, एल-एल० बी० किया।"

"पत जी बडे ही सौंदर्य प्रिय है। वे अपने चारो ओर की वस्तुयें सुन्दर ही चाहते हैं। कमरे मे चीजें जिस प्रकार रक्खी हुई है उनमे से अगर एक भी इधर से उधर हो गई तो बस उन्हे अच्छा नही लगता। उनके चारो ओर उनके मन से सामजस्य रखने वाला वातावरण होना चाहिये। विषमता न हो।"

"तब पंत जी अब किस प्रकार रह रहे हैं, क्योंकि यहां तो जीवन चारों ओर विषमताओं से ही भरा रहता है।"

"कदाचित् पंत जी को अब विषमताओं में रहने की आदत भी हो गई हो। निराला जी को तो पहले से थी ही। उनका तो पूरा जीवन ही विषमताओं में बीता है। पर पंत जी एक काफी बड़े घराने में पैदा हुये थे। अल्मोड़े का एक बड़ा भाग इन्हीं का था। इनकी माता जी का तो देहान्त इनके जन्म के साथ ही हो गया था। इनके लिये इङ्गलिश नर्स रखी गई थी। प्रारम्भ से ही ये सुन्दर और कोमल वातावरण में पले और रहे।"

"निराला जी के लिये यह बहुत बड़ी बात है कि पूरा जीवन इतनी विषमताओं से भरा होने पर भी उन्होंने साहित्य को इतना दिया। कोई और होता तो ऐसी विषमताओं में उसकी साहित्यिकता समाप्त हो गई होती। ये तो निराला जी ही थे जो विषमताओं में भी बढ़ते ही रहे।" मैंने उदास होकर कहा।

"हाँ भाई, निराला जी ने बहुत किया।" महादेवी जी बात का समर्थन करती हुई बोलीं।

"अब तो साहित्य में कोई ऐसा आदमी दिखाई नहीं देता कि इस प्रकार उठे। उधर भी जो कुछ कर रहे हैं, पुराने लोग ही कर रहे है।" आपने कहा।

"राजनीति में, साहित्य में और सभी क्षेत्रों में एक ऐसा समय आता है। इधर तो अभी पंत और निराला जी के हाथ में ही पतवार है और प्रगतिवादियों में अभी कोई उठ नहीं सकता, क्योंकि जिनके विषय में वे लिखते हैं उनमें से आये तो वे हैं नहीं। वे भी हममें से ही हैं। गरीब मजदूरों में से किसी ऐसे आदमी का निकलना मुश्किल है, क्योंकि उनकी शिक्षा ही नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में यदि हम में से निराला या पंत इस ओर मुड़ जायें तो अच्छी चीज दे सकते हैं; पर हमने जो संस्कृति बना ली है उससे भी बड़ा भारी मोह है। इस पुरानी संस्कृति को कैसे छोड़ सकते हैं?" इस प्रकार इस विषय पर थोड़ी देर तक महादेवी जी धारा-प्रवाह बोलती रहीं। इसी बीच मुझे याद आया कि प्रसाद जी से मिलने की बात सुनाती-सुनाती वे उठ कर चली गई थीं और वह बात वहीं रह गई थी और दूसरी बातों में उसका बिल्कुल ही ध्यान छूट गया था। अपनी बात समाप्त कर जैसे ही महादेवी जी क्षण भर को रुकीं कि मैं बोल उठा, "हाँ, जब आप प्रसाद जी से मिलने गई थीं वह बात तो वहीं रह गई।"

इस पर वे हँस पड़ीं। हँस कर बोलीं, "लो मैं तो भूल ही गई थी" और फिर आपकी ओर मुड़ कर तथा मेरी ओर संकेत कर कहने लगीं, "यह लड़का बड़ा ही दुष्ट है। पता नहीं चुप-चुप क्या करता रहता है?" यह बात उन्होंने बड़े ही स्नेहमय ढंग से कही थी। उनके दुष्ट शब्द में कितना स्नेह भरा था, मापा नहीं जा सकता।

मैं हंस पडा मन ही मन। मुझे एक प्रकार की अपूर्व प्रसन्नता हुई। चाहता हूं कि अब जब मैं उनसे मिलने जाया करु तो वे मुझे इसी प्रकार कभी-कभी दुष्ट कह दिया करें। वैसे ही हंसते हुए मैंने पूछा, "फिर क्या हुआ?"

'हम घर पर पहुंच गये। हमने प्रसाद जी का फोटो तो देखा ही था। प्रसाद जी बाहर आये, हमने उन्हें पहचान लिया। परिचय पा जाने पर प्रसादजी बोले, "अरे तुम ही हो महादेवी। तुम तो बिलकुल भी नही जंचती।" "तुम्ही कौन से जंचते हो!" मैंने कहा। इस पर बहुत ही हंसी आई। महादेवी जी भी खूब हंसी। फिर बात को समाप्त करती हुई बोली, "उन दिनो प्रसाद जी कामायनी लिख रहे थे। प्रसाद जी भी बहुत ही अच्छे थे।"

इतने मे सुनयना चुपचाप अपने छोटे-छोटे पैर रखती हुई आई और आपने जो ओवरकोट पैरो पर डाल रक्खा था उस पर बैठ गई। महादेवी जी ने उसकी ओर देखा और बोली, "यह जान लेती है कि यहां इसे कोई भय नही है।" और जब वह निद्रा की मुद्रा मे अवस्थित हो गई तो फिर बोली, "जब मैं काम करती-करती तख्त पर सो जाती हूँ तो यह भी वही सो जाती है।" महादेवी जी तख्त पर सोती हैं यह जान कर पता नही क्यो अन्तर मे पीडा सी हुई। उसके पहले दिन की सब बातें याद आने लगी। उन्होने बताया था न कि वे दिन मे एक समय भोजन करती हैं, रात्रि में दो घटे से अधिक सोती नही। आज यह पता लगा कि तख्त पर सोती हैं। ये हैं महादेवी जी। उस दिन आपने ठीक ही कहा था, "ऐसी आत्मा शताब्दियो मे कही एक अवतरित होती है।"

अब रात्रि के साढे नौ का समय हो गया था। मेरे मन मे घर चलने की बात आई। मैंने महादेवी जी से पूछा, "साहित्य ससद का स्थान ठीक-ठीक किधर है? कल मैं इन्हे दिखा लाऊंगा। कल कदाचित् हम उधर नहाने के लिए जांय।"

'उधर नहाना क्या रहेगा, इनको त्रिवेणी ले जाओ।"

"भीड इन्हे बिलकुल अच्छी नही लगती" मैंने कहा।

"अकेले रहना ही ठीक है। इधर-उधर घूमने से शक्ति का क्षय होता हैं" आपने कहा।

"जनता मे तो घूमना ही चाहिए। जनता मे बिना घूमे किसी भी क्षेत्र मे कोई बडा काम नही हो सकता" महादेवी जी ने कहा।

"यह कोई आवश्यक नही है" आपने कहा।

"नही भाई, जनता का ज्ञान तो जनता मे घूमने से ही होगा।"

'सडक पर जाते हुए हम एक भिखारी को देखकर भी उससे प्रेरणा ले सकते हैं। इसकी क्या आवश्यकता है कि हम भिखारियो मे घूमते ही फिरें?'

"बहुत सी बातें घर पर नहीं जानी जा सकती। महात्मा बुद्ध को भी जनता मे घूमना पडा था।"

'महात्मा बुद्ध ने धर्म का प्रचार करने के लिए राज्य शक्ति का आश्रय लिया। जनता मे भी घूमे। पर यदि वे चाहते तो एक जगह बैठे-बैठे भी जनता को अपने पास खीच सकते थे।"

"मुझको तो गाँवो मे घूमने मे, गाँव वालो से मिलने-जुलने मे बहुत अच्छा लगता है। जब हम पढते थे तभी से बहुत अच्छा लगता था। जब मैं एम० ए० मे थी तभी यहाँ आस-पास के गाँवो मे अनेको पाठशालायें खोली थी। उनमे से कुछ तो अब भी है।"

"एम० ए० मे आपने पाली प्राकृत ग्रुप लिया था न ?" अब मैंने पूछा।

"हाँ, पाली मे रिसर्च करने के लिए बाहर भी जाना चाहती थी, पर फिर इरादा छोड दिया। अब तो प्रयाग छूटता नही दीखता।" फिर आपकी ओर सकेत करके बोली, "तो कल इनको त्रिवेणी स्नान कराओ। वहाँ से नाव पर झूंसी चले जाना। वहाँ हमारा भी बनाया हुआ घर है। मेरी तो कल छुट्टी नहीं हैं, नही तो मैं चलती, सब दिखाती। पहले तो मैं माघ के महीने मे वहाँ जाकर रहती थी। गाँव वाले आकर रात के दो-दो बजे तक अपने गीत सुनाते रहते थे। कितने अच्छे भाव होते हैं ग्राम गीतो मे, कितना साहित्य भरा पडा है उनमे, ये उन लोगो के गीतो को सुनने से पता लगता है। हमारे बदलू कुम्हार का घर भी वही है। यह बदलू बिलकुल खराब घडे बनाया करता था। मैं कभी-कभी इसे कह दिया करती थी, यह क्या बनाते हो, बदलू, अच्छे जरूर बनाया करो। फिर पता नही वह क्या करता रहा। छुट्टी के दिन वहाँ के बच्चो को पढाने जाया करती थी, तो कभी कभी उनको तस्वीर खिलौने भी ले जाती थी। एक दिन बदलू आया और बोला, 'गुरु जी एक तस्वीर मुझे भी दे दो।' मैंने एक सरस्वती की तस्वीर उसे दी। उसने उसे अपने टूटे-फूटे बाँस के किवाडो पर चिपका दिया। दिवाली के दिन उसने मुझे यह सरस्वती की मूर्ति बना कर दी। एक ओर रखी हुई सरस्वती की श्वेत मूर्ति की ओर सकेत कर बोली और फिर कहा, "आपको आश्चर्य होगा यह गाधी जी की मूर्ति भी उसी के हाथ की है" ऊपर रखी हुई गाधी जी की मूर्ति की ओर सकेत कर उन्होंने कहा। मैंने गाधी जी की मूर्ति को देखा। वह मूर्ति कितनी सुन्दर थी। पीला गेरुआ रग था उसका। महात्मा जी ठोढी पर हाथ रखे गम्भीर विचार-मुद्रा मे बैठे हैं।

"ऐसे ही मैं बहुत से खिलौने इकट्ठे करती रहती हूँ। पर जब कही जाना होता है तो सभी चीजें छोडकर चली जाती हूँ" महादेवी जी ने कहा।

उनकी इस बात से यह बात बिल्कुल स्पष्ट थी कि वे इधर-उधर की वस्तुओं का संग्रह तो करती हैं, पर उस संग्रह से उन्हें मोह बिल्कुल नहीं ।

'यहाँ कोई अडैल जगह है ? मेरी मामी कह रही थीं कि वहाँ एक मन्दिर है ।" मैंने पूछा ।

"हाँ यहाँ से दो ढाई मील है । वहाँ भी हो आना । वहाँ भी हमारे हाथ का बनाया हुआ घर है । पता नही अब तो टूट-फूट गया होगा" उन्होंने कहा । फिर आपकी ओर मुड कर बोली, "झूँसी जरूर हो आना, बहुत से साधु सन्यासी आए हुए होंगे ।"

'त्रिवेणी नहाने में मुझे विशेष आनन्द आएगा नही । मैं इन बातो मे अब विश्वास नही करता । साधु संतो मे भी अब कोई आकर्षण मेरे लिये नही रहा । मेरा तो लालन-पालन ही ऐसी जगह हुआ था, जहाँ सैंकडो साधु सन अब भी रात-दिन रहते हैं ।"

'तो फिर आप नास्तिक भी है" महादेवी जी ने हँस कर कहा । मुझे भी हँसी आ गई । मैं सोचता हूँ जैसे पहले महादेवी जी कवि सम्मेलन मे बहुत जाती थी और उसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि वे अब बिल्कुल नही जाती, ऐसे ही आपका लालन-पालन एक धर्म के केन्द्र मे हुआ और कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि अब आप धर्म की इन बातों मे विश्वास नही करते ।

मैं उठ कर कमरे मे एक ओर रक्खी हुई मूर्तियाँ देखने लगा । पर मुझे उधर जाता हुआ देखकर बोली, "क्यो शिवचन्द्र क्या है ?'

"कुछ नही, बदलू कुम्हार की मूर्तियाँ देख रहा था ।"

मैं मूर्तियाँ देखने लगा । एक ओर बुद्ध की मूर्ति थी । पास ही सरस्वती की मूर्ति भी थी । दानों मूर्तियो का चेहरा एक-सा था । शायद बदलू ने सरस्वती की मूर्ति के साथ ही वह मूर्ति भी बनाई होगी । दोनो के चेहरे एक से बना दिये । बेचारा बदलू रेखाओ और रगों की इन सूक्ष्म बातो को नही जानता ।

उस समय वे कुछ बातें करती रही । इधर मैं चित्र देखता रहा । आज महादेवी जी ने दो बार मेरा नाम 'शिवचन्द्र' लिया था । उनके इस प्रकार पुकारने से एक अपूर्व आनन्द से भरा मन सिहर उठा था । इन कानो ने कई वर्षों से ऐसी पुकार नही सुनी थी । दो-तीन साल से, मुझे घर पर भी माँ, भाई आदि सब 'नागर' 'नागर' कहने लगे हैं । उनके इस प्रकार पुकारने से ऐसा लग रहा था जैसे अन्तर के किसी अभाव की पूर्ति हुई हो या प्राणो को एक ऐसी वस्तु मिल गई हो जिसके लिए वे मौन ही छटपटा रहे थे और मैं उससे बिल्कुल अनभिज्ञ था ।

चित्र देखकर मैं आपके पास आया । साढे दस का समय हो गया था । मैंने आप से चलने को कहा । आप उठकर चले । कमरे के द्वार पर आकर महादेवी जी ने कहा,

"संसद् की बिल्डिंग का 175 नम्बर है—रमूलाबाद। मेरी तो छुट्टी नही, नही तो मैं चलती। अभी तो आप हैं ही।"

"कल जाने को कह रहे हैं।" मैंने कहा।

"कौन सी ट्रेन से ?" उन्होने प्रश्न किया।

"मैं तो ट्रेनों का समय जानता नही। 'नागर' जी को ही पता है, यहाँ से कौन ट्रेन कब जाती है। टाइम टेबिल भी मुझे ठीक से देखना नही आता।" इस पर बडी हसी रही। हंसते हुए ही मैंने कहा, "कल चार बजे की ट्रेन से जाने को कह रहे हैं।"

"एक ट्रेन रात को भी तो जाती है।"

"हाँ, जाती तो है।"

'तो फिर उससे चले जायेंगे। चार बजे मैं पढाकर आ जाऊँगी। आप अपना सामान लेकर यही आ जाइयेगा। यही से फिर स्टेशन चले जाइएगा।" आपने उनकी इस बात का पता नही क्यों कुछ उत्तर नही दिया था और मैंने भी कुछ नही कहा। हम चुपचाप बरामदे से उतर कुन्जो के बीच से बगले के द्वार तक आ गए। महादेवी जी भी साथ साथ आ रही थी। द्वार बन्द थे। आपने उन्हे खोला। बाहर निकले। महादेवी जी भी बाहर तक आ गईं। हमने हाथ जोडकर प्रणाम किया, उन्होने भी। बाहर बिल्कुल नीरवता थी। सडक पर किसी भी आने-जाने वाले की पदचाप नही सुनाई देती थी। उस समय उन्होने कहा, "कोई भी आने-जाने वाला दिखाई नहीं देता। सवारी मंगाऊँ।"

"नही, नही, हम चले जायेंगे।" मैंने कहा।

"अच्छा देखती हूँ, तुम्हारे पैर कितनी जल्दी-जल्दी पडते हैं ?" उस समय पता नही क्यों एक उदासी सी छा गई थी। महादेवी जी बाहर शीत मे द्वार पर ही खडी थी और वे तब तक खडी ही रही जब तक हम उनकी आँखों से ओझल नही हो गए।

महादेवी जी से यह भेंट जीवन मे कभी भी भुलाई न जा सकेगी। मार्ग मे हम कुछ भी बात नही कर सके थे। उस समय आप क्या सोच रहे थे, मेरे लिए जानना कठिन था। पर मेरे मन मे तो बैठा-बैठा कोई यही दुहरा रहा था, "अच्छा देखती हूँ, तुम्हारे पैर कितने जल्दी जल्दी पडते हैं।"

इस समय रात्रि का एक बजने वाला है। अच्छा, विदा!

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

14

30 ए, बेली रोड, प्रयाग
7/2/47

आदरणीय 'मानव' जी,

अभी-अभी आपका पत्र मिला है। संध्याकाल है। पता नहीं क्यों सध्या के साथ एक विषाद की रेखा सी मन में खिंच जाती है।

सम्बोधन की बात मैं लिख ही गया। मैंने एक बार पहले भी आपको पत्र में लिखा था कि उमड़ते हुय अन्तर पर मुझसे बाँध नहीं बाँधा जाता, पर कहीं-कहीं बाँधना ही पड़ता है। आज मैं यह सोच रहा हूँ कि अनुभूतियों का मूल्य तभी तक है जब तक य अन्तर में छिपी रहे। पर मैं नहीं छिपा पाता। यह मेरी कमजोरी ही है। पर इतना विश्वास है कि जहाँ बहुत सी बातें मैंने आप से सीखी हैं, वहाँ यह भी आप ही आप आ जाएगी।

उस दिन रेस्ट्राँ चला ही गया। रेस्ट्राँ इसीलिए गया था कि कदाचित् मन की हलचल शान्त हो जाए, पर पता नहीं क्यों उसके बाद भी मैं कुछ नहीं कर सका। केवल कमरे में आकर पड़ गया था।

मैं अभी तक महादेवी जी के यहाँ नहीं जा पाया। रविवार को जाऊँगा।

इलाहाबाद आप रहने के लिए क्यों नहीं आ सकेंगे। मैंने तो कमरे वाले से भी कह दिया है और ठीक-ठाक भी कर लिया है। आप यह न समझियेगा कि आपकी उपस्थिति स मेरे अध्ययन-कार्य में विघ्न पड़ेगा। मैं तो समझता हूँ आप मुझे और अधिक प्रेरणा दे सकेंगे। आप एसी बात न लिखा कीजिए।

कल शिवरानी जी (श्रीमती प्रेमचन्द्र) अपने भाई के यहाँ यानी वकील साहब के यहाँ आई थी। इसी मकान में तो मैं रहता हूँ।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

15

30 ए, बेली रोड,
प्रयाग
13/2/47

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका 8/2 का लिफाफा मिला।

'महादेवी जी प्रत्यक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व की छाया में खड़ा करके क्यों देखना चाहती हैं ?' इसका मैं क्या उत्तर दूँ ? हाँ, मुझे ऐसा लगा है कि यह उन्हें कुछ अच्छा लगता है कि मिलने वाले उनके सामने बालक की तरह बातें करें। पता

नही यह वृद्धत्व की भावना उनमे कहाँ से आ गई है ? कभी-कभी मुझे हँसी आती है कि अभी तो उन्होंने चालीस की रजत-रेखा भी पार नही की।

'मैं तो महादेवी को व्यक्ति न मानकर एक भावना का प्रतीक मात्र मानता हूँ' अपने इस कथन पर कुछ प्रकाश डालिएगा। मैं तो इसका आशय कुछ भी न समझ सका।

कवि सम्मेलनो मे आपकी तरह कविता सुनाने का उत्साह अब मुझमे भी नही रहा। प्रयाग में रहते मुझे दो साल हो जायेंगे, पर यहाँ मैंने आज तक भी किसी सम्मेलन मे भाग नही लिया। अब मेरे स्वर मे भी मधुरता नही रही, स्वर मे ही क्या जीवन मे ही मधुरता नही रही। कभी-कभी ऐसा लगता है जैसे यह जीवन अतीत का कंकाल मात्र हो। भविष्य मे क्या होगा, पता नही।

'बच्चन' जी ने अपने पत्र मे यदि 'अवसाद' के विषय मे कुछ लिखा हो तो उससे मुझे अवगत कर दीजिएगा। अवसाद की सम्मतियो की फाइल देखने की इच्छा है। यदि आप ठीक समझें तो कभी दिखा दीजियेगा। जिनको यह पुस्तक समर्पित की गई है, क्या उस फाइल मे इस पुस्तक पर उनकी भी कोई सम्मति है ? यदि आपने उसे फाइल मे नही रखा तो भी मैं जानना चाहता हूँ, इस गीति ग्रन्थ के सम्बन्ध मे उनकी क्या धारणा है ? जानता हूँ यह मेरा अनधिकार है, पर मन नही मानता। 'देशदूत' के लिए जिस समय मैं 'अवसाद' की आलोचना लिख रहा था, तब गीतो मे चित्रित की हुई मूर्ति ने मस्तिष्क को ढक लिया था, इसलिये सब कुछ बात कवि की प्रेरणा के विषय मे ही कह गया, कवि के विषय मे कुछ भी नही कह पाया।

यदि कोई भी व्यक्ति निश्चयपूर्वक किसी के जीवन को अपनी रुचि के अनुसार मोडना चाहे तो कदाचित् ही मोड सके, क्योंकि जीवन के प्रवाह पर बाँध नही बाँधा जा सकता। किन्तु हम जिन व्यक्तियो के सम्पर्क मे आते हैं उनका हमारे जीवन के दिशा निर्धारण मे अवश्य कुछ न कुछ योग रहता है। जीवन मे बहुत से व्यक्ति मिलते हैं, बहुत से छूट जाते हैं, पर उन सब व्यक्तियो मे से कुछ के चरण-चिन्ह हमारे जीवन-पुलिनो पर रह ही जाते हैं और जब जीवन की पूरी इमारत का निर्माण हो जाता है तो कभी-कभी देखा गया है कि उसकी नीव उन्ही चिन्हो पर रखी गई थी। यदि वास्तव मे देखा जाए तो उस समय न तो आदर्श व्यक्ति ने ही यह सोचा होगा कि अमुक व्यक्ति मेरे चरण चिन्हों पर चले और न चलने वाले व्यक्ति ने यह सोचा होगा कि मैं उस व्यक्ति के चरण चिन्हो पर चलूँ। यह सब कुछ अपने आप ही हो जाता है और जब हम पीछे की ओर मुडकर देखते हैं तो पता चलता है हम इस व्यक्ति के साथ कहाँ से कहाँ आ गये।

'लेकिन जो देख लिया, वैसा देखने को अब न मिलेगा।' आपकी यह बात भी है तो कठोर सत्य, पर इसे पढ कर मन को बडी ही पीडा होती है। मन करता है जीवन के कुछ बीते हुए पल, परिस्थितियो ने जिन पर अमरता की छाप लगा दी है [illegible]

:

वापस आ जायें; पर आयेंगे नही, यही कठोर सत्य है और यही जीवन है। वास्तवि
जीवन मे भावना को, कल्पना को, स्वप्नो को और आशा को कोई स्थान नही।

व्यक्तित्व एक बहुत बडी चीज है। बच्चो के घरौंदे की तरह पल-पल मे बनाय
बिगाडा नही जाता। व्यक्ति के जीवन के सपूर्ण सघर्षों का सार उसका व्यक्तित्व है
व्यक्तित्व की महानता किसी विशेष वर्ग मे होगी, यह भी बात नही। महात् व्यक्तित
एक दीन हीन अकिंचन का भी हो सकता है। आप ठीक कहते हैं कि 'यदि किमी
अपने व्यक्तित्व को किसी के भी सामने खो दिया तो वह मर गया।' सचमुच वह म
गया क्योकि उसने तो अपनी सारी जीवन सचित पूंजी ही गंवा दी। अपने व्यक्तित्व
का निर्माण करना जितना कठिन है, उससे अधिक कठिन है उसकी रक्षा करना। प
ससार मे ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं जो रक्षा कर पाते हैं। जो रक्षा कर पाते हैं
महान् हैं और विश्व ने यदि उनका आदर सम्मान आज नही किया तो कल वह
अवश्य करेगा। जिस व्यक्ति का कोई व्यक्तित्व नही उसका कोई अस्तित्व नही
मेरी तो ऐसी धारणा है।

लो, मैं लिखता-लिखता कहाँ आ गया!

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

16

30 ए, बेली रोड
प्रयाग
19/2/47

आदरणीय 'मानव' जी,

16/2 का पत्र कल सुबह मिल गया था।

मैं 8 फरवरी की सध्या को महादेवी जी से मिलने गया था। नौकर स्लिप ले
गया। आकर कहा "वे बीमार हैं, पर आपकी कुशल-क्षेम पूछी है।" मैंने कहा
'क्या बहुत अधिक बीमार हैं?" बोला "हाँ आठ दिन से बुखार है। विद्यापीठ भी नही
जाती।" मैं चला आया भारी मन लिए।

16 की सध्या को भी मैं गया। उस दिन नौकर ने कहा "अभी ठीक नही हुईं।
किसी दिन सुबह को आइयेगा।"

मुझे जब उनके यहाँ से निराश लौटना पडता है तो मुझे दुःख नही होता, क्योंकि
जब मैं उनके यहाँ जाता हूँ तो यह आशा लेकर नही जाता कि वे मिलेंगी ही। अब
मैं होली के दिन सध्या को ही जाऊँगा। उस दिन उनका जन्म-दिवस है। कदाचित्
उनके दर्शन हो सकें।

अप्रेल, मई, जून, ढाई महीने आप इलाहाबाद रहे। जून के अन्तिम सप्ताह मे
बम्बई की बात सोची जा सकती है। उस समय कदाचित् मैं भी आपके साथ चल

रहूँ। मन यहीं सोच कर उदास हो जाता है कि प्रयाग में मैंने सब ठीक है, पर मैंने का उद्गम दिखाई नहीं देता। बम्बई के लिए आपने तीन कहानियाँ तो लिख ली थीं। इस बीच में आप एक कहानी और लिख लीजियेगा। बम्बई से कहाँ आपका कुछ हिसाब तय हुआ था, वहाँ का कोई उत्तर भी आता है या नहीं?

दुःख होता है कि साधन उन व्यक्तियों के पास है जो उनका उपयोग नहीं कर सकते; किन्तु जो उपयोग कर सकते हैं, उनके पास साधन नहीं।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

17

30 ए, ऐनी रोड,
प्रयाग
22/2/47

आदरणीय 'मानव' जी,

सूर्य की किरणें अभी फूटी नहीं थीं कि आप का पत्र मिला। मैं महादेवी जी के यहाँ जाने ही वाला था। आपके पत्र को दो बार पढ़ा। पता नहीं क्यों इस पत्र ने मन को एक अज्ञात आह्लाद से भर दिया।

महादेवी जी के यहाँ जाने पर भाव परिचारक ने बताया, "गुरु जी की तबियत अब दो-तीन दिन से ठीक है।" यह दूसरी प्रसन्नता की बात थी। पर जब चिट के उत्तर में परिचारक ने आकर महादेवी जी के आने की सूचना दी, तब तो आह्लाद की सीमा न रही और वहीं एकाकीपन में ही अन्तर का आह्लाद मुस्कान की रेखाओं में अधरों पर अंकित हो गया।

कुछ ही क्षणों बाद महादेवी जी आईं। अपने आसन पर बैठ गईं। स्वच्छ और मन्द हँसी हँस कर कहने लगीं, "उस दिन तो तुम लोग नहीं आए। भक्तिन ने बहुत चीजें बनाई थीं। बेचारी नौ बजे तक बैठी रही। जब नौ बज गए तो मैंने कहा, अब वे नहीं आवेंगे।"

'मानव जी उस दिन चार बजे ही चले गये, पर यह कह रहे थे कि हमने दो दिन बराबर कितना कष्ट दिया" मैंने कहा।

"फिर कुछ पता भी तो नहीं लगा" वे बोलीं?

"हाँ, इसके लिये तो मैं दोषी हूँ। मैंने आपको सूचना नहीं दी। उन्होंने तो पत्र में लिखा भी था, "उस साम्प्रदायिक तनातनी में भी मुझे कोई जान से मारता नहीं, क्योंकि मुझे प्राण प्यारे नहीं, पर फिर भी महादेवी जी चिंतित अवश्य रही होंगी।"

"कुछ पता ही नहीं लगा। अखबार में तो दिखवा लिया था कि कोई घटना तो नहीं हो गई।"

"नही, यहाँ से थोडी दूर चलने पर ही एक ताँगा मिल गया था।"

"बाद मे मिल गया होगा, पर जब तक मैं देखती रही थी, तब तक तो कोई आने-जाने वाला भी दिखाई नही दे रहा था।"

"क्या बतलाऊँ उस दिन वे चार बजे ही चले गये, मैंने तो रुकने को बहुत कहा।"

"वे आठ बजे की ट्रेन से वहाँ से जाने को कह तो गये थे। मैं तो जैसे मेरे प्रोग्राम इधर से उधर नही हो पाते, ऐसे ही दूसरो के भी समझती हूँ। उस दिन तो उन्हे अच्छा खाना भी नही मिल सका था।"

'हम तो सकुशल पहुँच गये, पर उसके एक-दो दिन बाद से ही आप की तबियत बहुत खराब हो गई। अब स्वास्थ्य कैसा है ?" मैंने पूछा।

"ऐसे ही चलता रहता है। पहले डाक्टर की दवा बदली, दूसरे ने सैवेजोल खिलाना शुरू कर दिया। दस दिन मे ही 40 टेबलेट खिला दी। उससे मेरा शरीर बिल्कुल गिर गया। तीन दिन तक मैं बिल्कुल उठ भी नही सकी। फिर मैंने वह दवा बन्द कर दी।" एक व्यक्ति का नाम लेकर कहने लगीं "डाक्टर ने उसे सैवेजोल की 120 टेबलेट खिला दी थी। उसका इतना प्रभाव हुआ कि बेचारा एक दिन सतरा छीलता हुआ ही रह गया। हार्ट फेल हो गया।"

"अच्छा किया आपने खानी बन्द कर दी।"

"अब तीसरे डाक्टर को दिखाया है। उसने आँखो की परीक्षा की है और बताया है कि सैवेजोल के खाने मे आपकी आँखों के ऊपर पलको के नीचे छोटे-छोटे दाने हो गये हैं जिससे आँखें तो आपकी पहले से भी कमजोर हो गई हैं और यह भी हो सकता है इन दानो से आपकी पुतली छिल जाये।"

वे यह बात कह रही थी और मैं अन्दर ही अन्दर एक पीडा का अनुभव कर रहा था। मेरा अन्तर उन्हीं के वाक्यों को दोहरा रहा था जो उन्होने कभी किसी को पत्र में लिखे थे, "ईश्वर ने मुझे सूर की सी प्रतिभा तो नही दी पर वह आँखो से मुझे ऐसा ही करना चाहता है।" इस समय मैं उनकी आँखो की ओर देख रहा था। मैं यही सोच रहा हूँ कि क्या उन्होने अपनी आँखो की ज्योति इस विश्व को दे डाली है और क्या वे रही सही भी दे डालेंगी ?

उन्होंने अपनी बात को आगे बढाते हुये कहा, "कहीं मेरा भी हार्ट फेल हो जाये, यह सोचकर मैंने तो वह जहर खाना बन्द ही कर दिया।"

"नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता।" मेरे मन का विश्वास बोल उठा।

"मैं हार्ट फेल से नहीं मरना चाहती" हँस कर बोलीं।

'हार्ट फेल की मृत्यु और मृत्युओं से तो बहुत अच्छी होती होगी ?" मैंने बच्चे की

ई यह बात उनसे पूछी। सचमुच उस समय मैं ऐसा हो गया था जैसे शिशु अपनी ाँ से पूछ रहा हो, एक कौतूहल और उत्सुकता से और साथ-साथ उसे यह वास भी हो कि जीजी मृत्यु की सब प्रकार की अनुभूतियों से परिचित हैं, जीजी यु का रहस्य जानती हैं। कहने लगी :

"हार्ट फेल की मृत्यु तो बहुत अच्छी है, पर मैं अभी इससे नहीं मरना चाहती। बहुत से अधूरे काम हैं। मैं जानती हूँ वे पूरे नहीं होंगे, यों ही अस्त-व्यस्त रह रहेंगे।"

उनकी बात सुनकर मैं यही सोच रहा था कि महादेवी जी के इतने भक्त हैं और में से कुछ में यह क्षमता भी हो सकती है कि वे महादेवी जी के बाद उनके अधूरे म को पूरा कर सकें, पर यह बहुत बड़ी बात है। महादेवी जी किसी से इस बात आशा नहीं रखती। वे अपना अधूरा काम किसी के कन्धों पर छोड़ना नहीं चाहती। नहीं चाहतीं उनके बनाए हुए अधूरे चित्र में कोई बाद में अपनी तूलिका के स्ट्रोक्स ाकर उसे पूरा करे। उनकी यह बात ठीक ही है। क्या पता महादेवी जी अपने त्र में जिस बात को लेकर चली हैं, दूसरे की तूलिका से अनजाने में उसकी हत्या जाए। वे अपना चित्र पूरा करना चाहती हैं और इसलिए जीना चाहती हैं। आज ते आपकी वह बात याद आ रही है। "आज मेरा मन ऐसा हो गया है कि अधिक अधिक समय अपने लिए बचाना चाहता हूँ जिसमें अपने अपूर्ण काम को मैं इस सार को छोड़ने से पहले पूर्ण कर सकूँ।" आपकी इस बात ने मुझे उदास कर दिया ा। पर आज ऐसी ही बात महादेवी जी के मुख से सुनकर यह उदासी और भी हरी हो गई, गोया कि मेरा विश्वास मुझमें यही कह रहा है कि मृत्यु दोनों से बहुत र है, पर यदि किसी दिन वह पास भी आ गई तो शरीर को चाहे हमारे बीच से ठाकर ले जाए, पर उन्हें मार नहीं सकती। दोनों सदैव जीवित रहेंगे।

महादेवी जी बात कर रही थीं। मैंने देखा, सामने वाली टेबिल पर एक [illegible] रंग-बिरंगे पक्षी रखे हैं। ये खिलौने छोटे-छोटे बड़े ही सुन्दर हैं। वे [illegible] इधर-उधर लुढ़क-पुढ़क गए थे। मुख से वे बात कर रही थीं और उधर [illegible] पल अंगुलियाँ अपने काम में व्यस्त थीं, सबको अपने-अपने स्थान पर बिठा दिया। चमुच उन्हें अस्त-व्यस्त चीजें अच्छी नहीं लगती। थोड़ी देर बाद उन्होंने [illegible] र्दे वाली एक खूँटी उखड़ी हुई देखकर कहा, 'दाता, देख भाई, यह खूँटी उखड़ ायी है। पर्दा किसी के सिर पर गिर जाएगा।" उन्होंने उसी समय [illegible] की बिजली भी जला दी थी। वे कैसी ही बात क्यों न कर रही हों, पर उन्हें दूसरी ातों का भी ध्यान रहता है।

मैंने बात बदलते हुए कहा, "छः मार्च को तो आपका जन्म दिवस है।"

"हाँ, होली है न उस दिन?"

"जी, हां।"

"उस दिन सुबह से जन्म-दिवस ही रहेगा। खूब खुशी का दिन है। तभी तो हम इतने खुश रहते हैं।" ऐसा लगता था जैसे यह बात वह व्यग्य मे कह रही हो। इस पर मैंने कहा, "बहुत अच्छा दिन है। जिस प्रकार होली के दिन यह आशा की जाती है कि सब व्यक्ति अपने मन की विषमताओ को भुला दें और अपने शत्रुओं से भी अच्छा सम्बन्ध स्थापित कर लें, उसी प्रकार आपने तो जीवन की और मन की सभी विषमताओं को भुलाकर विश्व से ही अपनत्व स्थापित कर लिया है।"

यह बात यही समाप्त हो गई। बोली, "यह सोचती हूँ कुछ ठीक हो जाऊं, तो फिर बापू जी के पास चलूं।"

"तो आप कब जा रही हैं?"

"अभी कोई तारीख तो नही सोची, पर हाल मे ही जाऊंगी।"

फिर गम्भीर होकर कहने लगी "यही सौभाग्य की बात है कि गाधी जी इस युग मे पैदा हुए हैं। इस युग ने उन्हे कुछ तो समझा, कुछ तो सम्मान दिया। किसी दूसरे युग मे हुए होते तो उन्हे रहने ही न दिया जाता।"

"हाँ क्राइस्ट की तरह फांसी दे दी जाती।"

"सोक्रेटीज की सी ही दशा होती।" उन्होने कहा। यह बात यही समाप्त हो गई। अब महादेवी जी ने नई बात का सूत्रपात किया। निराला के विषय मे कहने लगी, "निराला जी को बहुत कुछ मिला था, पर उन्होने तो सब का हिसाब कर दिया, अब फिर वैसे के वैसे ही हो गये।"

"देशदूत मे 'मानव' जी का एक लेख निकला था। उसमे उन्होने जयन्ती का वास्तविक चित्रण किया था। सुना है किसी ने उसका उत्तर लिख कर भेजा है। वह इस बार के 'देशदूत' मे छपेगा।" यह बात मैं कह ही रहा था कि एक महाशय आ गये। महादेवी जी उनकी ओर मुड गईं। वे महोदय बोले, "वैसा खिलौना तो कहीं मिला नही!"

"तो फिर कैसे खिलौने मिल रहे हैं?" उन्होने कहा।

"ये ही हैं हाथी, ऊंट और इसी प्रकार के दूसरे मिट्टी के। ले आऊं?" इसी बीच मे मैं बोल पड़ा, "कैसे खिलौने मंगा रही हैं?" बोली—

"यही बच्चो को भेजने होते हैं, ऐसे ही होता रहता है। किसी का मुंडन, किसी का कर्ण-छेदन।" यह कह कर हँस दी। फिर उनकी ओर मुड कर बोली—

"मिट्टी का खिलौना तो ठीक नही रहेगा। बच्चा तोड फोड़ देगा। काठ का ले आओ।"

"तो काठ का ले आये। एक डिब्बे मे पूरा सेट मिलता है। उसमे दस या बारह खिलौने होते हैं।"

"कितने को मिल रहा है ?"

"बारह आने या एक रुपये मे मिलेगा।" इस पर उन्होने तालों का गुच्छा उन्हे दिया और कहा, "बक्स मे से रुपया ले लो। ताला बन्द कर देना। आज विद्यापीठ का रुपया रखा है। कही भक्तिन ने देख लिया तो मेरा रुपया समझ कर कही गाड गुड देगी।" यह कह कर हँसती रहीं। इस बीच मैं यही सोच रहा था कि महादेवी जी की एक शिशुओं की भी सृष्टि है और उसे भी वे अपने आसन पर बैठा बैठी ब्रह्मा की तरह देखती रहती हैं। केवल देखती ही नही, जो उन्हे करना होता है करती भी हैं। आज मैं यही सोचता हूँ महादेवी का कैसा व्यक्तित्व है पता नही। एक के ऊपर एक कितने पटल चढे हुये हैं। जब भी कोई पटल खुलता है तो एक नये रग के ही दर्शन होते हैं।

वे तालों का गुच्छा लेकर अन्दर चले गये। बातें हो ही रही थीं कि इलाचन्द्र जोशी जी तथा पाडेय जी आ पहुँचे। मैं महादेवी जी के पास अपने पुराने वाले स्थान पर ही बैठा था। वे आकर सामने वाली कालीन पर बैठ गये। आध घटे तक उनको बीमारी की बात चलती रही। जोशी जी ने किसी होमियोपैथ का नाम बताया। बडी प्रशसा की और यह तय हुआ कि कल मैं और पाडेय जी उन्हे बुला लायेंगे और उनका इलाज आरम्भ हो जायगा।

राहुल जी पर बात आ गई। मैंने कहा बडे आश्चर्य की बात है कि राहुल जी उपन्यास के उपन्यास डिक्टेट (dictate) करा देते हैं। इस पर महादेवी जी बोली, "मुझस मिले थे तो कह रहे थे मैं तीन चीजें साथ साथ डिक्टेट करा लेता हूँ—एक को उपन्यास, एक को कहानी और एक को निबन्ध।" इस पर मैं जोर स हँस पडा, क्योकि बडी ही अद्भुत बात थी। क्षण भर रुक कर महादेवी जी बोली, "कोई भी इस प्रकार सृजन का कार्य नही कर सकता। हम जब कभी एक भी कविता लिख पाते हैं तो उससे एक सतोष तो मिलता है पर थक से जाते हैं। पर राहुल जी तीन-तीन डिक्टेट कराने पर भी नही थकते।"

'कदाचित् ऐसा होता हो कि जो भी वह लिखते होगे वह उनके मस्तिष्क मे भरा रहता होगा," मैंने कहा। तुरन्त जोशी जी बोल पडे, "ऐसी दशा मे अन्तर की प्रेरणा कुछ नही होती।"

फिर हम लोगों ने चाय पी। छायावाद की बात चल पडी। पाडेय जी बोल पडे, "जब यह धारा आयी तब छायावाद का कोई भी आलोचक नही था। रामचन्द्र शुक्ल ने इसके विरुद्ध लिखा, पर इसने ऐसी जड जमा ली थी कि इसका निरन्तर विकास ही होता गया।"

"रामचद्र शुक्ल अपनी दिशा मे एक महान् समालोचक थे जिन्होंने युग की धारा के विरुद्ध लिखा। छायावाद का पक्ष लेने वाला तो कोई समालोचक था ही नही।

अन्त मे प्रसाद जी को ही इस पर कलम उठानी पडी और उन्होंने 'रहस्यवाद', 'छायावाद' आदि पर निबन्ध लिखे", महादेवी जी बोली।

"सबसे पहले शातिप्रिय द्विवेदी ने छायावाद पर लिखा", पाडे जी ने कहा।

"उसने भी तभी लिखा या जब पहले 'नीरव' लिख चुका था। वह हमी लोगो के साथ का था। अब लिखते-लिखते यह इस धारा को समझ गया, तब उसने कलम उठायी", महादेवी जी ने कहा।

"हमे तो वडा दु ख होता है। पन्त जी ने कैसा लिखा था। पर अब तो वे समाप्त-से प्रतीत होते हैं। अब तो यह धारा ही समाप्त-सी लगती है", जोशी जी बोले।

' धारा तो अभी क्या समाप्त हो गई, पर छायावाद का पन्त समाप्त हो गया।"

"पन्त की सबस बडी पराजय तो यह है कि उन्हे अपना प्रान्त छोडकर पाडिचेरी मे जाकर शरण लेनी पडी है", पाडे जी ने कहा। इस पर महादेवी जी गम्भीर होकर बोली,

"यह पत की नही हम सब की पराजय है। यदि पत को उदयशकर काम दे सकता है, तो क्या हमारी गवर्नमेन्ट कुछ नही कर सकती थी।"

"पन्त इतना वडा कलाकार है। कोई एक ऐसी सस्था स्थापित की जा सकती थी जहाँ कला की उन्नति के लिए कुछ न कुछ हुआ करता", जोशी जी बोले।

"यह एक महान् भयकर युग है। इसमे लेखक का जीवित रहना भी कठिन है। जैनेन्द्र कुमार को ही देखिये, वेचारे अब कुछ नही लिख रहे। पहले तो प्रवचन दे रहे थे, अब पता नही। जब एक लेखक को खाने को नही मिलता, तो वह क्या लिख सकता है?' महादेवी जी बोली।

इसी प्रकार और भी इधर-उधर की बातें होती रही। अब नौ वजने का समय हो गया था। मैंने महादेवी जी म घर के लिए आज्ञा ली। उन्होंने बडे ही स्नेह से कहा, "अच्छा अब तुम जाओ।"

जब मैं महादेवी जी के कमरे में गया था और थोडी देर उनसे बात हुई थी, तब ऐसा लग रहा था जैसे मैं किसी विशाल गिरिमाला के चरणो मे उसमे से झरते किसी मन्द मुखर सोते से एकात मे अपने मन की गाँठें खोल रहा हूँ, पर अब कमरे से बाहर निकल आने पर ऐसा लगा जैसे मैं उस पेड के नीचे से उठ कर चला आया हूँ, जिस पर साध्य-विहगों ने च्यॉव-च्यॉव मचा रखी हो और उनके विभिन्न स्वरो से मिश्रित सगीत में न तो ताल का सामजस्य हो और न लय का।

महादेवी जी यदि पचास बार भी मुझे लौटा दें, तब भी कुछ क्षणो के लिए इस मन मे चाहे कुछ क्षोभ उत्पन्न हो जाये, पर आप सच मानिये इन हाथो ने जिस महादेवी के चरण छुए हैं, इन प्राणो ने जिस महादेवी की उपासना की है, उस महादेवी की मूर्त्ति कभी विकृत न होगी। उनसे मिलने पर जब मैं लौटता हूँ तो ऐसा लगता

है जैसे आज एक साहित्यिक तपस्विनी के मैंने दर्शन किये हैं और अपनी वाणी से जो उन्होंने मुझ पर पीयूष-वर्षा की है, उससे मेरा आध्यात्मिक स्नान हो गया है।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

18

30 ए, बेली रोड
प्रयाग
24/2/47

आदरणीय 'मानव' जी,

नौकरी तो मुझे भी अच्छी नहीं लगती, पर जीने के लिये पैसा तो चाहिये ही। स्वतन्त्र पत्रकार रह कर इतना पैसा मिल जाये कि कल की चिन्ता न रहे तो ठीक है। हम पूँजीपति तो हो नहीं सकते, और लेखक के भाग्य मे कदाचित् वैभव तो क्या, उसके स्वप्न भी नहीं। एक दिन आपने मेरे लिये कहा था, "तुम और कुछ नहीं चाहते, घोर सुख चाहते हो।" यह बात आपकी ठीक ही थी, पर सघर्ष और विषमताओं से भरे ससार मे सुख कहाँ ?

मैं घबराता तो नहीं, क्योंकि एक अकेले प्राणी के पेट भरने लायक पैसा मिल ही सकता है, पर कभी-कभी दूसरो के वैभवशाली सुखी जीवन को देखकर मन मे विकार पैदा होने लगता है कि क्यों हम भी आँख मीच कर पैसा पैदा न करें। पर साहित्य तो एक साधना है, तपस्या है, आराधना है। अपना तिलतिल जलाकर भी यदि हम सृजन कर सकें तो बहुत कुछ हो गया। ऐसे मनोविकारो के उद्गम पर सचमुच पत्थर रखना होगा, यदि साहित्य-साधना करनी है।

माडो के लिये पत्र लिख दिया है। आशा है, वे जल्दी ही भेज देंगे।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

19

30 ए, बेली रोड
प्रयाग
28/2/47

आदरणीय 'मानव' जी,

रात के एक बजे हीं पत्र लिखने बैठ गये। कैसी मानसिक परिस्थिति मे लौटे थे ! उस समय तो सो ही जाते।

आकस्मिक मृत्यु वैसे तो अच्छी है, क्योकि इसमे प्राणो को अधिक पीडा नहीं होती होगी, पर इसमे व्यक्ति को किसी से कुछ कहने-सुनने का समय नही मिलता

विदा-बेला बडी ही कोमल करण होती है। कभी-कभी हमें अपने आँसू रोकने ही पडते है, क्योकि आँसू का मूल्य भी तभी तक है जब तक वे दिखाए न जायें या फिर वहाँ आँसुओ का निकलना ठीक है, जहाँ उनके उचित मूल्यांकन का विश्वास हो। इस विश्व ने तो आँसू जैसी अमूल्य निधि को व्यग्य के काँटो से ही तौला है। फिर भी आँसू यदि अन्तर से उमड ही आयें तो आँखो मे उनका छलछलाना मनुष्य की कमजोरी का ही द्योतक है। कल्पना कीजिए उस दृश्य को जहाँ एक की प्रेयसी दूसरे की नववधू होकर विदा हो रही हो। सभी जानते है उस समय उसके अन्तर की क्या दशा होती होगी, पर यदि वह उस दृश्य मे उपस्थित हो तो मानसिक विकृति का चेहरे पर उतर आना उसकी कमजोरी ही है। कोई कह रहा था कि हिन्दी के एक प्रसिद्ध कवि की प्रेयसी का जब किसी दूसरे से विवाह हो गया तो वे मूर्च्छित हो गए थे। इस प्रकार के आँसू और इस प्रकार की मूर्च्छा कितनी ही sincere क्यो न हो, पर साथ ही वह अपने प्रेम का प्रकाशन और विज्ञापन भी है जो प्रेम मे कभी भी वांछित नही।

दो तीन दिन से एक भी पैसा पास नही रहा था, लिफाफा खरीदने के लिए भी नही। आज सुबह आपकी पुस्तकें लेकर एक दूकान पर गया। दूकानदार ने खरीद ली। इतना पैसा मिल गया कि सप्ताह भर का ऊपर का खर्च चलता रहेगा। फिर तब तक रुपया भी आ जायेगा। कई बार ऐसे दिन जीवन मे आये है, पर सतोष इतना ही है कि कोई भी काम नही रुका।

यह बात अच्छी नही लगती कि आप लिखते-लिखते अपनी लेखनी रोक जाते है—नास्तिकता की बात पर आपने बुरा क्यो माना ? आप तो माने हुये नास्तिक हैं और यह उपाधि मैं नही, महादेवी जी आपको दे चुकी है।

श्रद्धा, प्रेम और स्नेह सचमुच इतने सूक्ष्म और व्यापक हैं कि उन्हे शब्दो की परिधि मे नही बाँधा जा सकता।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

20

30 ए, वेली रोड,
प्रयाग
6/3/47

आदरणीय 'मानव' जी,

रात के साढे दस बजे होंगे। इस समय तक प्रति दिन तो निस्तब्धता छा जाती थी, पर आज तो सडक पर ज्यो-ज्यो रात बढती जा रही है, बच्चो का कोलाहल

त्यों त्यों और अधिक बढता जा रहा है। यह होली की रात है।

सुबह आँखे खोलते ही मन मे एक बात जागी थी, कि आज महादेवी जी का जन्म दिवस है। आज मेरे लिये यह निश्चय करना कठिन हो रहा है कि इस त्योहार ने मेरे लिये महादेवी जी के जन्म-दिवस की महत्ता बढा दी है या महादेवी जी ने जन्म लेकर इस त्योहार की महत्ता को बढा दिया है।

आज सध्या को मैं उनके दर्शन के लिये गया था। मैं तो आज का दिन एक साहित्यिक महोत्सव का दिन समझता हूँ। इस महोत्सव पर उस महोत्सव के देवता के दर्शन एक परम सौभाग्य की बात ही है। सचमुच परम सौभाग्य की।

आज उनके चेहरे पर और दिन से अधिक स्वस्थता थी। पहले से ही आज वे अपने आसन पर अधिष्ठित थी। धवल खादी की धोती पहने हुए वे ऐसी लग रही थी जैसे हिमालय की सबसे ऊँची हिमाच्छादित श्रेणी का ऊपरी भाग काट कर किसी ने पृथ्वी पर लाकर रख दिया हो।

एक महोदय उनसे बातचीत कर रहे थे। वे महादेवीजी को बात-बात मे 'जीजी' सम्बोधन स पुकारते थे। महादेवी जी ने उनसे परिचय कराया। ये डा० व्रजमोहन गुप्त हैं।

मैंने उनसे उनके स्वास्थ्य की बात पूछी, "होमियोपैथी के इलाज से अब कैसा है?"

"अब कुछ ठीक है।" फिर हँस कर कहने लगी, "आँखो मे अब दो नये सींग से निकल आये है। क्या कहूँ, पर्वत कहना चाहिये, क्योकि हम तो आँखो मे ही समस्त विश्व को बसाते आये है। पता नही इनमे क्या-क्या हैं, समुद्र, बादल, बिजली, पहाड।" इस पर मैंने हँसकर यह कह दिया "आँखो मे ये सब चीजें हैं तो, पर इनकी साकारता तो बडी दुखदायी है।" मैंने उनको आखो के लिए त्रिफले के पानी वाली बात कही, और दूसरी दवाई उन्हे Lotus Honey बताई। इस पर कहने लगी, "Lotus Honey तो मैंने बहुत लगाया, है, पर उससे कुछ आराम नही हुआ।" यह बात यही समाप्त हो गई। व्रजमोहन जी ने साहित्यिक चर्चा छेड दी। उन्होने समालोचना का अपना दृष्टिकोण रखा। उनका दृष्टिकोण कुछ कुछ 'कला जीवन के लिये', ऐसा था। वे कहने लगे 'साहित्यिक को कोई ऐसा सदेश देना चाहिये जो Humanity को elevating हो। वह हमारे लिये कम से कम एक पोल-स्टार की ओर सकेत अवश्य करता हो। मेरा उनसे कई बातो पर मतभेद था। एक घण्ट तक उनसे चर्चा चलती रही। इस बीच महादेवी जी ने एक सन्तोषी श्रोता का ही पार्ट किया। एक तश्तरी मे गुप्त जी के लिये फल, दूसरी म थोडा नमकीन मेवा तथा चौवडा इत्यादि भक्तिन दे गई। फिर उन्होने और मँगाया और बोली "भक्तिन गुझिया लाओ।" भक्तिन कहने लगी, "होली जलने पर गुझिया खाई जाती हैं।"

"नही ऐसी बात नहीं, आज होली जलने मे पहले ही सही।"

थोडी देर में गुजिया और चाय इत्यादि आ गई। हम खाते-पीते रहे और व्रजमोहन जी से चर्चा चलती रही।

इसी बीच व्रजमाहन जी ने मुझसे पूछा, "आप मुरादाबाद बहुत साल से रहते हैं या अभी गुजरात से आकर बसे हैं।" मैंने कहा, "गुजरात से तो दो तीन सौ साल पहले आये थे।" इस पर महादेवी जी बहुत हँसी और बोली, "देखो कैसे कह रहा है जैसे दो तीन सौ साल पहले यह एक छोटा सा बच्चा रहा हो और दो तीन सौ साल बीत गये हो।" इस पर मैंने हँस कर यह कह दिया, "पता नही तब मैं तो कहाँ हूँगा और हूँगा भी या नही, क्योकि मैं तो जन्म जन्मातर मे विश्वास करता नही।" इस पर गम्भीर होकर कहने लगी, "भाई मैं तो विश्वास करती हूँ। जो चेतना है वह बिल्कुल ही विलीन तो नही हो जाती होगी? पर मेरा विश्वास ऐसा भी नही जैसा भक्तिन का है।" *यह बात यही समाप्त हो गई। सहसा महादेवी जी उठ कर अन्दर गई।* एक मोटी सी अंग्रेज़ी की पुस्तक लायी। आकर उसे सामने वाली टेबिल पर रख भी नही पायी थी कि हँस कर बोली, "अब मै मानव जी को बहुत डांटूंगी। उन्होंने जन्म-दिवस पर उपहार मे यह पुस्तक भेजी है। अपने से बडो को उपहार नही भेजा जाता।' मैं भी हँस दिया। पुस्तक उन्होने हाथ से टेबल पर रख दी। मैं केवल उस पर मोटे अक्षरो मे लिखा पुस्तक का नाम HIMVAT ही पढ पाया था कि व्रजमोहन जी ने उस उठा लिया। पन्ने पलटे। उस पर आप का लिखा हुआ भी पढा। फिर मैंने वह पुस्तक उनके हाथ से ले ली। इसी बीच महादेवी जी बोली, "पुस्तक बहुत अच्छी है।"

"मानव जी की choice अवसर के अनुकूल ही है।"

"नही, रोरिक के तो हम बहुत पहले से भक्त रहे हैं। इधर जब मैंने अपना 'सान्ध्य-गीत' भेजा था, तो उन्होने कार्ड size पर अपनी कुछ पेंटिंग भेजी थी। मेरे चित्रों पर एक बहुत बडी सम्मति भी थी।"

*"आज सुबह ही यह पुस्तक मिली। आज सुबह आठ बजे से ही हमारा जन्म-*दिवस है। इस समय तक तो हम कितने ही घन्टों के हो चुके थे। हमारे और बहुत से परिचित तो 24 मार्च को ही मेरा जन्म दिवस मानते हैं।" इस पर गुप्त जी बोले, "होली का जब अपना इतना अच्छा दिन है तो हमे तो यही रखना चाहिये, अंग्रेजी तारीख नही।"

"यहाँ के लोगो मे कुछ ऐसी ही बात है। टैगोर की मृत्यु रक्षा-बन्धन के दिन हुई थी, पर वह दिन नही माना जाता। अंग्रेजी तारीख लेते हैं", महादेवी जी बोली।

"यह कुछ ठीक नही लगता। 'बा' की मृत्यु शिव-चतुर्दशी को हुई थी, पर हमने वह दिन भुला दिया है।" मैंने कहा। फिर बात को आगे बढाते हुए बोला, "हम तो

अपनी हिन्दुस्तानी तिथि ही मानते हैं। आज आपका जन्म-दिवस है। परसों को उसी हिसाब से मेरा जन्म-दिवस है", मैंने हँसकर कहा। हँस कर बोली, "हाँ, दूज का।"

"तो हमारी वैसी प्रसन्नता का थोड़ा-सा भाग तुम्हें भी मिलेगा", वे बोलीं।

आज अपने जन्म-दिवस पर उन्होंने मेरे लिए यह बात कही। सचमुच मैं तो इसे उनका आशीर्वाद ही समझता हूँ। एक महान् कलाकार के मुँह से निकली हुई बात व्यर्थ नहीं जायेगी, यही विश्वास मन में आज जम-सा गया है।

इसी बीच एक महाशय और आ गए थे। वे भी महादेवी जी को 'दीदी' कहते हैं। चारों व्यक्तियों में बहुत देर तक बिल्कुल घरेलू-सी बातें होती रहीं। आधे घण्टे बाद वे महोदय उठकर चल दिये। आध घण्टे तक फिर गुप्त जी से बातें हुईं। फिर वे चल दिए।

डा० व्रजमोहन गुप्त अच्छे व्यक्ति लगे। उनका कैसा भी दृष्टिकोण हो, पर उसमें थोड़ी सी उदारता और व्यापकता भी है।

बरामदे तक उनको पहुँचा कर मैं महादेवी जी के साथ वापस लौट आया। चुप-चाप यात अपने-अपने स्थान पर आकर हम बैठ गए। वातावरण बिल्कुल बदल गया और बातचीत का ढंग भी।

मैंने कहा, 'आज आपके चालीस वर्ष पूरे हुये। आज आपकी रजत जयन्ती मनाई जाती, पर हमारे साहित्यिकों में अभी इतनी जागरूकता नहीं है।"

"शायद 40 साल तो हो गए होंगे। सन् 1907 का जन्म है।"

"जो बात इस मन ने स्वीकार नहीं की उसके प्रति सदा से यह विद्रोह ही करता आया है।" यह कह कर क्षण भर के लिये चुप हो गईं। बोलीं—

"जब मैं नौ वर्ष की थी तभी मेरा विवाह कर दिया था। एक नौ वर्ष का बालक क्या जानता है। मुझे भी कुछ याद नहीं विवाह कब हुआ था! क्या हुआ! बस इतना याद है कि जब बाजे-गाजे बजे, हाथी-घोड़े घर के सामने आ गए तो मैं उन्हें देखने के लिए दौड़ी, जैसे बच्चे तमाशा देखने चले जाते हैं। सब बच्चों में जाकर खड़ी हो गई। फिर कोई मुझे पकड़ कर ले गया। नींद तो हमें बहुत आती ही थी। फिर कहीं सो गई हूँगी। फिर विवाह कब हुआ यह मुझे याद नहीं।"

"आपको सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहनाए गये होंगे, यह तो आपको याद होगा?"

"हाँ पहनाये गये होंगे। पर विवाह जैसी बात की कोई चेतना ही नहीं थी, क्योंकि अपने घर में मैंने इससे पहले किसी का विवाह नहीं देखा था। नींद में सोते हुये उठा कर गोदी-वोदी में बिठाकर किसी ने विवाह करा दिया होगा। पर अगले दिन जब मैं बैठी तो कपड़े में गाँठ-सी बँधी हुई थी। बड़ी बुरी लगी। इसी बीच दिन में कुछ देवताओं की पूजा होने लगी। उधर पूजा हो रही थी और इधर

मैं गाँठ खोलने मे लगी हुई थी। जब गाँठ खुल गई तो मैं वहाँ से एकदम भाग आई।"

"तो आपको फिर पकड़ कर ले गए होगे, क्योंकि पूजा तो गठबन्धन से होनी चाहिये ?"

"शायद किसी ने खोजा हो, पर हम घर मे ऐसी जगह जा छिपे थे कि किसी को भी मिले नही। पूजा भी हो गई होगी।"

"आपके पिताजी तो नारी-स्वातन्त्र्य और विवाह इत्यादि के विषय मे नवीन विचार रखते थे। उन्होने क्या किया कि नौ वर्ष की उम्र मे ही विवाह कर दिया ?"

"तब हमारे बाबा जीवित थे। घर मे कोई लडकी नही थी। कितने पूजा-पाठ और कितनी मानताओ के बाद तो मेरा जन्म हुआ था और बाबा को बडी प्रसन्नता हुई थी। वैसे तो कायस्थों मे लडकी का जन्म कभी नही चाहते, क्योकि लडकी के विवाह मे उन्हे बडा भारी दहेज देना पडता है, पर फिर भी बाबा यही चाहते थे कि घर में एक लडकी अवश्य होनी चाहिए। अब धर्म की बात थी। कन्यादान का पुण्य भी उन्हें लेना ही था, इसलिए नौ वर्ष की उम्र मे ही विवाह कर दिया गया।"

"फिर आपकी शिक्षा कैसे हुई ?"

"डाक्टर भी उन दिनो पढते थे। ससुराल वालो ने भी यही कहा कि लडकी बहुत छोटी है। लडका पढता है। छ-सात साल बाद गौना हो जायेगा। इसलिये विवाह के बाद मैं अपने घर पर ही रही। डाक्टर के घर नही गई थी।"

"तो डाक्टर उन दिनो कहाँ पढते थे ?"

"पहले आगरे पढते थे और फिर लखनऊ। इधर मैं भी पढती रही। फिर यहाँ इलाहाबाद आ गये थे। *छठी क्लास से ही मैं यहाँ क्रास्थवेट गर्ल्स कालिज मे पढ़ी हूँ।* पढने का मन मे कुछ पहले से ही चाव रहा। मिडिल मे हजारो लडकियो मे सर्वप्रथम रही, स्कालरशिप मिला। हाई स्कूल मे पोजीशन आई, स्कॉलरशिप मिला और इस तरह इण्टरमीडियेट, बी० ए०, एम० ए० सभी हो गये।"

"तब तो आप नौ वर्ष की थी। अबोध थी। पर बाद मे तो आपको विवाह जैसी बात से परिचय हो गया होगा। तब कैसा लगा ?"

"हाई स्कूल कर लिया, इण्टरमीडियेट भी हो गया, तब तक तो कोई बात ऐसी थी ही नही कि मैं यह अनुभव करती कि मेरा विवाह हो गया है। इण्टरमीडियेट के बाद, डाक्टर एम० बी० बी० एस० हो गये थे। अब भेजने की बात उठी। अब तक मन में उदात्त भावना आ गई थी। भिक्षुणी हो जाने की बात मन मे उठी। मैंने जाने से मना कर दिया। किसी भी काम मे मन का झुकना तो जरूरी था। पर मन तो झुका ही नही था। विवाह हो गया, पर मैं नही जानती। मन तो पत्नीत्व रूप मे

नही झुका। इण्टरमीडियेट के बाद तो बात शान्त हो गई। बी ए. भी कर लिया। अब किसी तरह छुटकारा न था। घर पर सबने कहा, पर मैंने तो भिक्षुणी होने की बात सोच ली थी। डाक्टर यहाँ आये। उनसे मैंने यही कह दिया कि आपसे मेरा विवाह हुआ होगा, पर मैं नही जानती और न मै मानती ही हूँ कि मेरा विवाह हुआ है, क्योंकि मन नही मानता। हमारी माता जी तो बहुत रोयी और कहा तुम भिक्षुणी न होओ। डाक्टर भी यही बोले अच्छा भाई भिक्षुणी न होओ, भिक्षुणी होकर माँगती फिरोगी, यह अच्छा न लगेगा। जैसे तुम्हारा मन करे वैसे रहो।

"डाक्टर साहब कहाँ रहते हैं ?"

"गोरखपुर मे रहते हैं। खूब डाक्टरी चलती है।" फिर जोर से हँस कर बोली, "बहुत अच्छे आदमी हैं। दो कार खरीद रक्खी हैं। खूब शान से रहते हैं। पुराने कायस्थ जमीदारो के से ठाट-बाट हैं।"

"तो उन्होने दूसरा विवाह कर लिया होगा ?"

"नही, मैंने तो कह दिया था, पर उन्होने दूसरा विवाह नही किया। उनका भी एक बडा परिवार है। एक उनकी विधवा बहिन है। दो भानजे हैं। वही सब रहते हैं। एक बार उनकी बहिन ने लिखा था, "तुम तो सन्यासी-वैरागी हो गईं। अब भाई का तो कही घर बसा दो। अलीगढ मे एक लडकी है। उससे विवाह की सिफारिश कर दो।" मैं अलीगढ गई। बातचीत की। उनकी और शकायें भी दूर कर दी कि भाई मुझसे कोई डर की बात नही। कहा, मैं कागज पर लिख दूँ कि मेरा कोई अधिकार नही। डाक्टर से आकर मैंने कहा, "भाई तुम्हारे विवाह की बात पक्की है, विवाह कर लो। पर यह सुनकर वे बहुत नाराज हुये।"

"तो अब डाक्टर साहब से आपके कैसे सम्बन्ध हैं ?"

'बहुत अच्छे सम्बन्ध हैं। इन मन मे सम्बन्धों को कटुता कही नही। कभी-कभी पत्र भी आता-जाता रहता है। जब इलाहाबाद आते हैं तो मिलकर अवश्य जाते हैं। उन्होने तो यह भी कहा था कि मैं अपनी एक कार यहाँ छोडे देता हूँ, तुम चाहे जहाँ रहो और चाहे जैसे रहो, पर किसी भी तरह की असुविधा न उठाओ, पर मैंने मना कर दिया। उनके यहाँ के गहने, कपडे भी मैंने नही रखे। सभी लौटा दिये थे।"

"उनसे आपके अच्छे सम्बन्ध तो हैं, पर क्या आप का उनसे ऐसा ही सम्बन्ध है जैसा और दूसरे आदमियों से ?"

"हाँ, इससे अधिक और कुछ नही। वैसे सम्बन्धो मे कोई कटुता नही आयी, न उन्होने ही कोई ऐसी बात की जिससे कष्ट होता। हमारे बाबा जी को तो अन्त तक इस बात का पछतावा रहा कि हमने लडकी का व्यर्थ ही विवाह किया। मरते समय वे कुछ रूपया भी मेरे लिए छोड गये थे कि कही यह विदेश रिसर्च करने जाय या यही रहे तो कष्ट से न रहे।" यह बात कहते-कहते वह कुछ अधिक उदास हो गई थी। मेरे मन मे भी कुछ उदासी छा गई। मैंने कहा—

"उन्होने ठीक ही किया। वैसे तो और कहीं से कष्ट की सम्भावना नहीं थी, ससुराल से ही कुछ कष्ट मिल सकता था। वे मुकदमा वगैरह कुछ चलाते, पर डाक्टर साहब अच्छे ही आदमी हैं। यह उनकी थोड़ी उदारता ही है कि उन्होंने आपको अपने साथ रहने पर विवश नहीं किया।"

"मन के विरुद्ध चलने के लिए कैसे विवश किया जा सकता था? यह वह जान गये थे कि यह अपने प्राण दे देगी, पर आत्म-समर्पण नहीं करेगी।"

"डाक्टर साहब का नाम क्या है?"

'स्वरूप नारायण।"

मैं एक क्षण के लिए चुप हो गया। मन ने एक क्षण मे ही पता नहीं क्या-क्या सोच डाला। आज महादेवी जी ने ऐसी बात छेड़ दी थी जिसके विषय मे मन में सैंकड़ो प्रश्न थे। पूछने के लिए मैं तैयार तो हो गया, पर डर यही लग रहा था कि कहीं पूछने के ढङ्ग मे ऐसी बात न आ जाय जिससे वे अप्रसन्न हो जायें या उत्तर देना बन्द कर दें। साहस बटोर कर मैंने पूछा·

"प्रश्न यह उठता है कि किसके सामने आपने आत्म-समर्पण किया?"

"विरक्ति की भावना के साथ-साथ ही उस विराट के प्रति आत्म समर्पण हो चुका था जो सदैव ही अखंड है"

"यह बात तो ठीक है, पर प्रश्न यह उठता है कि आपके मन मे इस ससार के किसी व्यक्ति के साथ जीवन बिताने की बात नही उठी क्या?"

"आत्म-समर्पण पूर्ण ही था। उसमें किसी व्यक्ति के लिए जगह रह ही नही गयी थी, तो फिर कैसे होता? साथी चुनने की बात दो प्रकार से मन में उठती है—एक तो ऐसा साथी जो शारीरिक वासना में साथ दे सके और दूसरा ऐसा जो मानसिक स्तर पर साथ-साथ विचरण कर सके। शारीरिक वासना जैसी चीज का तो मैंने अनुभव ही नहीं किया और गृहस्थ बनने की इच्छा नहीं थी। रहा मानसिक स्तर का प्रश्न, उस स्तर पर मेरे आत्म-निवेदन मे साथ देने वाला वह विराट व्यक्तित्व है ही। उसके जैसा ससार मे छोड तीन हाथ का व्यक्ति और कौन मिल सकता था? ससार मे किसी को मैं वात्सल्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे सकी। डाक्टर कभी बीमार हो जाते हैं तो उनकी सेवा सुश्रूषा कर सकती हूं, पर उसमे सवेदना और वात्सल्य की ही भावना होगी।"

"किसी को श्रद्धा और सम्मान भी तो दिया होगा?"

"हाँ, श्रद्धा और सम्मान भी दिया है।"

"अच्छा आपने अपनी कविताओं में अभिसार, शृंगार, मिलन इत्यादि के जो वर्णन किये है उनकी अनुभूति कहाँ से हुई?"

"वह अनुभूति तो उसी विराट् के प्रति है, पर रूपक तो लौकिक ही होते हैं।"

"यह बात तो मैं मानता हूँ, पर पाठक आपको पढ़कर यही कह उठता है कि लेखिका की ये ऐसी तीव्र अनुभूतियाँ हैं जैसी उसके जीवन की ही अनुभूतियाँ हो।"

"रूपक तो ऐसे रहते हैं। मीरा ने भी अपनी बात ऐसे ही लौकिक रूपकों में कही है।"

— "यह बात ठीक है, पर यहाँ मीरा में और आप मे अन्तर आ जाता है। मीरा ने अपने पति के सामने पत्नी रूप मे आत्म समर्पण नही किया, पर अपने पति के साथ शारीरिक सम्बन्धो का अनुभव किया था, पर आपने यह भी नही किया।"

"यह तो पाठक की अपनी बात है। वह अपने मन मे इस मान्यता को लेकर चलता है कि इस युग मे कोई भी ऐसी स्त्री नही हो सकती जिसम वासना और विलास की भावना न हो। बस वह यही निर्णय कर लेता है कि किसी व्यक्ति के सम्बन्ध स यह निराशा हुई है। पर बात ऐसी नही। किसी व्यक्ति के प्रति यह मन झुका ही नही, नही तो कोई बात थोड़े ही थी। मैं सम्बन्धो के प्रति अनुदार नही हूँ। यदि किसी से ऐसे सम्बन्ध की भावना जगी होती तो मैं उसे अपना साथी बना ही लेती। समाज से या किसी से डर की बात नही थी। मेरे सबन्ध जिससे जैसे हो गये फिर उनमे परिवर्तन नहीं होता। डाक्टर से तो मेरे सब प्रकार के सम्बन्धो की अनुमति वेद-मन्त्रो ने, माता-पिता ने, समाज ने और कानून ने दे दी, पर वे भी इस शरीर की छाया तक का स्पर्श नही कर पाते। दूसरे की तो बात ही क्या।"

"पर डाक्टर साहब ने दूसरा विवाह क्यो नहीं किया, यह बात कुछ समझ मे नहीं आती ?"

"कदाचित् उन्हें हम जैसा कोई न मिला हो ?"

इस पर मैंने हंस कर कहा, "ठीक ही है। आप ने तो इसलिए विवाह नही किया कि आपको ऐसा महान् व्यक्तित्व मिल गया था जिसके सामने इस ससार के प्राणियो के व्यक्तित्व तो छोटे-छोटे परमाणु मात्र हैं और इधर डाक्टर ने इसलिए विवाह नही किया कि उन्हें ऐसा व्यक्तित्व मिल गया था जिसके टक्कर का व्यक्तित्व उन्हे दूसरा नहीं मिल सका।" बात को आगे बढाते हुए मैं बोला, "आपका और उनका प्रेम सम्बन्ध नही है ठीक है, पर आपकी कीर्ति जब उनके कानों मे पहुँचती होगी तब उन्हे यह बात याद कर कि यह स्त्री मेरी धर्म-पत्नी थी, मन मे कैसा लगता होगा। पीड़ा होती होगी न ?"

"वे ये सब बात नही जानते। पुराने कायस्थ जमींदारो जैसा उनका जीवन है। न तो वे हिन्दी ही जानते हैं और न मेरा दर्शन ही समझते हैं। हिंसा मे विश्वास रखते हैं, शिकार से उन्हे प्रेम है और मेरा सब कुछ अहिंसा पर आश्रित है। उन्हें इस

प्रकार की मेरी कीर्ति से कुछ सम्बन्ध नही । पर इतना अवश्य है कि यदि उनमे मेरी कोई निन्दा करे तो अवश्य बिगड जाते हैं ।"

"कही ऐसा तो नही है कि आपको गृहस्थ जीवन से इसलिए विराग हो गया कि आपका विवाह एक ऐसे व्यक्ति से हो गया था जो हर प्रकार से आपके स्वभाव के प्रतिकूल था ?"

"अब यह तो नही कहा जा सकता कि यदि विवाह न होता तो क्या होता । पता नही, जीवन किस ओर मुड जाता । पर मैं भिक्षुणी हो जाती तो अच्छा था । तब कदाचित् ससार ऐसे व्यक्तियो को ढूंढने का प्रयास न करता जिन्हे उन्हें मेरे प्रेम करने का भ्रम है ।"

"वास्तव मे यह स्थिति आपके लिए बहुत ही कठिन है । वैसे तो अब भी आप भिक्षु ही हैं । मैं यह नही सोचता कि यह आपका ड्राइग रूम है, ये आपके नौकर हैं, *यह आपका बंगला है । जिस चीज को मैं देखता हूँ वह अब भी भिक्षुणी की ही है ।"*

"हमे बाहर से बहुत-सी बातें मन के प्रतिकूल करनी पडती हैं । कही जाना होता है, यह करो-वह करो । तांगे पर चलो, रिक्शा करो । पर यदि भिक्षुणी होते, जहाँ मन चाहा वहाँ कमडल उठा कर चल दिये । अब मुझमे स्त्री का सकोच नही है । जब मैं बात करती रहती हूँ तो मेरे मन में स्त्री या पुरुष होने की बात नही उठती । पर यदि मैं भिक्षुणी हो गई होती तो ससार अँगुली न उठाता ।"

"हाँ, भगुए कपडो का इतना तो लाभ होता है" मैने हंसकर कहा । "अब तो हमे बहुत-सी बातें करनी पडती हैं । एम ए. के ठीक बाद ही मैं विद्यापीठ आ गई थी । मेरी कुछ उम्र नही थी, पर फिर भी मुझे उम्र मे बहुत आगे बढ जाना पडा ।"

"ससार की बातो पर क्या ध्यान देना । यह तो इतना गदा है कि गदगी की ही कल्पना कर सकता है । पता नही आपके विषय मे कितनी बातें हवा मे उडी हुई हैं ।"

"यह तो मै जानती हूँ और मै ऐसी बातो से डरती भी नही । ऐसी बातो से मेरे व्यक्तित्व को कोई हानि नही पहुँचा सकता, पर कभी-कभी यही सोचती हूँ कि कही इन बातो से मेरे कामो मे बाधा न पहुँचे, क्योकि सुनने वाले यही सोच सकते है *कि यदि ये ऐसी हैं तो इनकी सस्थाओ मे क्या होता होगा ?*

और ये बातें तो उडती ही रहती है, पर चल नही पाती, क्योकि उनका कोई आधार नही होता । दुनियाँ राई का पर्वत बना सकती है, पर जब राई ही न होगी तो पर्वत कहाँ से बन सकेगा । तिलो मे से ही तेल निकल सकता है, बालू मे से नही ।"

"कवि सम्मेलनो मे आप कब से भाग नही लेतीं ?"

"कवि सम्मेलनो मे तो मैं बहुत समय से भाग नही लेती । जब विद्यार्थिनी थी, तभी कहीं कविता पढ दिया करती थी ।"

"आप कविता गा कर पढती थी या वैसे ही ?"

"वैसे ही पढती थी । गाना सीखा था । पर मन चित्रकला की ओर बढ गया । सगीत ऐसी कला है कि उसमे स्थायित्व नही है । आपने स्वर निकाला, सुनने वालो ने सुना और वह खो गया ।"

"पर सुनने वालो के हृदय मे तो वह सगीत बैठ ही जाता है, अपना स्थायी स्थान बना ही लेता है ।"

"यह बात तो ठीक है, पर सगीत की अभिव्यक्ति मे तो स्थायित्व नही है ।"

"आपने वाद्य-यन्त्र कौन सा सीखा था ।"

"सितार ही जानती हूँ । कुछ दिनो तक इसराज भी सीखा ।"

"तो आप सितार बजाती होगी ?"

"नही, अब नही ! अब तो चित्रकला की ओर ही मन झुक गया है ।

आपकी पुस्तक सामने रखी थी । उस समय दूसरे दो व्यक्तियो के सामने मैं कुछ नही कह पाया था । अब महादेवी जी ने पन्ने पलटे और फिर अपनी पुरानी बात दोहरायी । इस पर मैंने कहा—

"आपका उनका सम्बन्ध तो ऐसा है कि उसमे बडे छोटे की बात नही उठती । भाई बहिन मे अवस्था का चाहे कितना ही अन्तर हो, पर व्यवहार बराबर का ही रहता है ।"

"फिर भी छोटे बडे भाई बहिन का सम्बन्ध तो रहता ही है । छोटे बडो को उपहार नहीं देते । हाँ, बडे छोटो के जन्म दिवस पर देते हैं । छोटे तो बडो को केवल नमस्कार भेजते है," यह बात उन्होने हँस कर कही । इस पर मैं बोला, "यह उपहार नही है । मन की भावना का प्रतीक है सम्भवत ।"

इस पर मुस्काकर उन्होने एक बार मेरी ओर देखा पर कुछ बोलीं नही । वह पन्ना पलट कर देखने लगी जिस पर लिखा था, "बहिन महादेवी को—उनके जन्म दिवस पर ।" फिर कुछ पलो के बीत जाने पर बोली—

"जन्म दिवस तो तभी तक मनाया जाता है जब तक माँ रहती हैं । अब तो आप लोगो का जन्म-दिवस ही मुझे मनाना चाहिए, क्योंकि मेरा परिवार तो आप लोगो का ही परिवार है । व्रजमोहन गुप्त है, आत्माराम हैं, पाडेय हैं । कोई मुझे 'जीजी' कहता है कोई 'दीदी' ।"

"पर मैं तो आप को कुछ नही कहता" मैंने कहा ।

"जो तुम्हे अच्छा लगे, वह तुम कह दिया करो।"

"मुझे 'जीजी' अच्छा लगता है पर मैं आपको आज से' ' '' 'वा' कहा करूँगा। आज से मेरा आपका 'बा' का सम्बन्ध रहा।" सचमुच 'बा' शब्द की परिधि मे भी मेरे मन की बात नही आती। मेरे उनके सम्बन्ध मे अनायास ही इतने सम्बन्ध मिले हुए हैं कि उन सब को व्यक्त करने के लिये कोश मे कोई शब्द नहीं मिल सकता।

रात के दस बजने वाले थे। अपनी 'बा' का आशीर्वाद लेकर मैं घर की ओर चल दिया।

आज बातचीत मे उन्होने अपने जीवन के वे गहन पटल खोल दिये थे जिन पर चर्चा करने की बात तो बहुत पहले से मन मे आई थी, पर यही सोचता था जीवन भर ऐसी चर्चा का अवसर नहीं मिलेगा। आज मैंने उनसे बिल्कुल वैसी बातचीत की और वैसे ही प्रश्न भी किये जैसे कभी-कभी अपने पागलपन में आप से किया करता हूँ। पर आप है कि रहस्य बने हुए हैं, इतना भी भेद नही खोलते !

मथुरा
शिवचन्द्र नागर

21

30 ए, वेलीरोड, प्रयाग
9 / 3 / 47

आदरणीय 'मानव' जी,

कई दिन से आपके पत्र की प्रतीक्षा थी। आप स्वस्थ तो है ? होली बीत गई है। वैसे मैं त्योहारो से उदासीन नही, पर इस बार न तो मैंने रग ही उडाया और न मैं कही आया गया ही। 7 ता० को आपका पत्र भी नही आया, इसलिये उस दिन और भी उदासी रही। कही आप बाहर तो नही चले गये थे ?

उस दिन आपकी पुस्तक डा० ब्रजमोहन ने देखी थी और भी कुछ व्यक्तियो ने देखी होगी क्योकि वह टेबिल पर ही रक्खी रही थी। ब्रजमोहन गुप्त को आपका लिखा "बहिन महादेवी को ' आदि" दिखा कर कह रही थी, "पुस्तक भेजना ठीक नहीं था, पर पुस्तक के अन्दर उन्होने बात तो बहुत अच्छी लिखी है और पुस्तक तो अच्छी है ही।"

उस दिन महादेवी जी मे बात करने का मूड (Mood) आया था। प्रवाह में जल्दी-जल्दी अपने घुँधले अतीत पर एक दृष्टि डाल गई। उस दिन उनका मन उदास हो गया था। आप अपनी जन्म-तिथि तो लिखियेगा। आपके इतना निकट होने पर भी मैं आपकी जन्म-तिथि तक नही जानता। सचमुच मेरी दशा है बडी दयनीय।

मेरे एक मित्र हैं—रमेश चन्द्र वर्मा डी० फिल। उन्हें आपकी कलकत्ते की 'रानी' पत्रिका मे प्रकाशित 'याद है वह बात' कविता बहुत पसन्द आयी। उसकी एक पंक्ति है, 'बीच मे है किन्तु प्रिय! सिंदूर की दीवाल!' उसी के आधार पर उन्होंने एक कहानी लिखी है-'सिंदूर की मर्यादा।'

आपने आने की बात नही लिखी, यह बात अच्छी नही लगी। 6 अप्रैल को आपको यहाँ आ ही जाना है। किराया मैं मकान मालिक को पहली अप्रैल को ही दे दूँगा। आइये अवश्य।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

22

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
15 / 3 / 47

आदरणीय 'मानव' जी,

12 / 3 का पत्र मिला। पत्र पढने पर ऐसा लगा जैसे बहुत छोटा हो।

आप 'आप' और 'तुम' का इतना विचार रखते हैं! मेरे और आपके सम्बन्ध मे 'आप' और 'तुम' की बात उठती ही नही, फिर उसके लिये सोचना ही क्या?

'बा' शब्द गुजराती का ही है। जब बच्चे अपनी माँ का स्नेहमय ढंग से पुकारते हैं तो 'बा' कहते हैं। मेरे मस्तिष्क मे 'माँ' उतने स्नेह का वाहक नही जितना 'बा' है। बात यह है कि घर पर माँ को हम जीजी या बा ही कहते हैं। अत उसी के प्रति मन का झुकाव हो गया है।

मेरा मन कुछ-कुछ आलोचना की ओर झुक रहा है। अपने आप ही मन मे प्रसाद के 'आँसू' और महादेवी की 'नीरजा' पर कुछ लिखने की बात जगी है। कुछ ऐसा लगता है मन का यह झुकाव मुझपर आपके स्नेह का ही प्रभाव है।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

23

30 ए, बेली रोड,
इलाहाबाद
17 / 3 / 47

आदरणीय 'मानव' जी

कल ज्वर आ गया था। खाना भी नहीं खाया। कभी-कभी हाथ काँप उठता है।

हाँ, महादेवी जी की उस दिन की बात पर मन मे बहुत से प्रश्न उठते हैं। पर कोई नही कह सकता इस सब का रहस्य है क्या?

मैंने पिछले एक पत्र मे आपसे आप का जन्म-दिवस पूछा था। पर आपने लिखा नही। क्या आपके लिये भी हमे इधर-उधर खोज करनी पड़ेगी? हम तो किसी ऐसे व्यक्ति को जानते भी नही जिससे आशा रखें कि वह आपको इतना अधिक जानता है।

'अवसाद' की आलोचना मे एक बात आलोचक ने बहुत अच्छी कही है, 'सच पूछिये तो इन गीतो मे चुनाव करने की ज्यादा गुंजायश नही।' मेरे मन मे भी यह बात कई बार उठी है कि 'अवसाद' के गीतो मे यह नहीं बता सकते कि कौन सा गीत अच्छा है कौन सा नही।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

24

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
24 / 3 / 47

आदरणीय 'मानव' जी

ज्वर तो नही है, पर मन बहुत उदास है। सुबह से पढ़ते-पढ़ते मस्तिष्क बिल्कुल थक गया है। अब पत्र लिख रहा हूँ और इसमे इतना ही आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ जैसे थके हारे मुसाफिर को कुछ आराम मिल गया हो।

उस दिन के आपके प्रश्न बहुत ही स्वाभाविक थे। उनमे से कुछ मेरे मन मे भी उठे थे, पर उनका निराकरण मन ने स्वय कर लिया। यह बात मैं मानता हूँ कि बहुत सी बातें तर्क से सिद्ध की जा सकती हैं, पर मन का सतोष नही होता। ऐसी ही बात महादेवी जी के सम्बन्ध मे भी है।

मेरा आना बहुत कठिन है। मैं यह चाहता हूँ कि मुझे यहीं कुछ काम मिल जाये। यदि मुझे 400 रु० का काम मिल जाय तो मैं उसे 15 जून तक समाप्त कर दूं। फिर एक महिना मुझे विश्राम लेना है। इस जीवन मे सुख नही। यहाँ आप आकर रहते तो दिन हल्के होकर कट जाते। आप का काम भी होता रहता। यहाँ गर्मी तो बहुत पड़ती है, पर मैं जानता हूँ आप उसे सह लेंगे।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

25

30 ए, बेली रोड, प्रयाग
7 / 4 / 47

आदरणीय 'मानव' जी,

पत्र तो तीन दिन पहले मिल गया था, उत्तर मे कुछ विलम्ब हो गया।

एक मीठी कल्पना है। कल्पना की उन सभी रेखाओं से पूर्ण, व्यक्ति मिलना कठिन ही, है। खोजने पर पाया जा सकता है, पर वह अपनाया जा सके, ऐसे भाग्यवान व्यक्ति एक दो ही होंगे, कदाचित् एक भी नहीं। अधिकतर ऐसा देखा गया है कि जब किसी को अपने मन का व्यक्ति नहीं मिलता, तो उसकी भावना का, कल्पना का स्तर क्रमश नीचे को उतरता रहता है और फिर जो भी व्यक्ति उसके स्तर पर आ गया, उसी को मन दे बैठता है। किन्तु महादेवी जी के साथ यह बात नहीं हुई उनका स्तर जहाँ था, वहीं रहा और उस स्तर का उन्हे कोई व्यक्ति नहीं मिला। उन्होंने अपनी खोज बन्द कर दी, वे विरक्त हो गईं।

पत मे भावो की अतल गहराई तो नहीं, किन्तु कोमलता अवश्य है, पत landscape बनाने वाले चित्रकार की तरह हैं, पर उनमें मानव की अन्तर्निहित अनुभूतियो की रेखायें नहीं मिलती। यदि मिलती हैं तो बहुत कम।

सचमुच, मन-मन मे बस जाने वाला कवि इस युग मे पैदा नहीं हुआ, इस युग की सबसे बडी ट्रैजेडी यही रही है कि पाठक और लेखक के स्तर मे एक बडा भारी gap रहा है। वही कवि आने वाले युग मे मन-मन का कवि होगा जो ऐसी वस्तु साहित्य को देगा कि यह gap विलीन हो जाये। इसके लिये दो ही बातें हैं या तो लेखक को पाठक के पास आना होगा और या पाठक को लेखक के पास।

अपना प्रेस होना तो बहुत ही आवश्यक है और जल्दी ही होना चाहिये। अपना एक प्रेस हो, अपना एक पत्र हो, मैंने तो यही स्वप्न देखा है। यही सोचता हूँ कि यदि दो व्यक्ति एक सा ही स्वप्न लेकर चले हैं तो वे मिल कर क्या नहीं कर सकते। समस्या सबसे बडी Capital की है। मैं नौकरी नहीं करना चाहता, पर इसके लिए अपना अध्ययन समाप्त करने पर कुछ वर्ष नौकरी करनी ही पडेगी।

प्रयाग आप आइयेगा अवश्य। यदि आप बम्बई गये तो कब तक जाने का विचार है?

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

26

30 ए, बेली रोड,
प्रयाग
19/4/47

आदरणीय 'मानव' जी,

आपकी बहुत प्रतीक्षा रही पर आप आये नहीं।

अपने पहले पत्र मे आपने कुछ बातो का बडा सुन्दर विश्लेषण किया था। सचमुच भाव की स्थिति पर रोक नहीं। पर यदि किसी व्यक्ति को दूसरी ओर से भाव का Responsive आधार नहीं मिला, तो भाव की स्थिति भी ठहर नहीं सकती।

जीवन के चारो ओर एक नही, अनेक व्यक्ति आते हैं। हो सकता है उनमे से कुछ किसी रूप मे जीवन को स्पर्श कर जायें, पर ऐसा व्यक्ति एक ही होता है जो जीवन मे प्रवेश कर पाता है : प्रेम मे शरीर आता ही नही। और जहाँ वासना है, वहाँ प्रेम नहीं। शारीरिक सम्बन्ध तो एक व्यवहार मात्र है। मेरी तो इस सम्बन्ध में इतनी extreme धारणा है कि शारीरिक सम्बन्ध मे हम बिल्कुल यन्त्रवत् रह सकते हैं। हो सकता है हमारा किसी से वर्षों शारीरिक सम्बन्ध रहे, किन्तु हृदय पर उस व्यक्ति की एक भी रेखा न खिचे। शारीरिक सम्बन्ध मे अभाव की पूर्ति हो सकती है, पर प्रेम-सम्बन्ध मे नही। प्रेम मे प्राण-प्राण का, भाव-भाव का, हृदय-हृदय का, जीवन-जीवन का एक होना है, शरीर-शरीर का नही। यदि गहराई से देखें तो प्रेम में विरह जैसी कोई वस्तु है ही नही। फिर आघात कैसा ? विरह मे Physical absence की भावना निहित है। प्रेम मे जिस व्यक्ति को हमने कभी अंगुली तक भी नही छुई, जिसकी आँखो मे अपनी आँखें डालकर भी नही देखा, उसके लिये हम जीवन भर आकुल रह सकते हैं। केवल बात इतनी है कि प्रेम मे दो व्यक्ति भाव की स्थिति के समतल पर सहर्ष विचरण करते है। भाव आत्मा का गुण है, यही कारण है कि प्रेम Sublime है।

व्यक्ति समझता सब कुछ है, पर कार्य में उस बात को ही अभिव्यक्ति मिलती है जो जीवन पर गहरा प्रभाव डाल गई हो। महादेवी जी भी समझती सब कुछ हैं, किन्तु उनके मन का लौकिकता की ओर झुकाव नहीं।

अपने यहाँ के नवीन समाचार लिखियेगा।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

27

30 ए, बेली रोड,
प्रयाग
24/4/47

आदरणीय 'मानव' जी,

आज शकुन्तला जी की परीक्षा समाप्त थी, सध्या को उनसे मिलने गया था। कल वे चली जायेंगी।

वहाँ से फिर महादेवी जी के यहाँ गया। परसो भी उनके यहाँ गया था। दोनों दिन उनके यहाँ भीड ही थी। भीड मे कुछ बातचीत हो नही पाती। वे भी या तो शान्त रहती हैं या चलती-फिरती बातें होती रहती हैं। आज एक बात हुई। हम कई व्यक्ति बैठे थे कि एक लड़का अन्दर आया। महादेवी जी स बोला "महादेवी जी कहाँ है ?" सब चुप रहे। महादेवी जी बोली हँस कर, "क्यो भाई क्या काम है ? मै ही हूँ।" लडका जैसे बडी झुँझलाहट मे हो, इस प्रकार बोला, "साहब, आपकी एक

कविता है हमारी किताब में, उसका अर्थ समझ में नहीं आया । हमारे यहाँ के पंडित जी भी नहीं समझा सके ।"

'भाई कौन सी क्लास मे पढते हो ? क्या कविता है ?' महादेवी जी बोली । सबको बडी हंसी आ रही थी ।

"मैं नवी क्लास मे हूँ । परसो को हमारा इम्तहान है । आपकी कविता 'टूट गया वह निर्मम दर्पण' है । कुछ समझ में ही नही आता," लडके ने कहा । लडके को उन्होने कल बुलाया है । बाद मे वे सकलन करने वालो पर विचार करती रही । बोली, "ये लोग ठीक चीज छांटना नही जानते । नवी क्लास के लिए उन्होने क्या कविता रखी है जिसमें घोर अद्वैतवाद है । पहले तो मैंने बच्चो के लिये कुछ लिखा ही नही, यदि है भी तो कुछ और रखना चाहिए था ।" अब तक इस कविता का अर्थ मैं भी उलटा ही लगाया करता था । आज स्पष्ट हुआ, "कि जैसे दर्पण टूट जाने पर वस्तु और उसका प्रतिबिंब दो वस्तु नही रहते ऐसे ही द्वैत की माया का भ्रम समाप्त हो गया ।"

उनकी आंख का आपरेशन होगा । आजकल वैसे देखने मे महादेवी जी पहले से स्वस्थ हैं । वे कलकत्ते जाना चाहती हैं, पर वहाँ की स्थिति अभी ठीक नहीं । यदि वे कलकत्ते न जा सकीं तो आँख का आपरेशन करायेंगी । आठ-दस मई तक तो यही रहेंगी ।

साहित्यकार ससद की जमीन खरीद ली गई है । building की मरम्मत भी शुरू हो गई है । अब महादेवी जी उसके चारो ओर एक सुन्दर सुव्यवस्थित बाग की आयोजना मे लगी हुई हैं । डिजाइन के लिये वे विभिन्न पुस्तकें (Books on architectures) देखती हैं । वे साहित्यकार ससद् का भवन कुछ ऐसा कलापूर्ण चाहती हैं जो अद्वितीय हो । वहाँ कुयें म सिचाई के लिये सबसे पहले 1½ Horse power का मोटर लगवा रही हैं । कल जब मैं बैठा था तो इन्जीनियर का 1700 रु० का Estimate आया था । प्रान्तीय गवर्नमेन्ट न 5000 रु० की सहायता दी है । उसके बाद भी कोई ससद् की मीटिंग नही हुयी, इसलिए अभी सदस्यता का निर्णय भी नहीं हो सका । डा ब्रजमोहन गुप्त की एक कविता पुस्तक 'प्रकाश की पुकार' ससद् से निकल रही है । डा ब्रजमोहन गुप्त के मुख से ही मैंने उनकी कविताओ क कुछ अश सुने । मुझे तो ऐसा लगा कि उन कविताओ मे विशेष कुछ नही । बाकी निकलने पर पता चलेगा ।

धीरेन्द्र जी को पुस्तकें दे आया था । वे तो आपको बहुत अच्छी तरह जानते हैं ।

मैंने महादेवी जी से "मीरा जयन्ती" की बात Suggest की थी । उन्हें विचार बहुत ही पसन्द आया । सचमुच यह बडे दुःख की बात है कि हम मीरा जयन्ती नही मानते ।

पत्र आपका कल रात ही मिल गया था । यह अनुवाद की बात अकस्मात् ही आयी थी । इससे पहले मुझे यह भी पता नहीं था कि मैं गुजराती का अनुवाद कर

भी सकता हूँ। यह तो मेरा ही विश्वास है कि यह किसी बड़े विधान की पूर्ति के लिए ही है। अगले वर्ष कदाचित् मेरी अपनी कहानियों का संग्रह निकले। पर अभी उपन्यास का समय नहीं आया।

प्रेम का क्षेत्र सीमा रहित है। अनुभव के साथ एक के बाद दूसरे नवीन पटल खुलते जाते हैं। पर कभी भी उनका अन्त नहीं होता। प्रेम के सम्बन्ध में किसी अवस्था में कोई भी यह नहीं कह सकता कि मैंने सब कुछ अनुभव कर लिया। अनुभव के साथ ही विचार बदलते रहते हैं और विचारों के साथ जीवन।

प्रेम में प्रतिदान की अपेक्षा नहीं, किन्तु एक दीपक बिना स्नेह कब तक जलेगा, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। जिस व्यक्ति को प्रेम में प्रतिदान नहीं मिला, उसका प्रेम मर जाएगा। बहुत सम्भव है एक दिन वह किसी दूसरे व्यक्ति को प्रेम करने लगे। कुछ भी हो मनुष्य यह चाहता है कि कोई उसे प्रेम करे। यदि उसके अनुकूल कोई एसा व्यक्ति उसे मिल गया तो फिर उसके जीवन में अपार शान्ति है, सुख है। जिस व्यक्ति को प्रेम का प्रतिदान नहीं मिलता, उसकी दो अवस्थायें अवश्यम्भावी हैं—या तो उस व्यक्ति के प्रति उसका प्रेम एक दिन मर जाएगा और यदि प्रेम की इतनी अनन्यता है कि उसमें तनिक भी कमी नहीं होती तो फिर वह व्यक्ति तिल-तिल घुल-घुल कर मर जाएगा। ऐसे में, उसे मृत्यु में ही अपार शान्ति और सुख है। आपकी पुस्तक निराधार में 'महामाया' इसका उदाहरण है। यदि वह अपने को परिस्थितियों से Adjust कर लेती तो उसका प्रेम मर जाता, पर वह नहीं कर सकी और इसका मूल्य उसे मृत्यु में देना पड़ा। प्रेम का प्रतिदान न मिलने पर हताश प्रेमी की ये ही दो अवस्थायें हैं। पर बात यह है कि जो अपने को परिस्थितियों के साथ Adjust कर ले, वह आदर्श प्रेमी नहीं और न उसका प्रेम प्रेम है। वह तो अवसरवादी है। अपने प्राण देकर भी प्रेम की अनन्यता यदि रह गई, तो वह हताश व्यक्ति भी प्रेमी है और उसका विफल प्रेम भी प्रेम है। 'महामाया' ऐसी ही आदर्श प्रेमिका है। कभी-कभी मन में ऐसी भावना उठती है कि विश्व में ऐसे आदर्श प्रेमियों की पूजा होनी चाहिए। पर उन्हें कौन जानता है ? कितने बेचारे चुपचाप एक भी 'उफ' 'आह' किए बिना मर जाते हैं।

शरीर पर मन का अधिकार है, पर मन पर मैं शरीर का अधिकार नहीं मानता। यही कारण है कि मैं मानता हूँ, मन के साथ शरीर जाता है, पर शरीर के साथ मन नहीं। तर्क से यह बात ठीक है। पर यह बात मैं अनुमान के आधार पर कह रहा हूँ। जिस व्यक्ति से मनुष्य का लौकिक सम्बन्ध रहता है, उसकी स्मृति प्रायः *मन को उतना आकुल नहीं कर पाती जितनी प्राण-प्राण को एकरस कर देने वाली* प्रेम-भावना। लौकिक सम्बन्धों की स्थूलता से मन-मन, बुद्धि-बुद्धि और प्राण-प्राण को बाँध देने वाली प्रेम की सूक्ष्मता अधिक स्थायी और अधिक व्यापक होती है। किन्तु जिसे हम प्रेम करते हैं, मन करता है उसकी बातों का सदैव चिन्तन करते रहें।

अपने आप ही कुछ पल प्रतिदिन ही ऐसे आते है जिनमे हम अपने प्राणो मे एक पीडा का, वेदना का, कसक का अनुभव करते हैं। अपने प्रेमी का ऐसा चिन्तन प्रतिदिन की पुरानी चीज है, पर फिर भी उसमे चिर नवीनता का आभास होता है।

प्रेम की पहली सीढी वासना ही है, पर वासना पहली सीढी ही है। ज्यो-ज्यो सम्बन्धो मे गहराई और परिपक्वता आई कि प्रेम सम्बन्ध की एक वह स्थिति पहुँच जाएगी कि उस बिन्दु पर यदि वासना प्रबल हो गई तो प्रेम मर जाएगा और प्रेम प्रबल हो गया तो वासना मर जाएगी।

'विरह' का प्रचलित अर्थ यही है कि किसी व्यक्ति के शरीर की साकारता का सामने न होना और प्रेम मे शरीर नही आता, अतः शरीर की अनुपस्थिति (विरह) जैसी कोई वस्तु प्रेम मे नही आती अर्थात् प्रेम मे विरह नही होता। पर यदि विरह का अर्थ दो विभिन्न अस्तित्वो की पृथकता से है तो आपकी बात ठीक है। 'मिलन मे भी विरह है। प्रेमास्पद के पास होने पर भी एक प्रकार की आकुलता का अनुभव भीतर ही भीतर होना है।' मानता हूँ। पर मेरी परिभाषा के अनुसार यह आकुलता *विरह की नही। यह आकुलता तो दो विभिन्न अस्तित्वो के ज्ञान से* पैदा होती है। प्रेमी यह चाहता है कि मैं प्रेमी को अपने मे समा लूँ और हम दोनो का भिन्न अस्तित्व न रहे।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

28

30-ए, बेली रोड,
प्रयाग।
3/5/47

आदरणीय 'मानव' जी,

29/4 का पत्र 1/5 के मध्यान्ह मे मिला। कम से कम मुझे आपकी कोई भी बात बुरी नही लगती। मेरे लिये संसार मे ऐसे दो ही व्यक्ति हैं जिनकी बात का *बुरा मैं नही मानता। हो सकता है मेरे पत्र की किसी पंक्ति मे इस ध्वनि का आभास* हुआ हो, पर अनुभूति और कल्पना वाली बात पर मन मे कोई ऐसा विकार उत्पन्न नहीं हुआ। मेरे शब्दो का प्रयोग अभी बिल्कुल exact नही होता।

माना प्रेम मणि है—स्वयं प्रकाश, पर इस मणि मे प्रकाश आया कहाँ से ? यह प्रकाश मैं समझता हूँ स्वयं भू नहीं। प्रेम मे दो पक्षो का होना नितान्त आवश्यक है और यह प्रकाश उन पक्षो के पारस्परिक सम्बन्धो से जनित प्रकाश है। अब प्रेम को मणि कहा जाय या दीपक ? मैं तो कहूँगा प्रेम है दीपक ही, पर अक्षय स्नेह से युक्त। यदि एक बार जल गया तो फिर नहीं बुझता, पर मणि मे प्रकाश जगाने की

आवश्यकता नही, उसका प्रकाश स्वय भू है, अमर है। प्रेम अक्षय है, अमर है, पर स्वय-भू नही।

साधारण मनुष्यो के साथ प्रतिदान न मिलने पर प्रेम का मुड जाना बहुत स्वाभाविक है और प्रेम का मर जाना भी। मैं तो ऐसे प्रेम को व्यवसाय-वृत्ति ही समझता हूँ, क्योकि ऐसा प्रेम तो बाजार के क्रय विक्रय के सिद्धान्त पर आधारित हो, ऐसा लगता है। यदि काव्यमय भाषा मे कहूँ तो ऐसी भावना तो खद्योत है, और प्रेम है वास्तव म ध्रुव-तारा।

'महामाया' की मृत्यु को भी मैं तो सराहनीय समझता हूँ। वह एक वास्तविक प्रेमिका की मौत मरी। उसने घुल-घुल कर अपने प्राण दिये। यदि उसने आत्म हत्या कर ली होती, तो मैं समझता कि वह कमजोर थी। क्या आप उस पर 'हठ' का आरोप लगा कर यह कहना चाहते हैं कि परिस्थितियों के अनुसार उसे अपनी भावना बदल देनी चाहिए थी? आप उसकी अविचल प्रेम भावना को 'हठ' का नाम क्यों दे रहे हैं? प्रेमी प्रेम के बदले प्रेम चाहता है और कुछ नहीं।

यदि कुछ क्षणो या मिनटो के लिए मन के खो जाने को आप मन का चला जाना कहते हैं तो इस प्रकार तो प्रतिदिन ही मन खोता होगा, पर इस प्रकार की क्षणिक आत्म विस्मृति को मन का खोना नही कहा जा सकता। ऐसे शारीरिक सम्बन्धो से जिस व्यक्ति को हम प्रेम करते हैं उसके प्रति प्रेम भावना मे कमी नही आनी चाहिये। बस यहीं प्रेम की पूर्णता है। यदि किसी शारीरिक सम्बन्ध के परिणामस्वरूप अपने प्रियतम के प्रति प्रेम-भावना मे कमी आ गई तो वह शरीर के साथ मन का जाना हुआ। 'शरीर के साथ मन भी कुछ न कुछ जाता ही है,' आपकी यह बात मैं पूर्ण रूप से मानने को तैयार नहीं।

जीवन तो एक महान् आकाश है। यदि उस पर दृष्टि डालें तो अगणित तारिकायें टिमटिमाती हुई दिखाई देंगी। क्षण-क्षण भर के लिये हम उन्हें देखते रहेंगे पर दृष्टि उनमे से किसी पर भी नही रुकेगी, दृष्टि स्वय ही परम तेजस्विनी 'चन्द्रकला' पर जाकर स्थिर हो जायेगी। उसे देखती ही रहेगी। न तो दृष्टि उससे ऊबेगी ही और न भरेगी ही। जिसके जीवन मे यह प्रेम की 'चन्द्रकला' उदित हो गई, बस उसी का जीवन सुधासिक्त हो गया। उसके जीवन की तिक्तता समाप्त हो गई। मैं तो कहूँगा उसने सब कुछ पा लिया।

व्यक्ति का आँखो के सामने से हटना विरह है। पर जिसे हम प्रेम करते हैं वह हमारी आँखो के सामने से हटता कब है? वह तो सदैव ही आँखों में रहता है, इसलिए मैं कहता हूँ कि प्रेम मे विरह नही। अब प्रश्न यह उठता है कि अपने प्रेमी के दूर हो जाने पर जिस विकलता का हम अनुभव करते है वह कैसी है? इस प्रश्न पर

विचार करने से पहले आवश्यक हो जाता है कि आपके पहले पत्र में आयी हुई बात 'प्रेम क्या है ?' इस पर मैं अपने मन की भावना लिखूँ।

एक अपना ऐसा साथी जो मन और बुद्धि के स्तर पर साथ-साथ विचरण कर सके, जो इतना सुन्दर हो कि उसे देख कर अपनी सौन्दर्य वृत्ति की पूर्णतया तृप्ति होती हो, अपना प्रियतम है। यदि ऐसा साथी मिल गया तो उन व्यक्तियों के बीच जो भावनाओं की धारा बहती है वही प्रेम है।

मन और बुद्धि के स्तर पर विचरण करने के लिये यह आवश्यक है कि हम उससे बात कर सकें। उसे देखकर हमारा मन खिल उठता है, क्योंकि उसके दर्शनों से हमारी सौन्दर्य वृत्ति की तृप्ति होती है। प्रेमी के बिछुड़ जाने पर हम इन दोनों प्रकार के सुखों से वंचित हो जाते है और हमारे जीवन की वेदना, आकुलता तथा पीड़ा इसी अभाव से उत्पन्न होती है। मैं इस दशा को विरह नहीं समझता। मैं पति पत्नी के अलग हो जाने को विरह समझता हूँ या जिन दो व्यक्तियों में शारीरिक सम्बन्ध है और उनके सम्बन्धों की दुनियाँ इसी पर आधारित है, उनके बिछुड़ जाने को मैं विरह समझता हूँ। पता नहीं क्यों मुझे ऐसा लगता है कि विरह में शारीरिक सम्बन्ध के अभाव जनित पीड़ा की भावना है, जब कि प्रेमी से विमुक्त हो जाने वाली पीड़ा इससे भिन्न है।

किसी भी क्षेत्र में बढ़ने के लिये संघर्ष करना पड़ता है, पर पता नहीं क्यों आप इधर दो वर्षों से कुछ उदासीन से हैं। आज से चार वर्ष पूर्व जिस उत्साह के दर्शन मैंने आप में किये, वह आज नहीं। ऐसा क्यों ? अभी तो आपको बहुत कुछ करना है।

आजकल मैं लीलावती मुंशी की पुस्तक 'रेखाचित्र' का अनुवाद कर रहा हूँ। पुस्तक के पढ़ने से पता लगता है, लीलावती एक तीव्र प्रतिभा सम्पन्न रमणी हैं। उनका अध्ययन और अनुभव दोनों ही बड़े विस्तृत और गहरे हैं। विशेषतया संस्कृत और अंग्रेजी का अध्ययन बड़ा विस्तृत है। वे एक भावना प्रधान साहित्य समालोचिका हैं। कभी बम्बई गये तो इनसे मिलेंगे। श्री के एम मुंशी के पास भी मैंने "किसका अपराध" की प्रति अभी तक नहीं भेजी। मुरादाबाद आने पर ही भेजूंगा।

महादेवी जी ने एक बार कहा था, पुस्तकें संकलन करने का काम भोजन परोसने का सा काम है। 'किसका अपराध' पढ़ कर आप लिखिये कि इस अनुवाद द्वारा परोसने का काम मैं ठीक कर सका हूँ या नहीं।

साल के इन अन्तिम दिनों में मैं गरीब हो गया हूँ। शायद कुछ रुपयों की जरूरत पड़े। मैं दूसरे पत्र में लिखूंगा—यदि आवश्यकता हुई।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

30 ए, बेली रोड,
प्रयाग
9 / 5 / 47

आदरणीय 'मानव' जी,

'सब अपने को ही प्रेम करते हैं' यह बात नही। मनुष्य तभी तक अपने से प्रेम करता है जब तक किसी को प्रेम नही करता। प्रेम के बाद उसका अपना व्यक्तित्व अपना नही रह जाता। हमने देखा है, बहुत व्यक्ति विशेषत नारियाँ, जिसको प्रेम करती है उसी मूर्ति की उपासना जीवन भर करती रहती हैं। हमने बहुतो को अपने प्रेमियो के लिए प्राण देते देखा है। यह बात नारियो मे अधिक पायी जाती है। इसका कारण यही है कि नारी मे Submission की भावना है और पुरुष मे Domination की।

दाम्पत्य प्रेम को मैं दो प्रेमियो का सा प्रेम नही मानता। दशरथ कैकेयी का उदाहरण दाम्पत्य प्रेम का है। दाम्पत्य जीवन मे ऐसे झगडे रोज होते हैं। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि जब दो प्रेमियो मे शारीरिक सम्बन्ध स्थापित हो गया, तो दो-चार साल बाद या कुछ और अधिक समय बाद पहला सम्बन्ध विकृत या समाप्त हो जाता है। मैंने अपनी यूनिवर्सिटी के कुछ लेक्चरर ऐसे देखे हैं कि जिनके विवाह प्रेम विवाह (Love marriages) थे, पर दो वर्ष बाद या चार वर्ष बाद (Divo.ce) हो गया या जीवन सुखी नही रहा।

इसका क्या कारण है, यह बात मेरी भी कुछ समझ मे नही आयी। आप इस पर प्रकाश डालिये कि ऐसा क्यों होता है।

मेरे विचार से तो प्रेम की सफलता मन और बुद्धि के साहचर्य मे ही है और आदर्श विवाह वह है जहाँ शरीर, मन और बुद्धि तीनो का सतुलित साहचर्य हो।

आपको शायद हँसी आये पर मेरी तो धारणा ऐसी है कि कलाकार की एक पत्नी होनी चाहिए और एक प्रेमिका। प्रेमिका पत्नी नहीं हो सकती और पत्नी प्रेमिका नहीं हो सकती। बर्नार्डशा मे भी शायद कही यही लिखा है। इस समस्या को "रामायणी" पिक्चर मे बहुत सुन्दर ढग से सामने रक्खागया है। आपने "रामायणी" देखा होगा?

'महामाया' का जीवन बचाने के लिए क्या आप अभिनय भी नहीं कर सकते थे? आपने 'महामाया' के हृदय की भावना को नीति के मापदड से मापा, हृदय के मापदंड से नहीं।

यह बात तो मैंने मान ली कि 'किसी स्त्री के चाहे सारे सम्बन्ध पूर्ण हो गए हो, पर आप उसके साथ फिर भी कही न कही सम्बन्ध-सूत्र जोड सकते हैं।' सचमुच यह एक बहुत बडा गुण है, एक कला है। पर इसकी पूर्णता इतने मे ही नही, बल्कि

इसमे है कि यदि आपके सब सम्बन्ध पूर्ण हो गए हैं, तब भी आप दूसरा जो जितना चाहे उसे दे सकें। कम से कम वह निराश न लौटे, और साथ ही आप के सिद्धांतो की भी हत्या न हो। हो सकता है इसमे आप को अभिनय करना पड़े। इस कला की पूर्णता तो इसी में थी कि 'महामाया' को आप अपने मन के अनुकूल मोड़ देते। मुझे विश्वास है कि यदि आप चाहते तो उसे मोड सकते थे, पर उसकी भावना को एक छोटी-सी बात समझकर आप उस पर पैर रख कर आगे बढ गए। आपने उसे सहानुभूति के साथ समझने का प्रयत्न नही किया। शायद आपने यह नही सोचा कि यह बात प्राणो के बलिदान तक पहुंच जायेगी। और नही तो आप उसके साथ ऐसा व्यवहार कर सकते थे कि वह कुछ समय मे स्वयं ही आपका मार्ग छोड देती। बार-बार मैं 'महामाया' पर सोचता हूँ। सच, उसकी करुण मृत्यु पर मुझे बहुत दुःख होता है।

— यहाँ का यांत्रिक कार्य समाप्त करने पर ही मुरादाबाद आऊँगा। और तभी वहाँ आपके साथ रह कर निश्चित भाव से कुछ सृजन का कार्य हो सकेगा।

आपने प्रयाग से जाने पर अब तक क्या-क्या लिखा?

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

30

30 ए, बेली रोड
प्रयाग,
18 / 5 / 47

आदरणीय 'मानव' जी,

रुपया 10/5 को मिल गया था और आपका 13/5 का पत्र कल संध्या समय मिला।

अपने इस पत्र मे आपने प्रेम-विवाह के बाद सम्बन्ध विच्छेद के मूल कारण की विवेचना की है। यह विवेचना मुझे सत्य, सूक्ष्म तथा अनुभवपूर्ण लगी। प्रेम के क्षेत्र का आपने खूब अवगाहन किया है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन आपका मुझे तो अत्यन्त विस्तृत तथा सूक्ष्म लगता है इतने स्पष्ट और सुन्दर ढग से कदाचित् ही कोई समझा सकता था।

आपकी एक बात मेरी समझ मे नही आती। पहिले आपके इस पत्र की बातो का सार देता हूँ।

1. प्रेम मे आप शारीरिकता नही मानते।

2. किसी दूसरे से शारीरिक सम्बन्ध रखने मे आप मन का जाना या प्रेम की हत्या समझते हैं।

3 कलाकार को विवाह नही करना चाहिए, ऐसी आपकी धारणा है।

यदि तीनों बातों को कोई व्यक्ति मानता है तो फिर वह अपनी वासना शान्ति कैसे करे ? आखिर वासना भी तो मनुष्य के स्वभाव का एक गुण है ?

दस तारीख को महादेवी जी से थोडी देर अकेले मे बातचीत करने का अवसर मिला था। बात इस प्रकार हुई कि वे जैसे ही आकर बैठी, उनकी सुनयना बिल्ली भी हमारे पास आकर बैठ गई। बिल्ली की कमर पर हाथ फेरती फेरती बोल "सुनयना दो तीन दिन से दु खी है।" मैंने कहा, "क्यो" ?

"अभी तीन चार दिन पहले की बात है कि एक दिन यह मेरे चारो तर म्याऊँ-म्याऊँ करती फिर रही थी। मैंने भक्तिन को बुलाकर पूछा। भक्तिन बोली, बच्चे देगी। मै इसे अन्दर ले गई। यह मेरे पास बैठ गई और थोडी देर मे ए बच्चा दे दिया और फिर दूसरा। थोडी देर बाद दोनो बच्चों को उठा कर मेरे काग के ढेर के पीछे छिपा आई। बार-बार यह उनके पास जाती। इस गर्मी मे रह की आदत नही है। ऐसी गर्मी मे बच्चे भी कैसे रह पाते ? परिणाम यह हु कि एक बच्चा मर गया। सुबह को दूसरे बच्चे को कही उठा कर ले ग फिर उसको या तो कोई उठा कर ले गया या यह भूल गई। ऐसी बिल्ली यह। ऐसी बुद्धू माँ होगी तो उसके बच्चे मर ही जायेंगे।" बिल्ली पर हाथ फेरते बाली, "बुद्दू कही की ! *अपने बच्चे की भी खबर नही रखती। इसे ममता मोह* भी नही रहा।" इस पर मैंने हंसकर कहा, "यह भी आप की तरह विरक्त हो है।"

"नही भाई, मुझे तो सब लोगो का बडा मोह है।"

मैंने कहा, "नही, मैं तो यह सोचता हूँ कि आपके चारो ओर इतने व्यक्ति और सबसे आप के बहुत अच्छे सम्बन्ध हैं, पर मैं समझता हूँ कि यदि इनमे से क आपको छोडकर चला जाय तो आपको पीडा न होगी।"

नही, यह बात नही। मुझे तो दूर रहने पर भी यदि कुछ सुन लेती हूं कि क अपना परिचित कष्ट मे है तो बडी पीडा होती है। अभी पता लगा कि 'हिमव का लेखक बीमार है। केवल मैंने उसकी पुस्तक ही पढी है, पर फिर भी पता नही म अन्दर ही अन्दर क्यो दु खी होने लगा। यह भी पता लगा है कि उसकी आर्थिक द अच्छी नही। अब यही सोच रही हूँ कि ससद् से कुछ रुपया भेज दूँ।" इस पर मु हँसी आये बिना न रही और मैंने कहा, "यह तो एक का आपको पता लग गया पता नही कितने ऐसे बेचारे चुपचाप कष्ट मे मर जाते हैं।"

"हाँ, यह तो बात है ही।"

मैंने कहा, "हमारे मन मे पता नही यह कैसी भावना है कि एक अपरिचि व्यक्ति को कष्ट मे देख कर भी हमारा मन दु खी हो जाता है। शायद हमा साधारणीकरण हो जाता है उसकी कथा से।"

"ऐसे साधारणीकरण पता नही कब कब और कहाँ-कहाँ अनजाने मे होते रहते हैं।"

"अपरिचित व्यक्ति को भी किसी उपन्यास के काल्पनिक चरित्र के साथ साधारणीकरण होने पर इतना ही दुख होता है। हार्डी के टेस उपन्यास मे टेस की मृत्यु पर इतना दुख होता है कि कदाचित् किसी सम्बन्धी की मृत्यु पर भी उतना दुख न हो।"

"हाँ, हार्डी के सभी उपन्यास ऐसे हैं। मेरा पहले से ही वह प्रिय उपन्यासकार रहा है। उसके उपन्यास मुझे अच्छे लगते हैं।"

फिर कुछ देर चुप रहे। इसके बाद उन्होने अपनी जीवन-गाथा छेड़ दी और इसी प्रसग मे बोली, "हमारे नाना पक्के वैष्णव थे, अपनी माँ से हमे अहिंसा, करुणा, भक्ति आदि तत्व मिले। हमारे पिता जी का बुद्धि-पक्ष अधिक प्रबल था वे Throughout First Class रहे, गणित की कठिन से कठिन Problem अँगुलियो पर लगा देते हैं।"

"तो उन्होने एम० ए० भी गणित मे किया था ?"

"नही-इसी यूनिवर्सिटी से अग्रेजी मे। उनका बुद्धि-पक्ष मुझे भी मिला। यही कारण है, कही भी, गद्य हो या पद्य, चिन्तन मैं नही छोड़ पाती। वैसे वे न तो आस्तिक हैं और न नास्तिक। बुद्धिपक्ष प्रबल होने से नास्तिकता की ओर ही उनका अधिक झुकाव है।"

"वे अब भी हैं ?"

"हाँ, हैं तो, हैदराबाद मे रहते हैं।" उन्होने हँस कर कहा।

"मुझे पता न था। आपके नाना जबलपुर मे रहते थे। कदाचित् दक्षिण मे रहने के कारण ही उन पर वैष्णव धर्म का प्रभाव पड़ा।"

"हाँ, हो सकता है। मुझे तो कभी-कभी यही दुख होता है कि मेरा जन्म ऐसी (कायस्थ) जाति मे हुआ जो अधिकतर मांसाहारी है, इसी से अपनी जाति वालो से मेरा खान-पान का अधिक सम्बन्ध नही। जहाँ मेरा विवाह हुआ था वे भी मासाहारी हैं। उन्हें तो शिकार का भी शौक है।"

"पर यह तो उनका एक शौक रहा। इसमे यह नही कहा जा सकता कि वे कठोर हैं। उन्होने दूसरा विवाह नहीं किया। हो सकता है उनके हृदय मे आपके लिये कोई कोमल कोना रहा हो।"

"हो सकता है। पर मुझे गृहस्थ जीवन नही बिताना था। जहाँ तक कठोरता या क्रूरता का प्रश्न है, हृदय मे अलग-अलग वृत्त नही होते कि पशुओं के लिये अलग क्रूरता और मनुष्यों के लिये अलग। जो पशु को मार सकता है वह व्यक्ति को भी मार सकता है। पहले छोटे जीवो की हत्या से मनुष्य अहिंसा करना सीखता है।

हमने देखा है कसाइयो के बच्चे चूहे या और दूसरे जानवरों की पूँछ मे रस्सी बाँध कर खींचे फिरते हैं और उन्हे बुरी तरह मारते हैं।"

"दूसरे बच्चे तितलियों को दियासलाई के बक्से मे भर कर आग लगा देते हैं। क्रूरता का पहला पाठ यहीं से सीखा जाता है।"

"यह बात तो ठीक है। वैसे मनुष्य के मन में अपना एक साथी चुनने की बात तो स्वाभाविक होती है।'

"भाई, कैसा साथी ?" जरा हँस कर कहा।

"एक ऐसा साथी जिसके साथ शरीर, मन और बुद्धि का साहचर्य हो सके।"

"बात शरीर के साहचर्य की है। मेरे मन या मस्तिष्क के कोने मे कभी भी किसी ऐसे व्यक्ति-साथी की छाया नही आयी। शरीर का साहचर्य वासना है। यदि केवल वासना ही है तो वह पशु है। पर मनुष्य की वासना पर मन का नियन्त्रण रहता है और यदि मन व्यक्ति से ऊँची साधना-भूमि पर स्थित है तो फिर व्यक्ति पशु के स्तर पर क्यो उतरने लगा।'

"यह तो ठीक है कि मनुष्य की वासना पर मन का नियन्त्रण है, पर वासना भी तो मनुष्य का स्वभाव है, हर समय वासना पर मन का नियन्त्रण नही रहता।"

"यदि उस ऊँचे स्तर पर मन की स्थिरता की पूर्णता है तो कभीभी पाशविकता के स्तर पर उतरने की बात मन मे नही आयेगी। मुझे तो सबसे अधिक संतोष और शांति इसी मे है कि मैंने जो भी लिखा है उसमे धोखा नहीं।" हम ये बातें कर ही रहे थे कि पाडेय जी आ गये। सहसा गम्भीरता समाप्त हो गई और वैसी ही हल्की-हल्की घरेलू बातें हँस-हँस कर वे करने लगी। मैं चला आया।

मैंने देखा है कि प्रेम दो पूरक व्यक्तित्वो मे होता है—उद्धत और चचल लडकी शात और गम्भीर व्यक्ति को प्रेम करती है और शात तथा गम्भीर लडकी चचल तथा उद्धत को। अच्छा ऐसा क्यो होता है ?

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

31

30 ए, बेली रोड,
प्रयाग
26/5/47

आदरणीय 'मानव' जी,

पत्र आपका आज प्रात काल मिल गया था।

महादेवी जी 22/5 को रामगढ चली गई। चली गई अचानक ही। 20/5 को मैं गया था। पता लगा था उनकी तबियत काफी खराब है। ठीक होने पर बाहर

जायेंगी। 24 को मैं फिर गया, पता लगा 22/5 को वे चली गईं। उनका पता रामगढ नैनीताल है। क्या आप कहीं बाहर चलने की सोच रहे है। तीन जगह हैं, हरिद्वार, मसूरी और नैनीताल। इनमे से आप सुविधानुसार एक चुन लिजियेगा। एक सप्ताह भर आपके साथ यदि इनमे से कहीं मैं रहा, तो समझता हूँ मेरी सृजन-शक्ति तथा कल्पना सतेज हो जायेगी। इस समय तो सब कुछ कुंठित सा पड़ा है। ऐसा शैथिल्य मैंने जीवन मे कभी भी अनुभव नहीं किया था। देहली से आप बहुत जल्दी लौट आये।

'महामाया' के विषय मे आपके मुँह से जो सुनना चाहता था, इस पत्र मे आप अनायास ही उसे लिख गये। 'महामाया तो दूसरी पैदा नही हुई" इस वाक्य मे मै इतना अपनी ओर से और जोड़ दे रहा हूँ कि पैदा होने वाली भी नही।

आज आपने शरीर देने वाली बात को इतना महत्व देकर मन बहुत उदास कर दिया। मेरा भी विश्वास है कि 'जब धब्बा पड जाता है तो आँसुओ से भी नही धुल सकता।' पर वैवाहिक जीवन की स्वाभाविकता को आप क्यो नही मानते ? शारीरिकता की ओर से आप मे इतनी उदासीनता क्यो है ? जो आदमी अपने सिद्धान्तो पर अटल है वही महान् है। मेरी तो महान् की इतनी ही व्याख्या है।

छोटे से पत्र मे ही सब कुछ भर देने की आप मे अद्भुत शक्ति है। कभी भी आपने बडा पत्र नही लिखा पर फिर भी पढ कर असतोष नही रहता।

सम्बन्धो के प्रति मेरा ऐसा दृष्टिकोण हो गया है कि हम अपने मन मे एक सम्बन्ध भाई का, शिष्य का या बेटे का कुछ भी स्थापित करलें और अपने व्यवहार मे जीवन भर उसी का निर्वाह करते रहें, पर दूसरे से कोई अपेक्षा न रक्खें। यदि अपेक्षा रखी गई और जितना सोचा था, उतना नहीं मिला, तो दुःख ही होता है, इस लिये अपेक्षा नही रखनी चाहिये, चाहे मिल जाये हमे बहुत कुछ। यदि हम ऐसी भावना रखेगे तो मैं समझता हूँ इस अपेक्षारहित सम्बन्ध मे कभी विकार पैदा नही हो सकता।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

32

30 ए, बेली रोड,
इलाहाबाद
20/7/47

आदरणीय 'मानव' जी,

कल दिन भर की दौड धूप ने मन विक्षुब्ध और मस्तिष्क अशान्त बना दिया था। सध्या को ऐसा लगने लगा था जैसे इस दुर्बल शरीर की शिरायें टूटी जा रही

हो। मुरादाबाद से यहाँ आने पर कितनी ही सध्यायें बीत चुकी हैं, पर सब ने प्रतिदिन उदासी के अतिरिक्त कुछ नही दिया।

अब मैं थोडा-थोडा काम करने लगा हूँ। डेढ महीने के निष्क्रिय जीवन के बाद अब यहाँ ऐसा लगता है जैसे मैं एक घोर अन्धकार मे से अगण्य बत्तियो से जाज्वल्यमान प्रकाश गृह मे आ गया हूँ। कभी-कभी एकान्त मे बहुत देर तक रोने को मन करता है।

जिस कम्पार्टमेंट मे मैं बैठा था, मेरे सामने वाली सीट के कोने मे एक महिला बैठी थी। प्रयाग स्टेशन पर हम सब लोग उतरे। वे भी उतरी। उतरते समय उन्होने केवल अपना वाद्य यन्त्र उठा लिया था। अपने और दूसरे बहुमूल्य सामान की उन्हें पर्वाह तक भी नही थी। दूसरे विद्यार्थी उनका स मान नीचे उतार रहे थे और वे अपना वाद्य यन्त्र हृदय स लगाये हुए खडी थी। उन्हे इतना भी पता नही था कि कुछ और भी रह गया है या नही।

"सब आ गया ?" एक परिचित विद्यार्थी ने पूछा।

'हाँ" उन्होने उत्तर दिया।

इसके दो ही क्षणो बाद ने उनका छाता बढाते हुए कहा यह आपका है न ?"

उन्होने सकुचा कर उसे ले लिया। वह छाता उन्ही का था।

मैं सोचता हूँ यह सब क्या था ? वे कलाकार थी और ऐसा लगता था कि जैसे उनकी चेतना अपनी कला तक ही सीमित हो। कला की साधना बडी ही कठोर तथा सुन्दर है। इसमे डूब जाने पर कलाकार के मन मस्तिष्क और प्राण बिल्कुल ऐसे मर स जाते हैं कि उसमे ससार की छोटी बातो को स्थान नही रहता। जीवन की भौतिक कामनाये दब सी जाती हैं। इसमे मुझे एक अज्ञात प्रेरणा मिली है। पर जब मैं अपने को टटोलता हूँ तो ऐसा लगता है कि अब मुझ मे शक्ति नही रही अब स्वय ही नही उठ सकता। बुझती हुई बत्ती को उकसाने वाली सीक जैसे किसी व्यक्ति की आवश्यकता होगी।

बरसात की अधिकतर सध्यायें मनमोहक होती है। कल की सध्या भी ऐसी ही थी। पूर्वाकाश मेघाच्छन्न था और प्रतीची मे थे बादलो के गुलाबी टुकडे। मैं महादेवी जी के यहाँ गया। उनके कमरे के द्वार पर पहुँच कर मैंने देखा कोई महोदय बैठे बात कर रहे थे। मैं द्वार पर ठिठक गया और वही से हाथ जोड कर प्रणाम किया। तुरन्त महादवी जी बोली, "आओ भाई, इधर आ जाओ।" कमरे मे अन्दर के दरवाजे के दोनो ओर दो सोफे थे जिनमे से एक पर महादेवी जी बैठी थी और दूसरे पर वे महोदय। मैं सामने वाले लम्बे सोफे के एक कोने पर बैठ गया।

मैं बैठा ही था कि तुरन्त महादेवी जी ने पूछ लिया, "कब आये भाई ?"

"पन्द्रह तारीख को रात के दस बजे।"

"वही पुरानी जगह हो ?"

"जी, हाँ।"

"यूनिवर्सिटी भी तो पन्द्रह को खुली।"

"नहीं, सोलह को खुली थी।"

"छुट्टियों मे क्या किया ?"

"कुछ थोडा अनुवाद किया और कुछ गीत लिखे।"

"भाई, तुमने तो बहुत काम किया !" कह कर वे हँस पडी। इस पर वे महोदय बोले, "ठीक है जी, जो अच्छा लगा वह किया।"

"इसमे अच्छे लगने की बात नही, अनुवाद का काम तो मुझे अच्छा नही लगता, पर फिर भी करना पडा।"

"मानव जी कैसे है ?" महादेवी जी बोल पडी।

मैंने कहा, "ठीक हैं।" फिर क्षण भर चुप रहे।

"आप रामगढ से कब आयी ?" मैंने पूछा।

"दस जुलाई को।"

"अब आपकी आँखें कैसी हैं ?"

"वैसी ही है जैसे पहले थी।"

"पहाड पर कुछ अच्छा नही लगा ?"

"मुझे तो बहुत अच्छा लगा नही।"

"अब आँखो के आपरेशन का क्या रहा ?"

"यहाँ डाक्टर ने आपरेशन के लिए कहा तो था, पर जिन दो-तीन व्यक्तियों के आपरेशन उसने किये है वे कहते हैं कि घाव अच्छे नही हुए बल्कि और बढ गये।"

"तो अब आपने आपरेशन का इरादा छोड दिया ?"

"नही, सीतापुर के एक डाक्टर को दिखाऊँगी।"

"हाँ, उन्हे आप जरूर दिखलाइयेगा। वह इस काम मे बहुत होशियार हैं। मैं यह पता ले लूँ कि वे आजकल सीतापुर हैं या खैरनगर। फिर हम सब ठीक-ठाक कर देंगे। आप जल्दी ही चली जाइयेगा।" उन महाशय ने कहा।

"डाक्टर तो सैकडों इन्जेक्शन लगा डालते हैं। अब तो मेरे हाथ झनझनाने लगते हैं। हाथ से जो चीज पकडती हूँ छूट कर गिर जाती है। इससे भय लगता है कि किसी दिन पैरेलिसिस का attack न हो जाये।" मैं चुप रहा। अपने आप ही ऐसा लगा जैसे किसी आशका से दुख हुआ हो। मैंने पूछा, "ऐसा कब से होने लगा है ?"

बोली, 'अभी कुछ दिनों से। पहले भी मैं बीमार रहती थी, पर ऐसा लगता नहीं था। अब तो स्वयं मुझे भी ऐसा लगने लगता है कि अब मैं थक गई हूँ।" यह बात उन्होंने गंभीर होकर कही थी। इसे सुन कर मन अपने आप ही उदासी में डूब गया। इतने में ही वे सज्जन बोल उठे—

'मैं जैसा कहूँ आप वैसा कीजिये। वहां (साहित्य संसद् में) तो लगाइये ताला और यहां (महिला विद्यापीठ) का काम हम सम्भाल लेंगे। अभी हम चौथे पांचवे दिन आते थे, फिर दूसरे दिन आ जाया करेंगे। रहा आपका छठा period वह पांडे ले लिया करेगा। आप पहली अगस्त को कश्मीर चली जाइयेगा। यहां से देहली तक ट्रेन में और फिर वहां से हवाई जहाज में, और वहीं श्रीनगर में ऊपर मार्तंड वालों के यहां मैं सब ठीक इन्तजाम कर दूंगा। भले हैं। अब आप चली जाइयेगा।"

महादेवी जी 'हूँ-हूँ' करती हुई गर्दन हिलाती रहीं। मुँह से कुछ नहीं बोलीं। मैं समझ गया था कि इसमें महादेवी जी की सम्मति नहीं, पर फिर भी इन महोदय की बात का वे विरोध नहीं कर सकीं। उनकी 'हूँ-हूँ' देख कर वह महोदय तुरन्त बोल उठे, 'यह गर्दन हिला कर 'हूँ हूँ' नहीं, अब आप चल दीजिए। ये सब काम तो होते ही रहते हैं। अब 21 होते हैं आपके चले जाने पर 19 हुआ करेंगे। संसार किसी की प्रतीक्षा नहीं करता।"

'मैं तो चाहती भी नहीं कि संसार मेरी प्रतीक्षा करे" महादेवी जी ने कहा।

"नहीं, बस अब आप चली जाइएगा। तीन महीने वहां रहिएगा। नवम्बर में लौट आइयेगा। वहां आप रहेंगी, सब ठीक हो जायगा, आपका Digestion इत्यादि सब ठीक हो जायगा। पर वहां मूर्ति की तरह स्थापित न हो जाइयेगा, हाँ, कुछ घूमा कीजिएगा। जीवन से अधिक और कुछ नहीं, और अभी आप हैं ही कितनी। हमारी लडकी के बराबर होंगी" उन महोदय ने कहा। महादेवी इस पर हल्का सा मुस्करा दीं।

"बस वहीं रहना और कविता लिखना" उन्होंने कहा। इस पर मैं मुस्कराया और महादेवी जी मेरी ओर देख कर हँस दीं। उस समय उनकी हँसी में कुछ ऐसी बात थी कि जैसे वे कह रही हों कि देखो ये क्या कह रहे हैं।

"आप ये सब छोडिये। आपको मोह किसका? आपका मैका नहीं, ससुराल नहीं, लडके-लडको की शादी नहीं करनी" महादेवी जी हँसती रहीं। पर वे बोलते चले गए।

"ठीक ही कह रहा हूँ। मैं तो अब अपना सब काम लडके पर छोडने लगा हूँ।"

इस बात पर गम्भीर होकर महादेवी जी बोली, "पर मेरे काम ऐसे नहीं है जो किसी पर छोड़े जा सकें।"

"काम सब होते रहेंगे। आप निश्चिन्त रहियेगा। जितने दिन आप यहाँ हैं वह क्रिया जरूर करती रहियेगा। हाँ, आँखों पर पानी डालना, आप भूल गई ?"

"नहीं, मुझे याद है "

"फिर ठीक से समझ लीजियेगा।' इतना कह कर वह कुछ क्रिया समझाने रहे। इस बीच मुझे पता नहीं उन्होने क्या कहा, क्या नहीं। मेरे मन मे केवल एक बात घूम रही थी और वह यह कि आज महादेवी जी ने यह कहा था कि अब मुझे लगता है कि मैं थक गई हूँ। अब तक उन्हे घोर विश्वास था। पर आज उनमे यह अविश्वास की भावना कैसी थी ? मनुष्य का विश्वास एक बार मृत्यु को भी लौटा सकता है, पर आज वह पराजित सी क्यो थी ? इस प्रश्न का इस समय भी मेरे पास कुछ उत्तर नहीं, पर विश्वास है कि वह भावना केवल एक mood थी। जीवन मे कभी-कभी शिथिलता और पराजय के ऐसे क्षण आते हैं कि हम बच्चे भी जिन्हे उत्साह का पुतला होना चाहिए अनुभव करने लगत हैं जैसे थक गये हैं। हमारी कमर टूट गई है।

मैं यही सोचता रहा। वे महोदय अपनी क्रिया समझा कर सोफे पर स उठ कर बोले "तीन महीने आप कश्मीर रह आइयेग।" फिर उन्होने एक पर्चा जेब मे निकाला। उस पर कुछ लडकियो के नाम थे, उनके admission के लिये उन्होंने कहा। फिर वे चले गए।

ये महोदय बडे ही नाटकीय ढग से बातें करत थे—अंगुली हिलाकर, आँखें घुमा कर और ठीक परिस्थिति के अनुसार मुख-मुद्रा बनाकर। इनकी उम्र 55 साल के आस-पास होगी। एक खादी की टोपी, एक खादी की अचकन और खादी का चुस्त पायजामा पहने थे। आदमी मन के बहुत अच्छे प्रतीत हुये। चतुर और व्यवहार कुशल बहुत अधिक। महादेवी जी पर इनका बेटी का सा अमित स्नेह है. पर साथ ही इस स्नेह मे सम्मान भी मिला हुआ है। आप जानने के लिए उत्सुक होगे कि वह व्यक्ति कौन था। ये श्रीयुत सगमलाल जी थे—प्रयाग महिला विद्यापीठ के सस्थापक।

श्रीयुत सगम लाल जी के चले जाने पर मैं सोफे पर आ बैठा। एक क्षण के उपरान्त मैंने बात छेडी।

"रामगढ मे आपने और क्या किया ?"

"कुछ भी नहीं।"

"अपने रग और तूलिकायें तो आप ले गई होगी ?"

"जब मैं यहाँ से गई तो मैं बीमार थी। भक्तिन इत्यादि ने जो बाँध दिया वही साथ चला गया।"

"हाँ, मैं आपके जाने से दो दिन पहले आया था। उस समय पाँडे जी डाक्टर को

लिवाने गए थे। आपकी तबियत बहुत खराब थी। आप यहाँ अधिक दिनो तक रुकी रहीं। आपको पहले ही पहाड़ चला जाना चाहिए था। पन्त जी तो फिर आए नहीं ?

"उन दिनो तो आए नहीं, पर आजकल यहीं हैं।"

"कहाँ ठहरे हुये हैं ?"

"बच्चन जी के यहाँ।"

"यहाँ भी तो आते होगे ?"

"आते हैं।"

'मेरा उनसे मिलने का बड़ा मन है। अभी कितने दिनो तक और रहेंगे ?"

"अभी वे नवम्बर तक यहीं रहेगे।"

"साहित्यकार ससद मे रहने को क्या कहते हैं ?"

"कहते हैं कि मैं यहीं रहा करूँगा। गगा जी के किनारे ठीक रहेगा।"

"ठीक है, निराला जी को और बुला लीजियेगा, तब बहुत अच्छा रहेगा।"

"निराला जी आ जायें तो अच्छा ही है, पर न तो उन्हे समझाया जा सकता है और न बाँधा जा सकता।"

"आजकल निराला जी हैं कहाँ ?"

"वहीं उन्नाव मे है। सुना था रामायण का खड़ी बोली मे अनुवाद कर रहे है।"

इसके बाद कुछ क्षणो तक हम चुप रहे। मैंने उनकी ओर देखा और बात बदलते हुए कहा, "मैं यहाँ से घर चार जून को चला गया था। जाने पर 12 जून को मैंने एक पत्र आपको लिखा था, मिला या नहीं ?'

"वहाँ तो कोई पत्र नहीं पहुँचा।"

"मैं घर जाने से पहले एक दिन यहाँ आया था। नौकर से आपका पता पूछा था। उसने बताया था आपका नाम, रामगढ, नैनीताल, बस।"

"पत्र तो पहुँचना चाहिए था, छोटी-सी बस्ती मे तो लगभग मुझे सभी जानते हैं।"

"पर शायद रामगढ तो दो हैं लोअर रामगढ और अपर रामगढ। हो सकता है इसी Confusion मे खो गया हो। आप किस रामगढ मे रहती हैं ?"

"अपर रामगढ मे।"

"यह कोठी तो शायद आपकी अपनी है ?"

"हिमालय पर बनी हुई उस कोठी के आस-पास के वातावरण की निर्मलता ने, वहाँ की वृक्षराजि और घाटियों के लुभाव ने, उतार-चढाव की छटा ने, वृक्षो, पक्षियो, झरनो एव समूचे वातावरण से मिलने वाली प्रेरणा ने मुझे कुछ ऐसा प्रभावित

वित कर दिया है कि कभी वह कोठी मेरी अपनी मालूम होती है, और कभी मैं उस समस्त वातावरण को।"

"पते की गडबड की वजह से ही पत्र नही मिल सका, आप से परिचित Post Enployees भी शायद बदल गए हों। थोडा सा पता भी अधूरा रह गया हो, तो मुश्किल आ जाती है। मैने के० एम० मुन्शी को एक रजिस्ट्री भेजी थी। भला नई देहली मे श्री के० एम० मुन्शी को कौन नही जानता होगा, पर वह लौट आई और उस पर लिखा था Address incomplete।" यह सुनकर जरा हँसती रही।

"वहाँ पहाड पर सध्या को घूमना तो बहुत अच्छा लगता होगा?"

"घूमना तो बहुत कम ही होता था। वहाँ का जीवन भी बडा अरक्षित-सा हो गया है। पहाड की लडकियाँ, जिन बेचारियों को दिन भर घर से बाहर रहकर ही काम करना पडता है, घर के बाहर निकलना भी मुश्किल है। वहाँ एक सडक बन रही है, जिसमे खान (पेशावरी) लोग काम करते हैं। ये लोग बडा ही अनाचार करते हैं। किसी पहाडी लडकी को अकेली पाते हैं, पकड कर ले जाते हैं। कहाँ ले जाते हैं, क्या करते हैं, कुछ पता नही। यह सब कुछ ऐस ही होता है जैसे पानी मे एक बडा भारी पत्थर डाल दिया, थोडी देर पानी हिला और फिर शान्त। थोडी देर तक शोर मचता है, फिर 'कुछ नही' 'कुछ नही' हो कर दब जाता है। उन लडकियों की कोई खोज नही करता। अपने घर की लज्जा को ढकने के लिए बात दबा दी जाती है। एक दिन एक लडकी को पेड से टाँग गए। वह मर गई।'

"तब तो आपके दिन बडे क्षोभ और अशान्ति मे बीते होगे?"

"बहुत ही कष्ट होता था। किदवई को लिखा, पन्त को लिखा। पहाडी मजदूर जो बेचारा दो रुपये रोज लेता, उसे नही रखा जाता, पेशावरी खान जो चार रुपये रोज लेता है, उसे रखा जाता है।"

"पहाडी लोग तो बडे परिश्रमी होत है, उन्हें नही रखा जाता, यह तो बडा भारी अन्याय है' मैंने कहा। फिर क्षण भर चुप रहे। मैंने बात आगे बढाई "मैं अभी रामगढ गया था, वहाँ भी ये लोग रहते हैं। पूछने पर पता लगा, ये लोग यहाँ गरीब पहाडियो को रुपया उधार देते हैं और High rate of interest चार्ज करते हैं। कुछ लोग मिट्टी चूने का व्यापार करते है। ये लोग बडे ही खूँखार होते हैं। मुझे तो कभी कभी बडा ही आश्चर्य होता है कि फ्रांटियर मे इस जाति को अब्दुल गफ्फार खाँ ने किसी प्रकार अहिंसक बना दिया।"

"ये खुदाई खिदमतगार हैं और ये दूसरी पार्टी के हैं" क्षुब्ध स्वर मे महादेवी जी ने कहा। सचमुच यह बहुत ही दुःख की बात थी। पहाडी जाति बहुत ही निर्धन है। यदि उन्हे काम देकर अच्छी मजदूरी देने की व्यवस्था की जाए, तो उन्हे कुछ सहायता ही पहुँच सकती है, पर बजाय इसके वहाँ ऐसे आदमियों को बुलाया जा रहा है जो उनकी निर्धनता का फायदा उठा कर उनके जीवन का रहा-सहा सुख भी लूटने

पर उतारू हैं ।

कुछ क्षणो तक हम ऐसे ही निस्तब्ध बैठे रहे । फिर मैंने अपनी जेब से आप का पत्र निकाला और महादेवी जी ओर बढाते हुये कहा, "यह मानव जी का पत्र है।" उन्होने चुपचाप हाथ मे ले लिया, वही उसे तुरन्त फाड भी डाला। उसे दोनों ओर से देख भी डाला। पर केवल ऐसा ही लगा कि जैसे Paragraphs ही गिने हो। एक क्षण कुछ सोचा और फिर मेरी ओर का बढा दिया, "भाई, जरा सुनाओ तो क्या लिखा है।" मैंने उस पढकर सुना दिया। सुनने पर वे केवल इतना बोली, "अब मुझे रजिस्टर्ड पत्र ही लिखना पडेगा।" मैंने कहा, "सादे पत्र तो पहुँचते नहीं, बीच मे ही गायब हो जाते हैं।"

आपके पत्र छोटे होते हैं पर सब कुछ समेटे होते हैं। ऐसा ही पत्र यह भी था । आपके सुन्दर पत्रो मे से इसे भी एक पत्र कहा जा सकता है। वह पत्र उन्होंने मुझसे पढवा लिया था, इसे मैं अपना सौभाग्य ही समझता हूं। ऐसे पत्र जीवन में कभी-कभी ही पढने को मिलते हैं—कदाचित् कभी भी नही। आज मुझे ऐसा लगा कि महादेवी जी मुझ मे और आप मे कोई अन्तर नही समझती और न यही समझती हैं कि मुझमें और आपमे कोई दुराव का सम्बन्ध है भी—यदि है भी तो किस सीमा तक।

"तुम्हारा परीक्षा फल क्या रहा ?" तुरन्त महादेवी जी ने पूछा। उनके बोलने के ढग से ऐसा लग रहा था, जैसे यह बात वह पूछना भूल गई हो और अब पूछ रही हो।

"Second Class रही " मैंने मुस्कराकर उत्तर दिया।

"अब क्या ले रहे हो ?"

"अर्थशास्त्र मिल गया है।"

"और तुम्हारे पास बी ए मे क्या था।"

"गणित था, पर एम ए मे यह परिश्रम अधिक चाहता है और परिश्रम मुझसे हो नही पाता, दूसरे सस्कृत थी, पर इसमे कुछ Prospects दिखाई नहीं देते।"

"सस्कृत पढना बुरा नही है, पर सस्कृत पडितों का अब आदर नही रह गया।"

"सस्कृत से मुझे प्रेम है, पर अर्थशास्त्र तो केवल मैं अर्थ की दृष्टि से ले रहा हूँ।"

"अपने marks लेकर देख लिया अर्थशास्त्र मे कैसे नम्बर आये हैं ?"

"नही, अभी तो नहीं देखा। Second class आई है, इसलिये marks के लिये कोई उत्साह नही। परीक्षा फल 13 ता० को आया था, उस दिन अवश्य कुछ प्रसन्नता हुई थी। दोपहर को ग्यारह वजे धूप मे ही मानव जी आये और पास होने के उपलक्ष मे आपकी 'नीरजा' दे गये। उस समय कुछ भी बात नही हो सकी। मुरादाबाद के एक कोने पर मैं रहता हूं और दूसरे पर वे। सन्ध्या को चाय पर बात-चीत हुई। मैंने आपकी यह बात कह दी।" मैंने मुस्करा कर कहा और रुक गया।

"क्या बात भाई ?" महादेवी जी ने जरा हंसते हुए पूछा।

"वही जो आपने 'हिमवत्' के भेजने पर कही थी। छोटे आदमी बड़ों को उपहार नही भेजते। मैं 'मानव' जी को डाटूंगी।"

इस पर वे बहुत हँसी और बोली, "मैने तो वैसे ही कह दिया था। वह किताब तो मैंने अपने पास रख छोडी है। बहुत अच्छी है।"

मैंने अपनी बात फिर आरम्भ की, "पर 'मानव' जी ने इसका जो उत्तर दिया वह तो सुनिये। वे बोले, पर महादेवी जी मुझे छोटा समझती क्यो है? इस पर मैं कुछ नही बोला। वे चुपचाप चाय पीते रहे। मैंने पूछा अच्छा तब यह बताइये कि आपका महादेवी जी से क्या सम्बन्ध है? जो उत्तर मिला उसे आप जानती हैं?"

"क्या?"

"भय का।"

"भय का सम्बन्ध। इसका क्या मतलब?" महादेवी जी ने चकित होकर प्रश्न किया।

'यह बात तो मेरी भी समझ मे नही आयी।"

इस पर वे बहुत जोर से हँसी और सहसा गम्भीर और शात होकर बोली, 'मानव जी हैं बहुत अच्छे आदमी।"

"मैंने मानव जी को कितनी ही बार समझाया कि मुरादाबाद बहुत छोटी जगह है, वहाँ साहित्यिक वातावरण भी नही और वे भी यह बात मानते हैं, पर मुरादाबाद छोडते नही।"

"वहाँ उनके श्वसुर है न? कुछ सुविधा रहती होगी।"

"जहाँ तक मैं जानता हूँ सुविधा तो कुछ भी नहीं।"

"उनके श्वसुर हैं क्या?"

"एम० एल० ए० हैं, नाम है प० शकर दत्त शर्मा। बडे प्रभावशाली व्यक्ति हैं।"

"वे करना चाहे तो बहुत कुछ कर सकते हैं।"

"हाँ, यह बात तो है। वे बडे आदमियो को चिट्ठी लिख सकते हैं, पर मानव जी चिट्ठी लेकर किसी के पास जायेंगे नही, यह मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ।"

"उनकी पुस्तको का क्या रहा?"

" 'खडी बोली के गौरव ग्रन्थ' के दो सस्करण समाप्त हो गये। तीसरा तैयार हो रहा है और उसकी माँग काफी है। आपकी 'रहस्य साधना' वाली पुस्तक भी समाप्तप्राय ही है। पर 'निराधार' और 'अवसाद' ऐसे ही पडे हैं।"

"आलोचना की पुस्तक अधिक बिकती हैं। यह कैसे हो सकता है कि साहित्यिक केवल आलोचना ही लिखता। रहे उसकी नीरस चीज तो प्रकाश मे आये, और अपनी बात वह दबाये बैठा रहे।" फिर पूछा "आजकल वे क्या लिख रहे हैं?"

"एक खड-काव्य है उसका कुछ भाग सुनाया था। अभी पूरा नही हुआ। अपनी पुरानी पुस्तक 'शेफाली' के नवीन सस्करण की प्रतिलिपि भी तैयार की है।

अब उसमे केवल 15 कवितायें रहेंगी।"

"खड-काव्य का क्या नाम है ?"

"कदाचित् 'महागीत' रखा है।"

फिर थोडी देर कुछ सोचती रही और बोली, "मानव जी नवम्बर मे ही आयें तो ठीक रहेगा। तब तक मैं सब कामो से निश्चिन्त हो जाऊंगी।" यह बात उन्होंने आपके पत्र के उत्तर से सम्बन्धित कही थी। मैंने कहा, "नवम्बर तक तो आपका कश्मीर से लौटना ही होगा।"

"नहीं, काश्मीर तो मैं जाऊंगी नही। सगमलाल जी के सामने मैंने वैसे ही कह दिया था। सिर न हिलाती तो सिर हो जाते।"

"यह बात तो मैं तभी जान गया था।"

"पर फिर भी नवम्बर तक कही न कही आना-जाना रहेगा" महादेवी जी ने कहा। फिर थोडी देर चुप रह कर बात को आगे बढाते हुए बोली, "सम्पूर्णानन्द जी ने 25 हजार रुपये हिन्दी साहित्यिको के लिए रक्खे है। उसमे एक तो मुझे रक्खा है और दो कोई और हैं।"

"हां, अखबार में आया तो था। उसमे भी उन दो आदमियो का नाम नही बतलाया था।"

"आपको तो इसमे ठीक ही रक्खा है। आप के हाथ स ही इस रुपये का ठीक उपयोग हो सकता है।"

"भाई, सभी यह समझते तो है, पर गवर्नमेंट अपना नियन्त्रण किसी न किसी तरह रखती अवश्य है और इसी कारण जिस तरह हम चाहेगे उस तरह उपयोग नही होने देगी। इस प्रकार सरकार ने मेरा नाम रखकर यद्यपि सम्मान दिया है, पर इससे तो सम्मान घटने की ही सम्भावना है।"

"किसी भी लेखक को जो गरीब है, या मर रहा है, और इसलिए दया के रूप मे कुछ रकम दी जाए, तो वह हाथ नही फैलायेगा। हां, उसस किसी काम के करने के लिए कहा जाये और उसके उपलक्ष मे चाह कुछ भी दे दिया जाये तो वह प्रसन्नता से ले लेगा।"

"मैं भी कुछ ऐस ही सोच रही हूँ कि कुछ लोगो की पुस्तको को सम्मानित करें, कुछ से पुस्तकें लिखायें, उन्हे Honorarium दें। इसी तरह के ढग सोचूंगी।"

"ससद के पुस्तकालय के लिये भी तो काफी रुपया चाहिए।"

"अभी तो हम प्रकाशको से बिना पैसो के ही पुस्तकें ले रहे हैं और मेरे पास घर पर ही बहुत पुस्तकें हैं, उन्हें वहां रख दूंगी।"

"पर दूसरी प्रान्तीय भाषाओं की पुस्तको क लिए तो रुपए की जरूरत पडेगी।"

"सब हो जायगा' सहज भाव से महादेवी जी ने कहा। फिर बोली—

"पूरी छुट्टियो भर मुरादाबाद ही रहे ?"

"हाँ, मुरादाबाद ही रहा। प्रतिदिन सुबह एक-आध घण्टा पढ लिया करता था, बाकी दिन भर परिवार के सदस्यो मे और मित्रो म बैठकर गप्पें होती थी। मध्या को कभी मानव जी घर पर आ जाते थे और कभी मैं उनके यहाँ चला जाता था। ये दो ढाई घण्टे चाय पीने और साहित्य चर्चा मे बीतते थे।" यह बात सुनकर हँसी और बोली—

"बिना चाय के तो साहित्य-चर्चा होती ही नही।" इस पर मुझे भी हसी आ गई और मैं भी हँसता रहा। हँसते हँसते ही बोला, "एक-दो दिन के लिए दिल्ली और मेरठ जरूर गया था। 21 जून को दिल्ली से रेडियो पर मानव जी की आलोचना थी। उन्होने तीन पुस्तको की आलोचना की थी, जवाहर लाल नेहरू के 'हिन्दुस्तान की कहानी', रांगेय राघव के 'विषाद मठ' तथा 'आजकल' के एक विशेषाक की। उन्ही के साथ दिल्ली मैं भी गया था।'

"नगेन्द्र भी तो अब रेडियो मे है।"

"हाँ, नगेन्द्र जी के घर के पास ही उधर जैनेन्द्र जी भी रहते है। उनसे मिलने गये थे, पर वे मिले नही।'

"जैनेन्द्र जी तो आजकल यहीं है। कल यहाँ आए थे। मुझसे स्वास्थ्य के विषय मे पूछने लगे। मैंने कह दिया कि अब तो उस पार का टिकट कटाने वाले हैं, तो बोले एक साथ कई मिलकर कटायेंगे तो कन्सेशन मिल जायगा।" इस बात पर खूब हँसती रही। फिर मैं बोला, "जैनेन्द्र जी से मिलने की मुझे बहुत इच्छा थी। यहाँ कहाँ ठहरे हुए हैं ?

"सुन्दर लाल जी के यहाँ ठहरे हुए हैं। पर कल वे बनारस गए। कल तक शायद लौट आयें।"

"तब तो मैं परसो अवश्य आऊँगा। कदाचित् शाम को यही भेट हो जाए।"

"बनारस से लौट आयें तो यहाँ आयेंगे अवश्य। वे आजकल भारतीय साहित्य सम्मेलन का आयोजन कर रहे हैं। इसके लिए मौलाना आजाद ने उन्हे 50 हजार रुपए दिए हैं। और भी एक दो जगह से उन्हे पचास-पचास हजार का वचन मिला है।"

"इस भारतीय साहित्य सम्मेलन मे क्या होगा ?"

"इसमे भारत की सभी भाषाओ—बँगला, गुजराती, मराठी इत्यादि के लेखको का सगठन होगा। राजेंद्र बाबू सभापति होंगे।"

"Preside करने के लिए कोई साहित्यिक होना चाहिए था। निराला जयन्ती पर आचार्य नरेन्द्र देव ने अपने भाषण मे यह बात कही थी कि उनकी समझ मे नही आता कि साहित्यिक समारोहो मे सभापति किसी राजनीति से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति को क्यो बनाया जाता है, साहित्यिक समारोह मे तो सभापति कोई साहित्यिक

ही हो तो अच्छा लगे।"

"यह युग राजनीति का है । राजनीतिज्ञो के हाथ मे शक्ति है" महादेवी जी ने कहा।

'बिल्कुल ठीक है। आप यह देखिए कि शहर मे कोई भी छोटा मोटा function हो तो सभापति या तो किसी एम० एल० ए० को बनाया जायगा या किसी साहू को। मेरी समझ मे यह बात अब तक नही आई कि ऐसा क्यो है ?"

"भाई, उनके हाथ मे शक्ति है इसीलिए उन्हे पूछा जाता है। साहित्यिक के पास क्या रक्खा है। राजनीति मे तो जहाँ कोई जरा popular हुआ कि आत्म कथा भी निकल गई।"

'साहित्यिको को भी अपनी आत्म कथा लिखनी चाहिए" मैंने कहा।

'साहित्यिक अपनी आत्म-कथा लिख ही नही सकता। यो वह अपनी बात कह सब कुछ देता है" महादेवी जी बोलीं।

"हाँ, आप ठीक कहती हैं। साहित्यिक से History के से अपने विषय मे facts and figures नही दिए जा सकते, वह अपनी जीवनी किसी उपन्यास के रूप मे दे सकता है, जैसे—श्रीकान्त।"

"अच्छा, यह "शेखर एक जीवनी' भी तो अज्ञेय जी की अपनी आत्म कथा है।"

'नही, यह उनकी अपनी आत्मकथा नहीं। काल्पनिक है" महादेवी जी ने बडी दृढता से कहा। ऐसा लगता था जैसे उन्हे बिल्कुल विश्वसनीय सूत्र से पता हो कि यह लेखक की अपनी कहानी नही। यह बात यही समाप्त हो गई। यही से मैंने दूसरी बात उठाई।

'मैंने अबकी बार शरत्चन्द्र के तीन उपन्यास पढे—'शेष-प्रश्न', 'देवदास' और 'बडी बहिन'। 'शेष प्रश्न' तो बहुत ही सुन्दर उपन्यास है। पढ कर ऐसा लगता है कि जैसे वह जीवन की Encyclopeadia हो। यही सोचता हूँ कि यह आदमी कैसा होगा। इनकी कोई जीवनी नही मिलती ?"

"यही बडा आश्चर्य है कि ऐसे व्यक्ति के विषय मे बगाल मे भी बहुत नहीं मिलता" महादेवी जी ने कहा।

'मेरी तो बहुत ही इच्छा है कि किसी ऐसे आदमी से मिलूँ जो इनके सम्पर्क मे आया हो। आपने इन्हें नही देखा ?'

"एक बार देखा था।" इतना कह कर चुप हो गई।

"तो फिर पूरी बात बतलाइए।" मैंने बडे ही कौतूहल से पूछा। शरत्चन्द्र के विषय मे जानने के लिए मैं इतना उत्सुक था कि अपनी भावना पर तनिक भी सयम न रख सका। मैंने फिर कहा, 'शुरू से बतलाइए आप कैसे गई थी'

"नहीं, अब नहीं बतलाऊँगी। मैं कभी लिखूँगी" महादेवी जी ने कहा।

मैं कुछ बोला नही। पर इस तरह उन्होने कौतूहल और भी बढा दिया था। मैंने

फिर शरत्चन्द्र के बारे मे बात छेडी। 'इनके बारे मे कहा जाता है कि एक बार जब इनकी Royalty बहुत इकट्ठी हो गई थी, तो प्रकाशक ने कलकत्ते में ही इनके लिए एक सुन्दर सा मकान बनवा दिया था। उस विशाल मकान मे ये अकेले रहा करते थे। एक नव दम्पत्ति कलकत्ते मे आए। पति ने अपनी पत्नी को धोखे मे प्राप्त किया था। शादी से पहले उसने कह दिया था कि मैं बहुत रईस हूँ और विवाह हो गया था। कलकत्ते मे आने पर उस स्त्री का पति शरत्चन्द्र के पास आया और उसने पूरी कहानी कह सुनाई। शरत्चन्द्र ने रहने के लिए उसे मकान का एक बडा हिस्सा दे दिया। अगले दिन सुबह पति पत्नी चाय पी रहे थे। बात-बात मे पत्नी ने पूछा, "इस मकान मे यह दूसरा कौन रहता है ?"

"हमारा किरायेदार है।" यह बात शरत्चन्द्र सुन रहे थे। वे अपने कमरे मे आए और तुरन्त एक चिट लिख कर भेज दी, "इतनी थोड़ी जगह में आप लोगों को बहुत तकलीफ है इसलिए मैं तुम्हारा किरायेदार मकान खाली किए जा रहा हूँ।" सुना है फिर उस मकान मे कभी नही लौटे। यदि यह घटना सत्य हो तो मैं यही सोचता हूँ कि यह व्यक्ति कितना महान् होगा। एक कलाकार से ही यह सम्भव है। किसी दूसरे व्यक्ति स नही।

"उनसे मिलने पर ऐसा नही लगता था कि सामने कोई महान् व्यक्तित्व विराजमान है। रवीन्द्रनाथटैगोर जैसी बात इनमे नही थी। टैगोर का व्यक्तित्व ऐसा था कि सामने वाले व्यक्ति के चारो ओर छा जाता था। उनसे बात करने पर अवश्य ऐसा लगता था कि अपने से महान् व्यक्तित्व सामने कोई है।"

"पर तब भी मैं सोचता हूँ कि जब इनके उपन्यासो मे कथोपकथन इतने सुन्दर हैं तो यह व्यक्ति बात कितनी सुन्दर करता होगा।"

"बात बडे सहज भाव से करते थे।"

"इधर-उधर की ही बातें करते थे क्या ? साहित्य पर भी तो कुछ बातचीत हुई होगी।"

"मैंने इनसे इतना ही पूछा था कि आपके सब पात्र वास्तविक हैं क्या ?" बोले "कुछ वास्तविक हैं और कुछ काल्पनिक, पर कल्पना भी ऐसी नही कि ऐसे पात्र जीवन मे मिलेंगे ही नही।"

"इनके पात्रो के विषय मे यह प्रश्न बहुत उठता है। 'शेष प्रश्न' मे कमल के Character को देख कर मेरे मन मे यह प्रश्न उठा था कि क्या कमल जैसी स्त्रियाँ ससार मे होती होगी ? पर अब तो ऐसा लगता है कि अवश्य होती हैं।"

"हमे तो कभी ऐसा लगा नही कि इनके पात्र ससार मे मिल नही सकते। पर शरत्चन्द जो घोर एकाकी रहता था, न माँ, न भाई, न बहन, न पत्नी, उसने परिवार के इतने सुन्दर चित्रण कहाँ से किए ?"

"स्त्रियो के स्वभाव का तो शरत्चन्द्र ने बडा ही सूक्ष्म दर्शन किया है। ....

पात्रा से इनके स्त्री पात्र forceful भी बहुत है। 'शेष प्रश्न' मे पहली बार ही जब कमल पाठक के सामने आती है तो कहती है, 'मुझे साबुन और एक सफेद धोती चाहिए।' तभी से कमल पाठक के मस्तिष्क पर एक undying impresesion छोड़ देती है और ऐसा लगता है कि जैसे दूसरे सब पात्र इसके सामने फीके पड़ गये हैं।" मैं क्षण भर रुका, फिर बोला, 'कहते हैं राज-लक्ष्मी नाम की किसी वेश्या से इनका प्रेम सम्बन्ध था।"

"होगा। पहिले एक बर्मी स्त्री तो इनके साथ रहती थी, पर उन दिनो कोई नही था। ये घोर शराबी थे, पर बातचीत बिल्कुल ठीक तरह करते थे। शराब पीतें पीतें इन लोगो को यह ऐसे ही हो जाती होगी जैसे चाय। जो खूब शराब पीने वाले हैं वे अङ-बङ कभी नही बकते।"

"तो आप किस वर्ष गई थी ?"

"मैं सन् 1928 मे गई थी, तब शरत्चन्द्र कलकत्ते मे ही एक घर मे रहते थे। घर काफी बड़ा था, उसमे अकेले रहते थे।"

"कोई नौकर-चाकर भी नही था ?"

"नौकर भी एक-दो दिखाई तो देता था, पर उनके रहने का सब कुछ था बड़ा अव्यवस्थित। एक चीज यहाँ पड़ी है एक वहाँ।"

"देखने मे कैसे लगते थे।"

"अच्छे लगते थे। एक धोती, एक कुर्त्ता पहने हुये, सिर पर बिल्कुल सफेद बाल सीधे खड़े हुये।" ऊपर को अंगुली का सकेत करते हुये महादेवी जी ने कहा, फिर हँस पड़ी। मैं भी हँसने लगा। अब मैं चुप बैठ गया। महादेवी जी अपने सोफे पर से उठी, बोली, "चाय तो पियोगे न ?"

"पिऊँगा क्यो नही ?" मैंने हँस कर कहा, और वे अन्दर चली गई।

मैं वहाँ अकेला बैठा बैठा यही सोचता रहा कि शरत्चन्द्र और रवीन्द्र नाथ टैगोर दोनो ही बगाल के महान् कलाकार हैं। पर इन दोनो मे कौन महान् था ? इस प्रश्न का निर्णय नही हो सकता। महादेवी जी को रवीन्द्र नाथ टैगोर का व्यक्तित्व अच्छा लगता है। दूसरी ओर हिन्दी मे वे निराला के व्यक्तित्व को महान कहती है। निराला का व्यक्तित्व तो शरत्चन्द्र से मिलता जुलता है वैसी ही अस्तव्यस्तता। कुछ भी हो मुझे तो ऐसा लगता है कि शरत्चन्द्र का मन बहुत ही सुन्दर रहा होगा, निराला जी की भाँति बाहर से वे उतने सुन्दर भले ही न रहे हो। ऐसा मेरा अनुमान है पर यह ठीक ही होगा ऐसा विश्वास भी है।

मैं इसी प्रकार तीनो महान् व्यक्तियो के विषय मे सोचता रहा। बीस मिनट ऐसे ही बीत गए, महादेवी जी अन्दर से लौटी। मैंने मुस्करा कर कहा, "आज आप को स्वय ही चाय बनानी पड़ी क्या ?"

"नही तो, चाय तो बन गई है। मेरी एक शिष्या आ गई। उससे बात करने लगी थी।" महादेवी जी ने अपना प्याला उठाया, उन्होने चाय पीना आरम्भ किया, मैं नमकीन खाता रहा। फिर मैंने चाय पी। चाय ठडी हो गई थी। मैंने फलो की तश्तरी महादेवी जी की तरफ बढाते हुए कहा, "फल तो लीजियेगा ?" बोली, "नही बस एक प्याला चाय पीती हूँ।" मैं बोला, "मैं तो एक प्याला चाय और पीऊँगा।" "अच्छा अभी मँगाती हूँ।" उन्होने लीला को आवाज दी। लीला एक प्याला गरम चाय दे गई। मैं चाय पीता रहा, खाता रहा।

अब काफी रात हो गई थी। आज मैं तीन साढे तीन घण्टे तक बैठा बातें करता रहा, पर कुछ भी पता नही लगा कि समय कितना बीत गया है। मैने कहा, "अच्छा अब मैं चल रहा हूँ।"

"अच्छा !" कह कर वे अपने सोफे पर से उठी और बाहर बरामदे मे आई। द्वार पर फैली हुई लता का एक तिनका दातो मे दबा कर तोडती रही। मैंने हाथ जोड कर प्रणाम् किया। द्वार पर आकर मैंने एक बार मुड कर देखा, वे वैसे ही खडी थीं, विद्युत् के प्रकाश मे स्थिर भावमग्न, जैसे कुछ सोच रही हो।

मैं बाहर आया। बाहर आकर देखा आकाश पर घनघोर घटा घिरी हुई थी। चारो ओर घना अन्धकार था। उस घने अन्धकार मे कभी-कभी बादल गरज पड़ते और बिजली चमक-चमक उठती थी। चलते-चलते आपकी 'श्यामा' कहानी की निम्नलिखित अतिम पंक्तियाँ स्वतः स्मरण हो आईं। इसी से मिलता-जुलता वातावरण रहा होगा उस समय—

दुर्भाग्य सी घोर उस कालिमा मे
जिसमे नही मार्ग देता दिखाई
उर चीर दे पाहनो का पलो मे
वैसी कडक में
उस बाढ मे जो डुबादे सभी कुछ
बहादे सभी कुछ ?
जिस दृश्य को देखकर दूर से ही
उर कांपता शिक्षिता बालिका
नागरी प्रेमिका का
उस कालिमा को
करती हुई तुच्छ
उस बाढ को दृढ चरण से कुचलती
सौदामिनी को
दीपक बनाकर

श्यामा हमारी चली आ रही है
चढ़ी जा रही है ।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

33

30 ए, बेली रोड,
प्रयाग
29/7/47

आदरणीय 'मानव' जी,

मुरादाबाद से यहाँ आने पर कोई भी दिन ऐसा नही गया, जिस दिन बरसात न हुई हो। इस समय मैं पत्र लिख रहा हूँ, पर बाहर पानी बरस रहा है। बरसात अच्छी ही लगती है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि बरसात से मन का और जीवन का गहरा सम्बन्ध है।

कल सध्या को मैं महादेवी जी के यहाँ चला गया था। उस समय ड्राइंग रूम में अपने एक सोफे पर महादेवी जी बैठी थी और बडे वाले सोफे पर तीन व्यक्ति और थे। उनमे से दो तो थे श्रीयुत इलाचन्द्र जोशी और श्रीयुत गगा प्रसाद पाँडेय, तीसरे महोदय से मैं अपरिचित था। एक सोफा खाली पड़ा था। उस पर मैं बैठ गया। मेज पर रक्खे हुए फूलदान मे कुछ श्वेत और लाल पुष्प थे और भगवान कृष्ण की मूर्ति के सामने रखी हुई सुन्दर अजलि भी चमेली के श्वेत पुष्पो से भरी थी। कमरे का वातावरण एक मधुर सुगन्ध से सुरभित था।

बात पहले से छिडी हुई थी। कितनी ही देर तक मैं चुपचाप बैठा रहा, क्योकि मैं बात का सूत्र ही नही पकड पा रहा था। बीच मे कभी-कभी केवल 'हाँ' 'हूँ' ही कर देता था।

सहसा शांतिप्रिय की बात उठी। इसी सम्बन्ध मे महादेवी जी ने बताया कि आज तक लगभग सभी अशुभ और मृत्यु के समाचार शांतिप्रिय ने ही सुनाये हैं। एक बार जब अखबार मे गलती से पत जी की मृत्यु का समाचार छप गया था तो पहले तो उसने आकर वह समाचार सुनाया, उसके मुख पर न कोई विषाद की रेखा थी न कोई दुःख-सा ही था और तुरन्त बोला, "पता नही, उनकी किताबो का क्या हुआ होगा, मैं पास होता तो मैं ही ले लेता।" इस पर बहुत हँसी रही।

तुरन्त ही इलाचन्द्र जी बोले, "पाँडे जी, प्रसाद जी की मृत्यु पर भी वह रात को हमारे पास था। ग्यारह बजे होंगे हम लोग देवी जी के बगले से pass हुए, बोला 'तुम यही ठहरो, मैं अभी आया।' हमने कहा कि कल को अखबारो मे निकल जायेगा, पता लग जायेगा और कोई खुशी का समाचार तो है नही। पर वह बोला, 'नहीं,

पाँच मिनट आप रुकिए, मैं अब आया, और वह अन्दर चला आया।" इसके बाद की कहानी महादेवी जी ने सुनाई "मैं उस समय बुखार मे थी। 103 बुखार था। नौकर ने आकर कहा, मैंने उससे कहलवा दिया कि ज्वर मे हूँ, तो बोला, 'बडा जरूरी काम है, एक मिनट के लिये हो जायें।' मै उठी, उसी ज्वर मे दरवाजे तक आयी, तो शातिप्रिय ने सबसे पहले प्रसाद जी की मृत्यु का समाचार दिया। उस समय मैं ज्यो कि त्यो खडी रह गई और बिल्कुल भी नही सोच सकी कि क्या करूँ।' सुनाते-सुनाते महादेवी जी का मन भारी हो गया था, यह उनकी वाणी से स्पष्ट ही था। मैं नीचे गर्दन झुकाकर यही सोचता रहा कि जब उस दिन बारह बजे रात म 103 डिग्री ज्वर मे महादेवी जी ने प्रसाद जी की मृत्यु का शाक समाचार सुना होगा तो उन्हे कैसा लगा होगा ? उस कष्ट और वेदना को मापा नही जा सकता।

इसके बाद खाना पीना चला, चाय पी गई। जब हम खा पी चुके तो इतने मे डा० ब्रजमोहन गुप्त भी आ गये। उनके लिए भी महादेवी जी ने चाय और अन्य सभी चीजें मँगवाई। इसी बीच पाडे जी मेरी ओर सकेत करते हुए महादेवी जी से बोले, "कुछ लोग आपके परिचय के लिए व्यग्र है।" महादेवी जी ने मेरे बारे मे बतलाया। फिर मैंने उन तीसरे व्यक्ति महोदय का परिचय पूछा, वे बोले, 'मेरा नाम वाचस्पति पाठक है। मैं लीडर प्रेस मे हूँ।" ये वाचस्पति पाठक थे धोती और कुर्ते मे। पान खाये हुए अच्छे लगते थे। वाणी मे बनारसी लटका था और मिठास भी बनारसी रसगुल्ले जैसी ही। जब कई आदमियो के बोलते हुए भी उन्हें अपनी बात सुनानी होती थी तो जोर स बोल पडते थे। इस समय उनकी आवाज बडी तेज हो जाती थी। बातचीत करने का ढग प्रभावशाली था। अपना आशय बडी ही स्पष्ट रीति से व्यक्त कर देते थे। कई वर्ष पहले मैंने इनका एक कहानी सग्रह पढा था, तब से मैं इनके नाम से परिचित था, पर साक्षात्कार आज ही हुआ।

मेरे परिचय के साथ श्री के. एम मुन्शी की बात उठी थी और साथ ही उपन्यास साहित्य की बात। पाडे जी ने कहा, "अब क्या कविता, क्या कहानी, क्या उपन्यास, सभी क्षेत्रों मे हिन्दी मे ऐसा साहित्य है कि कम से कम भारत की किसी भी प्रान्तीय भाषा का साहित्य उससे ऊँचा नही।" मैंने पूछा, "उपन्यास भी ?" बोले, "हाँ।"

"शरत्चन्द्र के उपन्यासो के विषय मे आपका क्या विचार है ?" मैंने पूछा। वाचस्पति पाठक बोल उठे, "पहले बचपन मे तो शरत्चन्द्र के उपन्यास मुझे अच्छे लगते थे, पर अब तो लगते नही।" इस बात से उनका तात्पर्य सभवतः यह था कि शरत्चन्द्र भारत के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार नहीं। फिर कौन है ? मैं यही सोचता हूँ; पर मुझे तो और कोई दीखता नही।

साहित्यकार ससद की बात उठी। कुछ दिनो मे ठेले पर लाद कर आलमारियाँ इत्यादि सामान वहाँ पहुँचा दिया जायेगा। सामान पहुँच जाने पर वहाँ रहने की

सुविधा भी होगी। वहाँ की भूमि बडी ही कडी थी। बरसात मे मुलायम हो जाने के कारण अब उसमे हल चलवा दिया है।

महादेवी जी ने दूसरी बात उठायी। बात यह थी कि सुश्री होमवती देवी की कोई कहानी थी "गोटे की टोपी।" उसका प्लॉट लेकर "सिंदूर" नाम की फिल्म तैयार हुई है ऐसा सुना जाता है। कहते हैं उसमे उन्होने पात्रो के नाम तक नही बदले। विचार का विषय यह था कि क्या किया जाये ! तय यही हुआ कि होमवती जी के पत्र को 'भारत' मे छाप दिया जायेगा और कोई Responsible आदमी उस चित्र को भी देख ले और इस कहानी को भी पढ़ले। उसी समय कुछ हो सकता है। चित्र बम्बई मे release हो गया है। दो तीन दिन म अमृतलाल नागर आने वाले हैं। उन्हे "सिंदूर" के बारे मे पता होगा, उनसे भी पूछ लिया जायेगा।

पाडे जी ने एक प्रकाशक के विरुद्ध जिसने उनका कहानी सग्रह जब्त कर लिया है, शिकायत की। शिकायत क्या कहूँ, फरियाद कहनी चाहिए क्योकि कहने का ढग ऐसा ही था। बीच मे ही जोशी जी बोल पडे ' मेरी भी कुछ शिकायत है, पर पहले पाडे जी को कह लेने दीजिएगा।" जब पाडे जी कह चुके तो उसी प्रकाशक के विरुद्ध जोशी जी ने भी एक वैसी ही फरियाद की। सचमुच वह दृश्य देखने योग्य ही था। ऐसा लगता था जैसे किसी दरबार मे फरियादी अपनी-अपनी फरियाद सुना रहे हो।

पाडे जी के पास कागजी सबूत भी है। पाठक जी ने हँस कर राय दी कि आप एक नोटिस दे दीजिएगा।

दो तीन मिनट इस सिलसिले मे और कुछ बातें होती रही। फिर पाठक जी बोले, "अब चलना चाहिए।" सब लोग उठे। उन तीनो व्यक्तियो और डा० ब्रजमोहन गुप्त ने विदा ली। उस समय रात के 9॥ बज चुके थे। मैं महादेवी जी के साथ वापिस लौट आया।

दो क्षण तक कमरे मे मन्दिर की सी शान्ति रही। फिर महादेवी जी बोली, "देखो, ये प्रकाशक कैसे होते है ?" इतना कह कर वे चुप हो गई। बात उन्होने इतनी छोटी ही कही थी, पर उसमे उनकी पूरी व्यथा उतर आयी थी। "हाँ, एक कहानी पाडे जी ने सुनाई, दूसरी इलाचन्द्र जी ने। छि छि · · " मैंने कहा।

"ये तो वे कहानियाँ है जो प्रकाश मे आ गई हैं, अभी तो कितनी ही ऐसी होगी जो प्रकाश मे नही आयी। ये लोग ऐसा करते हैं और फिर इसी से बडे हो जाते है" महादेवी जी ने कहा। उनकी वाणी मे गहरी उदासी थी। कई क्षणो तक कोई कुछ नही बोला। वातावरण कुछ भारी अवश्य हो गया था। मैंने देखा उन दो तीन क्षणो की मौनता मे जो करुणा तथा व्यथा महादेवी जी के मन मे उमड आयी थी, वह शात हो गई थी। मैंने नई बात शुरू की। कहा—

"15 अगस्त को मुरादाबाद से एक नवीन साप्ताहिक पत्र 'विजय' आरम्भ होने वाला है। कल 'मानव' जी का पत्र आया था, शायद प्रथम अंक का सम्पादन तो उनके हाथ से ही हो।"

"यह पत्र साहित्यिक है या राजनीति का ?"

"यह पत्र पहले तो राजनीति का ही था। 1942 के आन्दोलन में बन्द हो गया था। अब इसका प्रकाशन फिर आरम्भ हो रहा है। इस समय ऐसा लगता है कि इसमें कुछ अंश साहित्य का अवश्य रहेगा। एक दो महीने तक जब तक कोई दूसरा आदमी नही मिलता, शायद 'मानव' जी ही सम्पादक का काम करें। पर फिर करेंगे नहीं।"

"मानव जी के कितने भाई बहिन हैं, कितना बड़ा परिवार है ?" महादेवी जी ने पूछा।

"भाई तो कोई नही, एक छोटी बहिन है। इसके अतिरिक्त उनकी माता जी हैं, पत्नी हैं, और दो बच्चे है।"

"इनके पिता जी नही ?"

"उनकी पिछले साल मृत्यु हो गई।"

"परिवार तो बड़ा है।"

"इससे तो वे नही घबराते, पर उन्होने सिद्धान्तों के बन्धनो से अपने को बुरी तरह जकड़ रखा है। जहाँ साहित्य से दूर रहना पड़े वहाँ नही जायेंगे।"

"जिसे अपने सिद्धान्त प्रिय हैं उसे उन्ही में बँधे रहना अच्छा लगता है" महादेवी जी ने कहा।

'यह बात तो ठीक है, पर उसे बाह्य कष्ट बहुत उठाने पड़ते हैं। कुछ थोड़ा सा उसे आन्तरिक सुख तो अवश्य मिलता होगा, क्योकि इससे उसे संतोष मिलता है।"

"थोड़ा सा क्यो, उसे बड़ा भारी आन्तरिक सुख मिलता है। उसे अन्दर की कोई अशांति नही रहती। बहुत से आदमी तो ऐसे होते हैं कि उनके कुछ सिद्धान्त होते ही नहीं, वे अवसरवादी हैं। कुछ आदमियो के सिद्धान्त होते है पर वे आपत्ति के समय परिस्थितियो के अनुसार अपने सिद्धान्तो मे समझौता कर लेते हैं, पर कुछ ऐसे हैं जिन्हे सिद्धान्त प्रिय हैं। वे समझौते की बात नही जानते। उन्हे बाहर के बहुत कष्ट उठाने पड़ते हैं। कोई आदमी है वह सच बोलता है, कोई उससे पूछे कि 'भाई सच क्यो बोलते हो, इससे क्या लाभ ?' तो वह उसे क्या बतला सकता है कि देख यह लाभ है। एक दूसरा है वह झूठ बोलता है, चोर बाजार मे समान बेचता है, उसने हजारों रुपये कमा लिए, उसका तो लाभ प्रत्यक्ष है।"

"किसी को कितना आन्तरिक सुख या दुःख है दुनिया इसे नही देखती, वह तो बाह्य सुख को देखती है और उसी पर आदमी का मूल्याकन करती है और अपनी धारणायें बनाती है। यह युग तो प्रत्यक्षवादिता का है।"

"ऐसा प्रत्यक्ष तो कुछ नही दिखाया जा सकता। एक सत्यवादी कह सकता है कि मेरी आत्मा का विकास होता है, पर वह यह तो नही बता सकता कि इतना विकास हुआ, जैसे एक चोर बाजार वाला बता सकता है कि एक लाख का फायदा हुआ। सिद्धान्तो के लाभ को तौल कर नही बताया जा सकता कि इतना है और न यह लाभ प्रयत्क्ष ही है।"

"आन्तरिक सुख तो इसमे अवश्य मिलता है पर बाह्य कष्ट क्या आन्तरिक सुख को मलिन नही कर देता होगा?"

"यह आदमी-आदमी पर निर्भर है। हमारे यहाँ एक पडित जी हैं। वे यहाँ सस्कृत की Classes लेते हैं। वे जब आये थे उनके बड़े-बडे सिद्धान्त थे। जूता चप्पल नही पहनेंगे, बड़े भारी शिखाधारी, वेदपाठी पडित। एक दिन वे मेरे पास आये। बोले, 'अब मैं विवाह कर रहा हूँ, आप मुझे आशीर्वाद दीजियेगा।' 'हाँ, भाई आशीर्वाद है, तुम सुखी रहो' मैंने कहा। बोले, 'नही आप स्वस्ति वाचन कर दीजियेगा।' स्वस्ति वाचन हो गया। वे विवाह कर लाये। अब पहले तो ऐसी बात थी कि पडित जी के पास जो कुछ भी हुआ और किसी ने मागा दे दिया, अब भी उनकी वह प्रकृति ज्यो की त्यो रही। लडकी घर मे आयी। कभी कभी दो-दो तीन-तीन अतिथि भी आने जाने लगे। राशन बहुत कम मिलता ही है। उन्हे बडा कष्ट हुआ। कुछ लोगो ने जिनके यहाँ उनके ट्यूशन थे, कहा कि आप लिख दीजिएगा हम चार आदमी हैं, हम सब ठीक कर देंगे। चार का कार्ड बन जाएगा। पर वे बडे सत्यवादी थे, उन्होने मना कर दिया। वे बाहर चले आयें तो लडकी घर झाडने, बुहारने बाहर निकले। लोग इधर-उधर से झाँकने लगे। पहले पडित जी से कोई बोलता नही था। अब उन्हे छेडने लगे। तब वे मकान यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ बदलते रहे। उनके सब काम चलते पहले की तरह ही है, पर चीज अब मिलती नही। कोई कुछ माँगने आयें तो मना करेंगे नही। इस बीच उनके एक लडका भी हो गया है। बेचारो को बडा कष्ट है, बाह्य भी और आतरिक भी।"

"आतरिक कष्ट क्यो है?"

"इसलिये कि उनके सिद्धान्त का उनकी पत्नी के लिये तो कोई मूल्य नही। अब कोई भी लडकी हो वह ऐसे तो रह नही सकती कि उसका पति दिन भर बैठा माला जपता रहे। पति के घर थोडा सुख भी तो चाहेगी ही। इधर वे अपने सिद्धान्तो के साथ समझौता तो कर नही सकते और मन रहता है उनका ऋग्वेद की ऋचाओ मे?'

"जब ऐसा था तो उन्होंने विवाह क्यों किया ?"

"इसलिये कि लोगो ने कहा कि एक सस्कार है, यह भी होना चाहिये, परम्परा है।" फिर क्षण भर रुकी। बात को आगे बढाते हुए बोली "सस्कार है, परम्परा है, विवाह है, बडा भारी सुख है, लोगो ने अनेक नाम दे रक्खे हैं, पर अन्त मे उतरना पडता है पशुता के स्तर पर ही। पशु, पक्षी, मक्खी, मच्छर के विकास की जो क्रिया है, उसके लिये ही तो मनुष्य इतना सब कुछ करता है। नही तो फिर है क्या ? एक अपरिचित सुन्दर स्त्री है उसे देखकर बेहोश हो गये। प्रतिदिन देखते हैं कि मीलो तक स्त्रियो के पीछे पीछे लोग चले जा रहे हैं।"

"रूप का लोभ है" मैंने कहा।

"अगर रूप का लोभ ही होता, तो एक सुन्दर मूर्ति बनाकर अपने कमरे मे रख लें और उसे ही देखा करें, पर ऐसा तो नहीं होता। सब कुछ एक वासना की भावना से प्रेरित है। शरीर पर अधिकार पाने के लिये ही यह सब कोलाहल है।"

"नारी पुरुष को आकर्षित करती है, पुरुष नारी को आकर्षित नही करता ?"

"जैसे ब्रह्म है और माया है ऐसे ही पुरुष और स्त्री हैं। माया ब्रह्म को घेरे हुये है। माया आकर्षित करती है, आकर्षित होती नहीं। नारी माया का अवतार है, इसलिये इसमे पुरुष को बडा भारी आकर्षण है।"

"पर ऐसे व्यक्तियो से जिनसे हमारा केवल मन और बुद्धि का सम्बन्ध है, उनसे बिछुड जाने पर भी हम एक आकुलता का अनुभव करते हैं।"

"आकुलता का अनुभव करते तो हैं पर यह आकुलता दूसरे प्रकार की है। यह बात तो समझ मे आती है कि गुरु है उसे एक शिष्य चाहिये, अपनी बुद्धि का साथी चाहिये या किसी और महान् कार्य का आयोजन कर रहे हैं उसमे एक साथी चाहिये। पर एक जीवन साथी चाहिये, शरीर के साथ पशुता के स्तर पर साथ देने वाला, यह समझ मे नहीं आता। सृष्टि के विकास के लिये इसकी आवश्यकता है। सभी इससे अलग रहने लगें तो सृष्टि का विकास ही रुक जाये, पर यहँ है दुर्बलता, स्वभाव जन्य दुर्बलता। प्रकृति अपना काम करती है। किसी अस्सी वर्ष के बुड्ढे को किसी सत्तर वर्ष की बुढिया पर रीझते किसी ने कहीं देखा। वहां प्रकृति अपना काम कर चुकी है।"

"जब यह बात स्वभाव-जन्य है तो स्वभाव से भी तो भागा नही जा सकता ?"

"स्वभाव पर बुद्धि से शासन किया जा सकता है। यह स्वभाव-जन्य तो है पर यह भी नही कहा जा सकता कि ऐसा व्यक्ति आज तक हुआ ही नही। स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द, रामतीर्थ आजन्म ब्रह्मचारी रहे।"

"यह बात तो ठीक है पर पहिले तो पुरुष का नारी की ओर ही आकर्षण होता

है फिर बाद में हो सकता है कि भावनायें उद्बुद्ध होकर ईश्वर की ओर उन्मुख हो जायें ! तुलसीदास और सूरदास इसी प्रकार भक्त हुये थे।"

"हमारे यहाँ आवागमन का सिद्धान्त है। मैं तो उसे मानती हूँ। उसके अनुसार प्राणी कुछ संस्कार ले कर आता है। उन्हें भोग लेने पर वह मुड़ सकता है। किन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनमें जन्म से ही संसार की ओर उन्मुख करने वाले संस्कार नहीं होते। उन लोगों के लिये रास्ता साफ होता है। उन्हें अपने अन्तर के साथ संघर्ष नहीं करना पड़ता। तुलसीदास ने गार्हस्थ्य सुख का उपभोग किया। फिर एक छोटी सी बात से बदल गये। फिर उनकी वही पत्नी जिसे इतना प्रेम करते थे उन्हें मिली तो कहने लगे मैं तो पहचानता ही नहीं। तब तक संसार की ओर घसीटने वाले संस्कार समाप्त हो चुके थे।"

'और स्वामी रामतीर्थ ?"

'उनकी जब पत्नी आयी तो उन्होंने तो कह दिया कि तुम माता हो, अबा हो। एक पुरुष जब नारी को शक्ति का रूप मानता है, जननी के रूप में देखता है तो संसार की स्त्रियों में से वह एक स्त्री को किस प्रकार अलग करके देख सकता है। रामतीर्थ में वे संस्कार जन्म से थे ही नहीं। कुछ व्यक्ति जिनमें सांसारिक संस्कार होते हैं, पर फिर भी ज्ञान के बल से वे उनसे ऊपर उठना चाहते हैं उन्हें मन के साथ संघर्ष करना पड़ता है। मेरा तो यह सौभाग्य ही था कि मुझे मन के साथ आन्तरिक संघर्ष नहीं करना पड़ा, जन्म से ही मेरे लिये रास्ता साफ था।"

"पर बाह्य संघर्ष तो करना पड़ा ही होगा ?"

"बाह्य संघर्ष क्या ? लोगों ने यही कहा यह लड़की कैसी है समाज की अवहेलना करती है। कह दिया कि भाई, हम ऐसे ही हैं।"

"यह बात ठीक है, पर यह दुनिया इतने से ही नहीं मानती। जो इससे दूर जाना चाहता है उसे चारों ओर से घेरती है और खींच कर अपनी परिधि में ही ले आती है।"

"जब तक अपने मन की तनिक भी सहमति न हो तब तक मन के विरुद्ध कोई भी कुछ नहीं कर सकता।"

"क्यों ? शरीर पर बलपूर्वक भी तो अधिकार किया जा सकता है ?"

"यदि चेतन अचेतन में मन का जरा भी झुकाव नहीं, तो शरीर पर अधिकार पाने से पहले ही शरीर निर्जीव हो जायेगा।"

'हाँ, बिल्कुल ठीक है। शरीर पर अधिकार नहीं किया जा सकता, शव पर अधिकार किया जा सकता है।" मैंने कहा और फिर दूसरी बात मन में उठी। मैंने पूछा, "मान लिया कि एक व्यक्ति संसार से ऊपर उठ गया, पर वह रहता है संसार

मे ही। ससार के सभी व्यक्तियो मे उठना बैठना है, मिलता-जुलता है। उनकी सासारिक बातें सुनता है तो उसका मन ससार की ओर लौट सकता है। क्या कुछ क्षण भी ऐसे न आते होगे कि सासारिक सुखो पर न सोचता होगा ?"

"सांसारिक सुखो की ओर खिचना तो मनुष्य की प्रवृत्ति है। जब एक व्यक्ति का मन चेतनता के ऊँचे स्तर पर स्थिर हो गया तो फिर यह प्रवृत्ति जड हो जाती है। फिर ससार का वातावरण उस पर कोई रेखा नही छोड़ता। एक दार्शनिक है। वह अपनी पुस्तक के अध्ययन म लगा है। कमरे मे कौन आया कौन गया इस बीच मे उसने किसको क्या जवाब दिया यह उसे कुछ याद नही रहता। कला मे भी ऐसी ही तन्मयता रहती है। रहस्यवादी की भी ऐसी ही स्थिति है। राजनीतिज्ञ की भी ऐसी ही। राजनीति ही उसके भगवान हैं। सुभाषचन्द्र बोस थे। उनके पास क्या नही था ? स्वय सुन्दर थे, बीस जगह आते जाते थे, घूमते फिरते थे, लडकियों के बीच, स्त्रियो के बीच रह कर काम करना पडता था, किन्तु उनके चरित्र पर कोई अगुली नहीं उठा सकता।"

"यह तो मन भर जाने की बात है, किसी भी वस्तु से जब मन और प्राण पूर्णतया भर गये, तो फिर दूसरी चीजो को स्थान नही मिलता।" मैंने कहा।

"हाँ, यही बात है। जब प्राण भर गये तो फिर दूसरी चीजो के लिये स्थान ही कहाँ ? भरे हुये पात्र मे फिर और कुछ नही समा सकता।" फिर क्षण भर रुकी और बोली, "एक बार जब मैं एक सीलोन के ब्रह्मचारी जी से प्रव्रज्या ले लेना चाहती थी और उनसे मिलने गई तो वे एक ताड का बडा पखा मुँह पर लगा कर बात करने लगे। तभी मैंने जान लिया कि, ये क्या प्रव्रज्या देंगे, इनके मन मे तो अभी चोर है।"

"इसका अर्थ यही है कि उनको स्वय ही अपने ऊपर विश्वास नही था।" मैंने कहा। बात को आगे बढाते हुये मैंने फिर कहा, "अच्छा मीरा के विषय मे आप की क्या सम्मति है ? मैं समझता हूं मीरा ने तो गार्हस्थ्य सुख का उपभोग किया था।"

"मीरा के विषय मे अभी पूर्णतया खोज नही हुई। पर मेरा तो विश्वास है कि इसमे कुछ न कुछ बात और थी। यदि वह विधवा होती तो कही तो एकाध विषाद की रेखा आती। भारतीय विधवा का जीवन कितना कष्टो से भरा है और उन दिनो तो और भी दुखपूर्ण होगा।"

"पर यदि उन्होंने गार्हस्थ्य सुख का उपभोग न किया होता तो उनकी सगुणोपासना न होती, निर्गुणोपासना होती ?"

"नही यह बात नही। उसके जीवन मे ठीक अवस्था पर प्रेम भावना का विकास हुआ होगा, पर अपनी उन भावनाओ को उसने सुन्दर पुरुष श्रीकृष्ण पर आधारित कर दिया।"

"पर अपने पति के साथ तो वे रही ही। उनका मन उच्च स्तर पर रहा हो, पर हो सकता है विवशता वश अपने पति के साथ पशुता के स्तर पर यन्त्र की तरह ही साथ देना पड़ा हो। ऐसी दशा मे विधवा होने पर विषाद की रेखा का न आना सम्भव है, क्योकि मन तो उसका वहाँ का वही था, पति को केवल शरीर ही दिया होगा।"

"मन और शरीर इस तरह बाँटे नही जा सकते। यदि मीरा पर और खोज हुई तो कुछ रहस्य निकलेगा अवश्य।" कुछ क्षणो के लिये मैं चुप रहा। फिर बोलीं, "भारतीय नारी के लिए तो जब उसने गार्हस्थ्य धर्म स्वीकार कर लिया, पति ही सब कुछ है। पति के मरने पर जिस शव को कोई हाथ नही लगाता, उसे गोदी मे लेकर चिता मे साथ जल जाती थी। पत्नी के मरने पर किसी पुरुष को हमने मरते नही देखा।"

"क्यो मर तो जाते है। बहुत पुरुष अपनी प्रेमिकाओ के पीछे मर जाते हैं।" मैंने अपनी मुस्कराहट को जरा ओठो मे दबा कर कहा।

"वह बात बिल्कुल दूसरी है। अप्राप्त के लिए तो बहुत से मर जाते हैं, पर प्राप्त के लिए कौन मरता है। यहाँ एक मे अप्राप्ति है और दूसरे मे प्राप्ति।"

"प्राप्ति के बाद तो समाप्ति ही आती है।"

"पर स्त्री प्राप्ति के बाद भी सब सम्बन्ध ठीक रखती है। वहाँ समाप्ति नही आती। एक पदार्थ है वह दूसरे पदार्थ की ओर आकर्षित होता है। यदि उनमे बराबर आकर्षण है तो दोनो अपने स्थान पर स्थिर रहेंगे। यदि नही तो कम आकर्षण वाला पदार्थ अधिक वाले की ओर बढता है। उसे प्राप्त करने पर वही पदार्थ पीछे लौट जाता है। इसी प्रकार पुरुष स्त्री की ओर आकर्षित होता है, पर प्राप्ति के बाद पीछे ही लौटता है। नारी अपने सब सम्बन्ध ठीक रखती है। वह किसी की पत्नी है, किसी की माता है, किसी की बहिन है। सबको पृथ्वी की तरह अपनी ओर खीचे रखती है।"

"इसमे तो कुछ सदेह नहीं। यह तो वास्तव मे नारी की अद्भुत शक्ति है। वह अपने सब सम्बन्ध नियन्त्रित रखती है और सबको ठीक स्नेह का वितरण करती है" मैंने कहा।

"सब ठीक है भाई, पर अब तक तो उसकी स्थिति समाज मे बडी खराब रही है।"

"यह क्या कदाचित् इसीलिये कि नीति नियमो का निर्माण करने वाले पुरुष रहे।"

"यह बात भी रही होगी, पर पुरुष अर्थ का स्वामी है। अर्थ एक शक्ति है, फिर वह अपनी शक्ति का लाभ उठावेगा ही। स्त्री तो घर की स्वामिनी है। यदि स्त्रियो

ने नीति नियम बनाए होते तो दूसरी ओर इतने ही कठोर बन्धन हो सकते थे। अब भी जहाँ स्त्रियाँ बाहर का काम करती हैं, पुरुष सब घर का काम करते हैं—जैसे बर्मा मे।"

"जिसके पास भी शक्ति होगी वह तो उसका प्रयोग करेगा ही। शक्ति का मूल्य ही उसके प्रयोग मे है" मैंने कहा।

'कोई किसी पर शक्ति का प्रयोग न कर सके, तभी शान्ति रह सकती है। अब भारतवर्ष स्वतन्त्र हो रहा है। देखो, इसमें कैसे नीति-नियम बनते हैं।"

"अगस्त मे 14 से 19 तक हमारी छुट्टी है। उन दिनो स्वतन्त्रता की खुशियाँ मनाई जायेंगी।"

"स्वतन्त्रता मिली तो, पर भारतवर्ष को इसका बड़ा भारी मूल्य देना पडा है। भारतवर्ष के टुकडे हो गए। यह कोई कम मूल्य नही?"

"इसमे कोई सदेह नही। आपको याद होगा गाधी जी ने कहा था कि 'पहले मेरे टुकडे होगे और फिर भारतवर्ष के।' वास्तव मे गाधी जी को तो इससे इतना ही दुःख है जैसे उनके अपने टुकडे हो गए हो।"

"तभी तो बापू बहुत खिन्न हो गए हैं। इससे उन्हे बहुत पीडा हुई है।"

"मुझे तो ऐसा लगता है कि अब महात्मा गाधी अपनी पूरी शक्ति इसी मे लगा देंगे कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान फिर एक हो जायें।"

"पर अब ऐसा होगा नही। विषमता इतनी बढ गई है कि दूर ही दूर होते जायेंगे। भाषा का ही प्रश्न है। बापू अब भी हिन्दुस्तानी के लिए कहते है। वे अब भी कहते हैं कि मैं हिन्दू मुसलमान दोनो का प्रतिनिधि हूँ, जबकि दूसरा व्यक्ति यह बात नही मानता।"

"बापू यह बात तो कभी भी नही कह सकते कि मैं हिन्दुओ का प्रतिनिधि हूँ। उनकी तो जीवन भर की साधना ही इस पर आधारित है। अब इन अन्तिम दिनो मे वे उसे किस प्रकार छोड सकते हैं?"

"साधना तो व्यक्ति की अपनी है। जैसे वे मानव मात्र के प्रतिनिधि है। पर जहाँ तक उनकी प्रचारात्मक बात है उसे बदल देना चाहिए।"

"हाँ, यह तो ठीक है। यदि कांग्रेस की वही पुरानी Policy of Appeasement चलती रही, तो बहुत सम्भव है भविष्य मे इस हिन्दुस्तान में से भी एक-दूसरा पाकिस्तान खडा हो।"

"हो सकता है" इतना कहकर शान्त हो गई।

"कांग्रेस ने कोई भी रचनात्मक कार्यक्रम सामने नहीं रक्खा और इस युग मे तो जो युग के साथ कदम नहीं रख सकेगी उस गली सडी चीज को जाना ही होगा?" मैंने कहा।

अब तक दस बज चुके थे। घर चलने की बात मन मे उठी। यह तो राज-नीतिक विषय था जिसे कितना ही बढाया जा सकता है। उस प्रसग को वही छोड कुछ क्षणो के बाद मैं बोला—

"पत जी से मिलने जाने की बात सोच रहा था, पर पाडे जी की इस बात से कि बच्चन जी के प्रतिबन्धो से मिलना कठिन है, मन बुझ गया है।"

"नही किसी की बात पर इतनी जल्दी विश्वास नही करने, तुम जाना। यदि तुम्हारे साथ भी ऐसा ही व्यवहार हो तो ठीक है। यह तो हो सकता है कि सुबह से शाम तक आदमी उन्हे परेशान करते हो। वे कमजोर है। उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखकर 'बच्चन' जी मना कर देते होगे।"

'नही, मैं एक दम तो किसी की बात पर विश्वास करता नही, क्योकि मैंने देखा है कि बहुत से मनुष्यो के विषय मे जैसा सुना था, उनके Close Contact मे आने पर उनको उसके बिल्कुल विपरीत पाया।"

"हाँ, मैं बीमार होती हूँ तो बहुतो को यहाँ से लौट जाना पडता है।"

'वे ही व्यक्ति बाहर जाकर कहते है, उन्हे बडा गर्व है।'

"पता नही, उन्हे इस प्रकार लौट जाने पर बुरा क्यो लगना चाहिये। मनुष्य को तभी बुरा लगता है जब उसके स्वार्थ को हानि पहुँचती है। पर बहुत से व्यक्तियों को तो इसलिए दुःख होता है कि मैं बीमार हूँ। इसलिए नही कि उन्हे बिना मिले लौटना पड रहा है।"

'यह तो आदमी आदमी की अपनी-अपनी बात है। जो व्यक्ति किसी के यहाँ अपने स्वार्थ को लकर जाता है, उसका उठना, बैठना, बोलना, चलना, बातचीत करना एक-दूसरे ही प्रकार का होता है। उसकी आँखो से उसके मन की बात छिप नही पाती।" मैंने कहा। मन तो यही कह रहा था ऐसे ही बैठे-बैठे बाते करता रहूँ, पर उठना तो था ही। आज भी लगभग मै ढाई घण्टे बैठा, पर बाद का आधा घटा सचमुच कभी भी भुलाया नही जा सकता। जिन बातो को कहने मे हमारे चेहरे पर सकोच की रेखा खिच जाती है उन बातो को वे कितने सहज भाव से कह जाती है, इस पर मुझे आश्चर्य हुआ। इस समय मुझे विक्टर ह्यूगो के उपन्यास 'ला मिजरे-बिल' की ये पक्तियाँ याद आ रही हैं—

"She was much more a spirit than a woman Her person seemed formed of shadow, hardly body enough to say she had sex, a little substance containing light, a pretext for a soul to remain on earth"

और ये पक्तियाँ महादेवी जी पर कितनी ठीक उतरती है।

मैंने आज्ञा ली। बरामदे मे आया। सडक पर तागे वालो की दौड हो रही थी। आवाज वहाँ भी चली आ रही थी। मैंने कहा—

"आज तो सडक पर तागो की दौड हो रही है?"

"हाँ, दौडा रहे होगे।"

"ये भी एक जुआ खेलने का ढग है।"

"हाँ, बेचारे घोडो के मत्थे जुआ खेला जाता है। इसमे घोडे मर भी जाते होगे।"

"कभी-कभी अवश्य मर जाते है।"

"मरते नही, तब भी कष्ट तो सभी को होता है।' करुणा भरे स्वर मे महादेवी जी ने कहा। मैने हाथ जोड कर प्रणाम किया और विदा ली।

ग्यारह बजे घर पहुँच कर मैं सोचता-सोचता ही सो गया।

मीरा ने वैवाहिक जीवन का उपभोग किया था या नही ? इस सम्बन्ध मे आप की क्या सम्मति है, लिखियेगा।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

34

30 ए, वेली रोड

प्रयाग

1/8/47

आदरणीय 'मानव' जी,

29/7 का पत्र मिला। दो लिफाफे आज सुबह डाल चुका हूँ। वे बेरग होकर मिलेंगे।

वे कलाकार महिला तो बडी ही मौन रहने वाली महिला थी। उन्होने पूरे रास्ते भर किसी से भी बात नही की। कभी किसी से अपनी चीज इधर से उधर रख देने या ला देने के सिवाय वे नहीं बोली। आपके कथनानुसार शायद उनसे फिर कभी कही भेंट हो। आपके अधिकतर अनुमान सत्य ही उतरते है।

सचमुच बरसात की ये सुन्दर सध्यायें मिलकर चाय पीने के लिये हैं, पर उपयुक्त साथी के अभाव मे इनका सौंदर्य कोई उत्फुल्लता नही लाता, मन को अवसाद मे डुबा जाता है। पर फिर भी सुन्दरता तो सुन्दरता ही है। आपने ऐसा क्यो लिखा कि 'उस सुन्दरता का कोई अश आपके लिये नही ?'

'मैं थक गई हूँ,' यदि यह महादेवी जी की 'क्षणिक वृत्ति' ही है, तो इससे बढे सौभाग्य की क्या बात हो सकती है। जहाँ तक साहित्यिक जीवन की बात है मैथिलीशरण, निराला और पत के विषय मे तो कुछ नही कहा जा सकता, पर महादेवी जी के विषय मे मेरा अपना विश्वास है कि वे चुपचुप कुछ न कुछ अवश्य कर रही होंगी।

इतनी बात अवश्य है कि ये चारो व्यक्ति जैसा लिख चुके है, उससे अच्छा अब नहीं दे सकते। यूरोप के कलाकार 50 साल की उम्र के बाद अच्छा लिखते हैं और भारत के इससे पहले। यहां का कलाकार अपनी कीर्ति और यश का तुमल नाद अपने कानो से सुन कर प्रोत्साहित नही होता बल्कि उससे उसकी गति शिथिल हो जाती है। शायद वह सोचने लगता है कि मुझे जहाँ पहुँचना था वहाँ पहुँच गया, और बस।

अब एक धारा दूसरी धारा मे मिल रही है, इसीलिए ऐसा है। इसम यदि कोई नवीन तारा उगेगा भी तो कुछ समय तक दिखाई नही देगा। कम से कम साहित्य मे तो यह अव्यवस्था का काल है।

मेरा आशय निराला और शरत् के बाह्य व्यक्तित्व से था। 'लेखक को उसकी रचना मे ही ढूंढना ठीक है', यह बात आपकी बिल्कुल ठीक है। लेखक के आतरिक व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति उसकी कलाकृति मे ही ठीक से होती है।

साहित्य का प्रभाव मनुष्यो की मनोवृत्ति पर पडता है। शक्तिशाली साहित्यिक ससार भर के मनुष्यो की मनोवृत्ति बदलते आए हैं और बदलेंगे। उस मनोवृत्ति की नाप तौल करने वाले राजनीतिक है। उसी के अनुसार जगत के विधान का निर्माण करते हैं। यही कारण है कि ससार के जितने विधान है जितनी क्रातियाँ है, उनका आधार साहित्यिको ने तैयार किया है। अब भी ऐसा ही होगा। पर साहित्यिक जो देता है, उसका प्रभाव तात्कालिक नही होता। वह किसी भी देश की सभ्यता और सस्कृति को कहाँ से कहाँ लाकर पटक देता है ? पर प्रगति इतनी धीमी होती है कि गति आँखो से नही पकडी जा सकती।

वर्षा की उस अन्धेरी रात मे अकेले देर से लौटने पर आपने ऐसा क्यो सोचा कि सच 'विरक्त प्राणी बडे कठोर होते हैं। वे किसी के नही होते।' महादेवी जी का उस ओर ध्यान ही नही गया। वैसे वे बडी कोमल-हृदया है। पर उस दिन से इतनी बात अवश्य है कि यदि 'श्यामा' कहानी का स्थान 'महामाया' से ऊँचा नही तो नीचा भी नही है, ऐसा मुझे लगने लगा है। जिसने कभी एसी स्थिति देखी नही, वह 'निराधार' की 'श्यामा' की स्थिति का अनुमान नही लगा सकता।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

35

30 ए, वेली रोड
इलाहाबाद
7/8/47

आदरणीय 'मानव' जी,

आपके 4/8 और 5/8 के पत्र क्रमश 5/8 और 6/8 की सध्या को मिले।

'महादेवी जी असाधारण व्यक्तियों को दृष्टि में रख कर बात करती हैं' आपकी यह बात ठीक है, पर असाधारण व्यक्तियों के विषय में जो बात सत्य है, वह एक शाश्वत नियम नहीं बन सकती। सभी सिद्धान्त ऐसे सत्यों पर आधारित होते हैं जिनका सम्बन्ध एक साधारण मानव के जीवन से होता है। इन असाधारण व्यक्तियों के सत्य सत्य अवश्य हैं पर मनुष्य जीवन पर शासन करने वाले नियमों के अपवाद स्वरूप हैं।

कभी-कभी जीवन में ऐसे ही दिन आ जाते हैं कि कुछ भी अच्छा नहीं लगता। पर यह स्थिति थोड़े ही दिनों तक चलती है। पर-कटा पक्षी जब अपनी इस विवशता की स्थिति से ऊब जाता है तो वैसे ही पंख फड़फड़ाने लगता है। उसकी इस क्रिया से नवीन पंख जल्दी ही निकलते हैं। फिर वह उड़ता है—दूनी शक्ति से और दूनी गति से।

आप मन से तो बहुत दिनों से बीमार हैं। अब शरीर से क्यों बीमार होना चाहते हैं? संघर्ष मार्ग में प्रवृत्त होने के दिन तो अब आये हैं। स्वतन्त्र भारत में एक विजयोल्लास लेकर जीवन आरम्भ करना होगा। 15 अगस्त से आपका एक नवीन जीवन आरम्भ होना चाहिए।

3/8 को मैं श्री सुमित्रानन्दन पंत से मिलने गया था। जिस समय मैं 'बच्चन' जी के यहाँ पहुँचा, उस समय 5 बजने में दस पन्द्रह मिनट थे। पंत जी बाहर आये। नमस्कार हुई। फिर मैं अन्दर ड्राइंग रूम में आ गया। अन्दर आने पर पंत जी बोले 'Autograph' लेना है? मैंने कहा "नहीं।" फिर कुछ क्षण रुके और बड़ी ही कोमलता तथा विवशता से बोले, "मैं लेट हो गया हूँ। मुझे पाँच बजे एक एक जगह जाना है।" मैंने मुस्करा कर कहा "अच्छा, चले जाईयेगा। अभी जा रहे हैं?"

"हाँ, पाँच बजने में दस मिनट हैं।"

मैंने उन्हें अपनी "ज्योत्स्ना" की एक प्रति दी। उसे उन्होंने एक क्षण देखा, फिर अपने कमरे में जाकर उसे रख आए। बोले "अच्छा, मैं जा रहा हूँ, क्षमा कर दीजियेगा, फिर कभी भी आ जाना, हाँ, ठीक है न?" बड़ी कोमलता से कहा। मैंने उसी कोमलता से उत्तर दिया, "ठीक है, आप जाइए। फिर कभी आऊंगा।"

"हाँ, आना, जरूर आना।" कह कर चिक उठा कर बाहर चले गये।

आज पंत जी के जीवन में पहली बार दर्शन किए। अब वे स्वस्थ्य हैं। उनके फोटो से उनका शरीर कुछ भारी लगा। बाल उनके अब भी वैसे ही सुन्दर हैं, जैसे पहले थे, पर अब उनकी लटें श्याम न रह कर गंगा-जमुनी हो गई हैं। फिर भी काले और सफेद बालों में अनुपात लगभग 4 : 1 का होगा। एक पैंट और पूरी बाहों की कमीज पहने थे। पीछे से देखने पर अब भी वे ऐसे लगते थे जैसे कोई मेम हो। उनके चेहरे पर Smoothness अब नहीं रही, कदाचित् पहले रही होगी। जैसी

कोमलता उनके काव्य में है, उठने बैठने, चलने फिरने, बातचीत करने मे भी वे उसे छोड नहीं पाते। केवल पत को छोड़कर यह बात किसी मे नहीं मिली। वे भीतर बाहर से एक से हैं।

मैं बैठा रहा। 'बच्चन' जी से मिलना था। 'बच्चन' जी का मैं एक सप्ताह के लिए विद्यार्थी अवश्य रहा था, लेकिन साहित्यिक परिचय उनसे बिल्कुल नहीं था। चालीस मिनट प्रतीक्षा करने पर वे अपने कमरे से ड्राइंग रूम में आए। 'ज्योत्स्ना' की प्रति 'बच्चन जी को भेंट की। देखकर कहने लगे, "ज्योत्सना नाम का नाटको का एक सग्रह पन्त जी का भी था ?"

मैंने कहा, "हाँ, था, पर नाम मिल गया है। यह गीतों का सग्रह है।" मैंने पूछा—

"आपकी 'मिलन यामिनी' कब निकल रही है ?"

बोले, "लगभग समाप्त हो चुकी, अब देखिए कब निकलती है पर जल्दी ही निकलेगी।" फिर बोले, "अच्छा, मैं इसे (ज्योत्स्न को) देख लूँगा। फिर किसी दिन बातचीत होगी। पन्त जी को भी दिखा दूँगा।"

'उनको मैंने दे दी है।"

"दो प्रतियो की क्या आवश्यकता थी! एक ही ठीक थी। वे अपने साथ तो कुछ भी नही ले जायेंगे। सब यहीं छोड़ जायेंगे।"

"वे ले जायें चाहे छोड़ जायें, पर मैं ता अपनी चीज उन्हें पहुँचा चुका।" कुछ क्षण रुक कर मैंने कहा, "आप 'मिलन-यामिनी' के गीत सुनाइए।" बोले, "इस समय मैं कुछ काम कर रहा हूँ। फिर जब आप आयेंगे, तो सुनाऊँगा।"

"आप आजकल बहुत व्यस्त रहते हैं" मैंने कहा।

"हाँ, काफी काम करना पडता है। कुछ लिखता रहता हूँ, पढता रहता हूँ।" "फिर शाम को Parade मे जाना" मैंने एक बात जोडी। कहा, 'जब मैं यहाँ आया ही आया था, तो मेरे मन में यही एक प्रश्न उठा था कि Parade मे आपका मन कैसे रम गया ?" इस पर बड़े गम्भीर होकर बोले, 'मेरा मन कई तरह का है।" मैंने विदा ली। मै समझता हूँ मनुष्य का मन कई तरह का नही होता। मन तो एक ही तरह का हाता है, पर परिस्थितियो के अनुसार नए-नए लिबास पहन लेता है। यदि बच्चन जी U. T C को Parade कराते है, Military discipline मे रस लेते हैं तो यह उनका स्वभाव नहीं। स्वभाव तो उनका कुछ और है, जिसका आभास उनकी पुस्तकों मे मिल सकता है। सच बात तो यह है कि विवशता के आगे नतशीश होकर जब मनुष्य घुटने टेक देता है तो कहने लगता है यही जीवन है।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
18/8/47

आदरणीय 'मानव' जी,

परसों आपके पत्र की प्रतीक्षा की थी। कल तो मन घबरा सा गया। इन दिनों स्वभावत: व्यस्त रहे होंगे।

15/8 की सन्ध्या को मैं डाक्टर साहब रमेशचन्द्र वर्मा के साथ चौक गया था। जैसे ही रात्रि का अन्धकार झुका कि चौक की प्रमुख सड़क लाखों बल्बों से जगमगा उठी। स्त्री, बच्चे, युवा, वृद्ध सभी उमड़ पड़े थे। जनता में इतनी प्रसन्नता और उत्साह मैंने जीवन में कभी नहीं देखे थे। सचमुच इससे पहले शायद ही इलाहाबाद नगर कभी ऐसा सजा हो।

साढ़े आठ बजे हम घर की ओर लौट पड़े। भीड़ को चीरते हुये बढ़ रहे थे कि इतने में तीन चार सौ आदमियों की भीड़ का रेला आया। इनके शरीर नंगे थे। सब ने केवल मैली धोतियों के टुकड़े पहन रखे थे। उनके चेहरों पर भयकरता थी, भय था, और साथ ही प्रसन्नता भी। वे महात्मा गाँधी की जय बोल रहे थे और जिधर उन्हें प्रकाश दीख रहा था, उधर ही बढ़े जा रहे थे, घुसे जा रहे थे भीड़ चीरते हुए-जैसे उनका कोई उद्देश्य न हो। ये जेल से छूटे हुये कैदी थे। इन्हें जेल की अन्धकारपूर्ण चहारदीवारी में यहाँ जन-समुदाय और प्रकाश के समुद्र में छोड़ दिया गया था। इन्हें भय, निष्ठुरता और गुलामी के शासन में से यहाँ, रंग बिरंगे दृश्यों, संगीत और स्वातन्त्र्य के उल्लासमय वातावरण में छोड़ दिया गया था। मुझे डर लग रहा था कि कहीं उनमें से कुछ पागल न हो जायँ, पर अब सोचता हूँ कि उनमें से कोई भी पागल होगा नहीं, क्योंकि भावुकता का उनमें लेशमात्र भी शेष नहीं रह गया है।

उनमें से एक कैदी के गले में रुद्राक्ष के छोटे दानों की माला पड़ी थी, हाथ में एक लोटा था उसके सिर के और उसकी मूँछों के बाल पक गये थे। मैंने उसका भुजदंड पकड़ कर उसे रोक लिया। पूँछा, "भाई कितने साल की कैद थी ?"

"अट्ठाइस साल।" उत्तर मिला और वह आगे बढ़ गया।

एक दूसरे को पकड़ कर यही प्रश्न किया तो बोला, "आठ साल।"

शायद "आठ साल" ही सबसे कम थे। अधिक का नम्बर शायद आजन्म कारावास तक पहुँचा हुआ हो। इन्हें क्षमा कर दिया गया है। मेरा यह विश्वास बना रहे कि शायद अब इनमें से कोई भी कभी अपराध न करेगा।

तत्पश्चात् हम महादेवी जी के यहाँ आये। महिला विद्यापीठ की बाहरी दीवार पर नौकर दीये जला रहा था, पर अन्दर कुछ नहीं था। प्रतिदिन जैसा ही सब कुछ था। हम अन्दर बैठ गये। बातचीत करते रहे। अन्दर महादेवी जी किसी महिला से बातचीत कर रही थी। थोड़ी देर में लीला द्वार पर आयी। उसके हाथ मैंने अपने आने की सूचना अन्दर भिजवाई। पन्द्रह मिनट बाद उस महिला को विदा कर, महादेवी ड्राइंग रूम में आयी। प्रणाम कर हम लोग बैठ गये। बैठते बैठते बोली, "कहो भाई, क्या बात है?"

"सब ठीक है। आज तो इतनी प्रसन्नता है कि सहन करना कठिन हो रहा है" मैंने कहा।

"सहन करना कठिन हो रहा है?" महादेवी जी ने जरा हँसकर कहा और फिर गम्भीर हो गयी और बोली "कैसी प्रसन्नता है भाई?"

'यही, हम स्वतन्त्र जो हो गए।"

"भाई यह जैसी स्वतन्त्रता और जितना कुछ देकर मिली है वह तो आज से दस साल पहले भी मिल सकती थी। आज से भारतवर्ष के दो टुकड़े हो गए।"

"इसका तो महात्मा गाधी जी को भी बहुत दुःख है। आज सब जगह तो पेट भर-भर कर मिठाइयाँ खाई जा रही हैं और बापू जी आज Fast करेंगे। सचमुच आज गाधी जी को बहुत दुःख है।'

"हाँ, वास्तव में तो टुकड़े आज के दिन से ही हुए।'

"आज वे दिन भर प्रार्थना करेंगे।"

"आज उनके लिए तो ऐसा ही है जैसे उनके शरीर के टुकड़े हो गए हों, और फिर यह सब उत्सव अच्छा नहीं लगता। एक ओर तो ऐसे व्यक्ति हैं जिनका सब कुछ स्वाहा हो गया। उनके घर का कोई भी नहीं बचा। जब पजाब तथा बगाल के व्यक्ति यह सुनेंगे कि ऐसी खुशियाँ मनायी गई तो उन्हे कैसा लगेगा? मेरे यहाँ तो ऐसी विद्यार्थिनियाँ हैं। उनके दुःख के सामने हम यह उत्सव मनाते हुए कैसे लगेंगे?'

"पर ऐसा तो कभी भी नहीं हो सकता कि सभी प्रसन्न हों। यह तो रहता ही है कि कोई प्रसन्न है तो कोई दुःखी?"

'मेरी बात इसमे बिल्कुल दूसरी है। वैसे तो ससार मे लगा ही रहता है कि कोई सुखी है और कोई दुःखी है, पर यदि एक घर मे विवाह हो और पड़ोस मे किसी की मृत्यु हो गई हो तो विवाह के बाज गाजे कैसे लगेंगे? *दुःख सुख से अधिक* व्यापक होता है। सुख को दुःख के नीचे दब जाना पड़ता है। दुःख के सामने सुख जब अट्टहास करता हुआ निकलता है तो वह केवल उपहास मात्र है। इस प्रकार का सुख तो अशिष्टाचार है।' वे धारा-प्रवाह बोलती रही और मैं एकटक उनकी ओर

देखता रहा। उनके सिर के बाल सवरे हुए न थे, जैसे योंही हाथ से ऊपर को कर लिए हो, पर आज जो उन्होंने खद्दर की धोती पहन रखी थी उसकी कन्नी तिरगी थी। रग कुछ हलके थे। मैंने कहा,

"इस धूमधाम की बडी आवश्यकता थी। लोगो के दिलो मे गुनामी ने इतना गहरा प्रवेश पा लिया है कि उसको निकाल भगाने के लिए जोर से ढोल बजाने की आवश्यकता थी ही।"

"इससे गरीब आदमी को क्या फायदा हुआ ? हजारो रुपये इसमें फूंक दिए जायेंगे. पर गरीब आदमी वही भूखा का भूखा और नगा का नगा ही रहेगा। आज ही मैंने एक गाँव के आदमी से पूछा, 'भाई आज यह क्या हो रहा है !' बोला, 'जवाहर लाल को गद्दी हो रही है।' जब तक उसकी दैनिक आवश्यकतायें पूरी नही हो जातीं, तब तक उसके लिए ऐसी स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नही। शिक्षा के लिए तथा और दूसरी बातो के लिए तो कह दिया जाता है कि यह Poor Man's Budget है पर अपने आप अर्थ का मोह बिल्कुल नही छोडा जाता। गवर्नर 6000 रु० महीने वेतन लेगा और वह भी Income Tax स exempted, फिर इसम और पहल मे क्या अन्तर रह गया ? बडे-बडे Ministers, M L A's बडी-बडी बिल्डिगें खरीद रहे हैं, प्लॉट्स खरीद रह हैं, एक साल म ही उनके पास यह इतना रुपया कहाँ स आ गया ? यह मैं मानती हूँ कि इन लोगो ने त्याग किया है पर यदि उस त्याग की कीमत ले ली, तो फिर ऐसे त्याग का क्या मूल्य रह गया ?'

'कुछ भी नही,' मैंने कहा।

"आज आप किसी minister से मिलने जाइए, तो मिलने मे वे ही सैकडो बाधायें जो पहले थी तुम्हारा रास्ता रोक लेंगी और तुम अपनी आवाज वहाँ तक नही पहुँचा सकते।'

'बात यह है कि हाथ मे शक्ति आने पर ऐसा ही हो जाता है। पर यह धूम-धाम इस समय तो आवश्यक थी ही।'

"पर यह है तो आडम्बर ही, क्योकि वास्तविक परिवर्तन नही हुआ। यदि कोई परिवर्तन हुआ भी है तो उसका अनुभव चोटी के लोगो ने किया होगा, नीचे के आदमी ने तो कुछ नही।"

"माना कि यह आडम्बर है पर कभी-कभी आडम्बर का भी तो मूल्य होता है।"

"ऐसे आडम्बर स कोई स्थायी लाभ कुछ नही होता।"

'स्थाई लाभ तो तभी होगा जब नीचे के लोगो का Standard उठाया जाएगा और ऊपर के लोगो को गिराया जाएगा।"

"पर काग्रेस से यह कभी नही हो सकता। काग्रेस बिरलाओ और डालमियाओ का विरोध नही कर सकती।"

"यदि नही कर सकती तो फिर उसका काम अब समाप्त हो गया समझिए' मैंने कहा।

"देखो आगे क्या होता है, पर अब तो टुकडे-टुकडे हो ही गए। इसमे सिक्खो को बडी हानि उठानी पडी है। बेचारे दो विभागो मे बँट गए। 8 प्रतिशत एक ओर और 6 प्रतिशत एक ओर।

"पर फिर भी गाधी जी के लिए दुखी होने का कोई कारण नही। एक बार गाधी जी ने किसी को पत्र लिखा था कि यदि एक Community का बडा भाग अलग रहना चाहता है तो उसे कौन रोक सकता है। मुसलमान अलग होना चाहते थे वे अलग हो गए।"

"पर ऐसा है कहाँ? फ्राटियर मे ही उन्हे 50 प्रतिशत से कुछ अधिक Votes तब मिले हैं जब मरे हुए दादा परदादा वोट देने आ गए और एक एक आदमी ने ग्यारह ग्यारह बार वोट दिए। और वहाँ घोर झूठा प्रचार करने के बाद इतना हा पाया।"

"यह तो बात ठीक है।" मैं इतना कहकर चुप हो गया। डाक्टर साहब सामने वाले सोफे पर चुपचाप बैठे थे। अब वे बोले—

"पर यह तो मानना ही पडेगा कि फ्राटियर को छोडकर और सब जगह के मुसलमानो की majority लीग के साथ थी।"

'यह माना लीग के साथ थी पर काग्रेस को लीग के सामने नही झुकना पडा, बल्कि थोडे से लोगो की बर्बरता के आगे झुकना पडा है।'

"यह बात ठीक है, पर उसके पीछे शक्ति majority की थी। जनता की शक्ति के सामने झुकना पडता है। यदि यह बात न होती तो हम तो तब जानते जब आसाम मे लीग अपना Direct Action सफल करके दिखलाती" डाक्टर साहब ने कहा। फिर मैं बोल पडा, "नही एक बात और है। भारतवर्ष के Division की बात यह लोग न मानते, तो स्वतन्त्रता की बात अभी दस साल आगे पहुँच जाती है।" इस पर महादेवी जी ने कहा—

"राजनीति शतरज का एक खेल है। एक चाल चूक गये कि फिर वह चाल कभी नहीं आती।"

"पर अब टुकडे हो जाने से इतना तो लाभ हुआ कि हिन्दुओं की उन्नति मे मुसलमान बाधक नही हो सकते और मुसलमानो की उन्नति मे हिन्दू बाधक नही हो सकते।"

"अब देखते रहो। लाभ कुछ नही हुआ फ्राटियर पर Defence के लिये हिन्दुस्तान को फौज रखनी पडेगी। पाकिस्तान कह सकता है कि हमे तो कोई डर नही

हम तो Defence के लिये फौज नही रखते, क्योकि उन्हे डर है मों नही। कोई मुसलमान देश किसी मुसलमान देश पर हमला नही कर सकता और यदि किसी मुसलमान देश ने कभी हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया तो पाकिस्तान रास्ता देगा।"

"अभी तो सम्भव नही।' डाक्टर साहब ने कहा।

"हाँ, अभी तो दस पन्द्रह वर्ष तक ऐसी सम्भावना नही कि कोई मुसलमान देश आक्रमण कर सके" महादेवी जी ने कहा।

"आज से गांधी जी की नवीन साधना आरम्भ होती है। अब वह अपना पूरा जीवन हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के एक करने मे ही लगा देंगे और हिन्दुस्तान एक हो कर रहेगा" मैने कहा।

"यह आप लोगों का सपना ही सपना है। अब कभी एक न होगा। अब तो दोनों का बिल्कुल विभिन्न धाराओ मे विकास होगा और अन्तर बढता ही जायेगा। एक होने के लिये कोई एक आधार तो होना चाहिये ?"

"धर्म के आधार पर तो वे कभी न तो एक हो सकते थे और न होंगे, अब आर्थिक आधार एक पर हो सकते है।"

"अर्थ के आधार पर भी नही हो सकते, क्योकि आर्थिक समस्या भी जो हमारे यहाँ की है वह उनके यहाँ की नही। उनके यहाँ capitalists नही है हमारे यहाँ हैं। अभी मैंने रामगढ मे देखा पठान मजदूर दिन मे वहाँ सडक बनाने का काम करते थे और खाने के समय वहाँ अमीर मुसलमान रहते हैं उनके यहाँ खाना खाते थे। एक ही दस्तरखान पर अमीर मुसलमान और मजदूर खाना खा सकते है, इसलिए उनका सामाजिक ढांचा ऐसा है कि गरीब अमीर का जो अन्तर है वह तीव्र रूप में सामने नही आता।"

'पहली चेतना हमेशा धार्मिक होती है। यूरोप में भी पहली चेतना धार्मिक थी। भारतवर्ष मे भी हिन्दुओ मे पहली चेतना धार्मिक थी। विवेकानन्द हुये, दयानन्द हुए। इसी प्रकार धार्मिक चेतना के बाद फिर हिन्दुओ में राष्ट्रीय चेतना आई। मुसलमान हिन्दुओं से एक स्टेज पर backward रहे हैं। जब हिन्दुओ मे राष्ट्रीय चेतना थी, उस समय मुसलमानो मे धार्मिक चेतना थी और जिन्ना ने उसी को Exploit किया। अब पाकिस्तान मिल जाने पर जिन्ना ने अपने पहले भाषण मे ही कहा है कि "Hindus should forget that they are Hindus and Muslims should forget that they are Muslims and both should be loyal to the Pakistan Government." जब उनमें राष्ट्रीय चेतना जागेगी तब बहुत सम्भव है पाकिस्तान और हिन्दुस्तान एक हो जायें।" डाक्टर साहब ने कहा।

"हाँ, Pak Assembly में जिन्ना का पहला भाषण तो सचमुच ऐसा है कि लगता है जैसे जिन्ना के मुख से गांधी जी बोल रहे हैं।" मैंने कहा। इसके बाद ही

डाक्टर साहब बोल पड़े, "आप कहती हैं कि भारतवर्ष के दो टुकड़े हो गये, पर इससे पहले भी भारतवर्ष कब एक रहा है ? मुगलों के जमाने मे उससे पहले तीन-तीन चार-चार Independent राज्य रहे हैं। यदि उस दृष्टि से देखा जाये तो India is tending towards Unification अब तो दो ही हैं।"

"यह तो नही कहा जा सकता कि भारतवर्ष एक नही रहा। अशोक के जमाने मे ही एक था।" महादेवी जी ने कहा।

"एक अवश्य था, पर वह Unity, imposed थी, इसीलिये अशोक की मृत्यु के बाद ही समाप्त हो गई पर जो यूनिटी जनता द्वारा स्थापित होगी, वह चिरस्थायी होगी। ये दो भाग इसलिये हुये हैं कि जनता चाहती थी। यदि भविष्य मे जनता चाहेगी तो दोनो एक भी हो सकते हैं।' डाक्टर साहब ने कहा।

"गांधी जी एक करके छोड़ेंगे। उन्होंने 15 अगस्त से ही कलकत्ते मे अपना काम शुरू कर दिया। पर कल तो लड़कों ने उनको बड़ा परेशान किया कि Gandhi ji go back, Gandhi ji go back' मैंने कहा।

"पंजाब में भी ऐसा ही हुआ था। अब गांधी जी का प्रभाव घट रहा है। पहले भी गांधी जी का विरोध हुआ है पर ऐसा कभी नही। गांधी जी भी तो ऐसी ही बातें करते हैं। हरिद्वार गये तो वहाँ बेचारे शरणार्थियों को धमका आये कि कुछ काम करो और अपने अपने घर को लौट जाओ। भाई वे क्या करें? आप उन्हें काम दीजिये। और बेचारे वे यहाँ कभी तो आये हैं, जब उन्हें कोई आशा नही रही। कितनों के माँ-बाप भाई-बहिन पत्नी बच्चे मारे गये, माल लुट गया। जब सुरक्षा नही थी तभी तो वे वहाँ से भागे और अभी सुरक्षा वहाँ है कहाँ, जो चले जायें?" महादेवी जी बोली।

'हाँ, पंजाब बंगाल के हिन्दू उनसे बहुत नाराज हैं और बात है भी बहुत स्वाभाविक। यदि मैं हूँ और मेरे माँ बाप या भाई बहिन को मार दिया गया है तो मैं तो उस मारने वाले की जान लेने को तैयार रहूँगा ही और उस समय यदि कोई मुझे ऐसा करने से मना करेगा तो वह मुझे शत्रु ही दिखाई देगा।"

"हाँ, यह तो बात है ही। क्रोध में बुद्धि पर शासन नही रहता। पर गांधी जी भी तो हिन्दुओं को दबाने के लिये कड़ी से कड़ी बात कह देते है, पर मुसलमानों के लिये नही।"

'वह यह समझते हैं न कि मैं हिन्दू हूँ और मुसलमानों के लिये कोई कड़ी बात कहूँगा तो लोग कहेंगे कि हिन्दुओं का पक्षपात करते हैं।"

तो मैं हिन्दू हूँ, यह बात वह नही भुला पाते? हमें तो हमेशा यह ध्यान रहता नही कि हम हिन्दू है। बचपन में भी हमने तो देखा है कि जब हम इन्दौर मे रहते थे

तो हमारे पडोस मे एक मुसलमान रहते थे। वे किसी नवाब के वशज थे। उनका एक लडका था। राखी पूनो के दिन हम लोगों को जरा देर हो जाये तो बेगम साहब हमे घर से बुलवाया करती थी। राखी बाँध देने के बाद वे हमको चूडियें और जाने क्या क्या चीजें दिया करती थी। पता नही हमारा वह भाई तो अब न जाने कहाँ है ?" महादेवी जी ने कहा और क्षण भर रुक कर बोली, 'ये तो इतना विष इन दिनो ही देखा गया कि एक जाति ने दूसरी जाति पर इतने अत्याचार किये हैं।"

डाक्टर साहब बोल पडे, "महासभा मे भी शक्ति नही है क्योंकि महासभा के पीछे जनता नही, यही कारण है कि देखिये महासभा का Direct Action तीन दिन मे ही फेल हो गया और लीग को सफलता मिली, क्योंकि उनके पीछे जनता की शक्ति थी। अब शायद सोशलिस्ट पार्टी Power मे आये।'

"पर सोशलिस्ट पार्टी के पास Followers कहाँ हैं ?" महादेवी जी ने पूछा।

"जयप्रकाश नारायण इत्यादि नेता तो बहुत अच्छे हैं ?" डाक्टर साहब ने कहा।

"पर कांग्रेस से अलग तो अभी जयप्रकाश नारायण का कोई अस्तित्व नही।' महादेवी जी ने कहा।

"यह वह जानते हैं तभी तो अभी तक उन्होने कांग्रेस मे इस्तीफा नही दिया। पर पहले तो कांग्रेस भारतवर्ष की आजादी के Issue पर सब को एक कर लिया करती थी, पर अब वह बात तो रह नही गई। अब तो यदि जनता की Demand पूरी नही होती तो उसकी उत्तरदायी कांग्रेस होगी। आर्थिक समस्या यदि कांग्रेस हल न कर सकी, तो फिर तो जनता सोशलिस्ट पार्टी का साथ देगी ही।" डाक्टर साहब ने कहा।

"हाँ, यह तो बात ठीक है।" महादेवी जी बोली। मैंने महादेवी जी की ओर मुड कर पूछा, "कम्यूनिस्ट पार्टी के बारे मे आप के क्या विचार हैं ?" बोली, "कम्यूनिस्ट पार्टी के Workers तो बडी लगन के साथ काम करने वाले हैं, पर नेता कोई नही।"

"नही, ये लोग अनुकरण करते हैं रूस का, पर रूस की परिस्थितियाँ अलग हैं और भारत की अलग। ये इतना नही देखते।"

"अब कोई नेता तो है नहीं, इसलिये बेचारों को जो इनके बाबा दादा लेनिन-मार्क्स स्टालिन कहते हैं उसी पर चलना पडता है।"

"नही, इनमे Contradictions बहुत हैं। 1931 ई० की Independent struggle मे इन्होने बुर्जुवा Struggle कह कर भाग नही लिया। 1942 मे भी अलग रहे और यही कहते रहे कि यह साम्राज्यवादी शक्तियों की लडाई है इससे अलग रहो। पर रूस के युद्ध मे आते ही Allies की सहायता की पुकार करने लगे।

पहले सुभाष बोस तथा I N A को Fifth columnist और Traitor कहा और फिर बाद मे I N A Day भी मनाया।" डाक्टर साहब ने कहा।

"भाई Contradictions तो सभी जगह हैं। Contradictions कहाँ नही? काग्रेस मे क्या कुछ कम हैं? अभी तो पहले United India-United India चिल्लाते रहे। फिर Divided India मान लिया।"

"वह तो उन्होंने इसलिए मान लिया कि इस समय उनके दृष्टिकोण स भारत का इसी मे हित था, पर कम्युनिस्ट तो भारत से पहले रूस के हित का ध्यान रखते है" डाक्टर साहब ने कहा।

"राजनीति मे सब ऐसे ही चलता है। कोई किसी के हित का ध्यान नही रखता, सब अपनी पार्टी के हित का ध्यान रखते हैं।" महादेवी जी ने कहा।

"नही, जब कभी आवश्यकता पड़ी, कम्युनिस्टो ने लडाई नही छेडी, पर जब आवश्यकता नही थी तब शुरू की।" डाक्टर साहब ने कहा और साथ ही मैं बोल पड़ा, "अभी देख लीजियेगा दस पन्द्रह दिन पहले काग्रेस के विरुद्ध थे, पर रूस स Ambassadorial exchange हो जाने पर नीति बदल दी। चिल्लाने लगे, सयुक्त मोर्चा कायम करो, सयुक्त मोर्चा कायम करो।" इसके साथ ही मैंने महादेवी जी से कहा, 'एक सस्था राष्ट्रीय स्वय सवक सघ भी तो है। उसका नाम भी आपने सुना या नही?"

'हाँ, सुना तो है।"

"वे कहते हैं कि भारतवर्ष हिन्दुओ का है। मुसलमान विदेशी थे। इनको निकाल बाहर करो। ये यदि यहाँ रहे भी तो यहाँ के citizen नही हो सकते।"

'भाई, यह बात तो ठीक नही। इस तरह से तो हम भी विदशी हैं। हम भी तो मध्य एशिया और ईरान स आये थे। तो फिर तो भारत यहाँ के Aboriginals को मिलना चाहिए।" इस पर मुझे हँसी आ गई। कुछ क्षणो तक ऐसे ही शाति रही और हिन्दुस्तान की राजनीति तथा राजनीतिक पार्टियो से सम्बन्धित बात यही समाप्त हो गई।

मेरे तो कभी यह बात ध्यान मे नही आई थी कि सभी पार्टियो की Policies के बारे मे उन्हे इतना ज्ञान होगा और वे उसमे भी interest लेती होगी। पर आज उन्होंने राजनीति मे भी साहित्य जैसा ही interest लिया।

अब साहित्यिक बात प्रारम्भ हुई। मैंने कहा, 'निराला जी आये हुये हैं। सुना है डा० ब्रजमोहन गुप्त के यहाँ ठहरे हैं। एक दिन मैं उनसे मिलने जाने की सोच रहा था। पता नही गुप्त जी का घर कहाँ है?'

"अब तो वे वहाँ से अपने घर दारागज चल गये। अभी तीन दिन हुये मेरे पास आए थे। उनके घर की ताली मेरे पास थी। आकर बोले, 'लाओ मेरी ताली।' मैंने

ताली दे दी। उनके घर पर एक बार मैंने एक कुर्सी और एक मेज पहुँचवा दी थी। बोले, 'अपनी कुर्सी मेज मँगवा लेना।' मैंने कहा, 'मुझे तो कोई जरूरत नहीं। आ जायेगी।' वे ताली लेकर चल दिये। थोड़ी दूर गए होंगे कि फिर लौट आए। बोले, 'लो ताली। मैंने ताली ले ली।' अब आज दारागंज से उनकी चिट्ठी आई है कि मैं सकुशल घर पहुँच गया। पता नहीं ताला तोड़ कर पहुँचे या घर फोड़ कर। कल उनके यहाँ जाऊँगी।" निराला जी की बात पर हँसी आई। हँसते हँसते मैंने पूछा, 'निराला जी, आजकल लिख क्या रहे हैं ?'

"पहले तो रामायण का खड़ी बोली में अनुवाद कर रहे थे, पर अब कुछ गद्य में लिख रहे हैं।"

मैंने पन्त जी के विषय में बात छेड़ी।

"एक दिन मैं पन्त जी से मिलने गया था। उस समय वे कहीं जा रहे थे। बात तो कुछ हुई नहीं। केवल अपनी 'ज्योत्स्ना' की एक प्रति उन्हें देकर मैं लौट आया। फिर अब तीन दिन हुये 'विचारक परिषद' में पन्त जी आये थे। वहाँ उनकी कवितायें सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पहली कविता उन्होंने सुनाई थी 'चिन्तन', जिसकी पहली पंक्ति थी—'दुःख में मन करता चिन्तन, सुख में जीवन दर्शन।' उनकी दूसरी कविता थी 'अगुंठिता।' उसमें एक स्त्री यही कहती है कि देह और स्नेह साथ साथ नहीं चल सकते। तीसरी कविता थी 'हिमाद्रि और समुद्र।' उसमें हिमालय का बहुत सुन्दर वर्णन है और समुद्र का भी। फिर उन्होंने अशोक वन सुनाया। एक छोटा खड-काव्य ही कहा जा सकता है उसे। उसमें अशोक वाटिका से अग्नि प्रवेश तक सीता जी का चित्रण है। सीताजी प्रकृति से परा प्रकृति को लौट जाती हैं। चेतन में उपचेतन में विलीन हो जाती हैं। स्वर्ग से भगवान राम आये थे और धरा से सीता जी। दोनों थोड़ी सी लीला के उपरान्त अपनी अपनी प्रकृति को लौट जाते हैं। आपने तो सुना होगा?' मैंने पूछा।

"हाँ सुना है। यहाँ आये थे तो बड़ी दर्शन की बातें कर रहे थे। कह रहे थे भारत का ही तो है सब कुछ। एक हम ही तो हैं जो शुरू से ही अपने मार्ग पर रहे, ये (पन्त जी) तो छोड़ कर चले गये थे। अब फिर लौट कर वहीं आ गये न?'

"नहीं, अब तो उन्होंने अन्तर्जगत और बहिर्जगत का समन्वय कर दिया है। बात यह है कि रूस का कम्यूनिजम तो सब कुछ बहिर्जगत को ही माने बैठा है और भारत की विचारधारा अन्तर्जगत को ही सब कुछ समझे बैठी है। दोनों Extreme Views हैं। अब पन्त जी ने इन दोनों का समन्वय कर दिया है। इनकी एक कविता 'इन्द्र-धनुष' है, उसमें उन्होंने इसी भाव का प्रतिपादन किया है कि यदि जीवन में दोनों का सामंजस्य होगा तो जीवन ऐसा ही सुन्दर होगा जैसे इन्द्र धनुष, जिसमें धरा के

Elements भी होते हैं और स्वर्ग के भी, जो धरा को भी छूता रहता है और नभ क भी।"

'तब तो फिर वे ठीक मार्ग पर आ गये।"

"पन्त जी की ये दोनो पुस्तकें 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' बहुत Like जायेंगी, पर इसमें कोई सन्देह नहीं पन्त जी कोमल बहुत हैं। जब परिषद् की मीटि समाप्त हो गई तो प्रकाश का कोई प्रबन्ध नहीं था। जैसे ही पन्त जी ने अन्धकार पैर रक्खा कि उनके मुँह से निकला "बच्चन कहाँ हैं।" 'बच्चन' जी तुरन्त आए उनकी दायीं भुजा पकड़ कर धीरे-धीरे आगे बढ़े। मैं अपने आप ही बायीं ओर आ गया। इस तरह धीरे धीरे पन्त जी ने वह अन्धकार का समुद्र पार किया। आप स समझिये कि पन्त जी को अन्धकार में छोड़ कर यदि चल दिया जाए, तो वे प्रका होने तक वहीं बैठे रहेंगे। कदाचित् ही निकल पायें।"

"परसो मैं भी संसद् में प्रतीक्षा करती रही। खाना बनवाया, पर वे आए नहीं शायद आए हों और आधे रास्ते से ही न लौट गये हों।" महादेवी जी ने हँस क कहा। मैं बोला, "इसमें कुछ आश्चर्य नहीं जरूर लौट गए होंगे।"

अब दूसरी बात छिडी। मैंने कहा, "हिन्दी में पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़ आ रह है। केवल अपने यू० पी० से ही 20, 25 पत्रों का नया Declaration है।

"सब पत्र बिरला और डालमियाँ खरीदे जा रहे है।"

'यह इसलिए है कि पत्रों में इनका प्रचार हो और जनता की आवाज दबाई जा सके।" मैंने कहा। डाक्टर साहब बोल पड़े 'सुना है बम्बई में इन Capitalist की एक बड़ी भारी concern खुल रही है जिसमें पूरे भारतवर्ष के अच्छे लेखको को निमन्त्रित किया जायेगा और वहाँ उनके रहने-सहने खाने-पीने इत्यादि की सुविधाओं का प्रबन्ध भी वे ही करेंगे और इस प्रकार वे सोचते है कि हम लेखकों का मुँह बन्द कर सकेंगे।"

"कुछ भी हो, पर अभी हिन्दी का लेखक इतना नहीं गिरा। अर्थाभाव के कारण वह चकनाचूर हो गया है अपने में ही टूट गया है, पर ऐसा उसने कभी नहीं किया। हमारी यू० पी० गवर्नमेन्ट ने 25 हजार रुपया लेखकों की सहायता के लिये रखा है और वह लेखक के आवेदन-पत्र पर दिया जायेगा पर अभी तक एक भी आवेदन-पत्र उनके पास नहीं पहुँचा। कोई साहित्यिक तो ऐसा कर नहीं सकता, कदाचित् कोई कलम पकड़ने वाला ऐसा कर दे, तो कर दे" महादेवी जी ने कहा।

मैं डाक्टर साहब की ओर मुड़ा, बोला "आपने 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' पढ़ा है ?"

बोले, "मैं पढ़ने बैठा था पूरा नहीं पढ़ पाया। यह राजनीतिक उपन्यास है पर इसमें उन्होंने एक साहित्यिक chapter भी रखा है। उसकी कोई आवश्यकता तो थी नहीं।"

"वह बात तो उनके मन मे पहले से ही थी। जानबूझ कर किसी एक जगह ठूंस दिया होगा।"

"पता नही, ये लोग कैसा लिखते है कि ऐसी बात नही होती जैसी शरतचन्द्र के उपन्यासो मे है कि पढ रहे हैं तो फिर समाप्त होने तक छोड़ने को मन नही करता। मैं इलाचन्द जी का 'निर्वासित' पढ रहा था उसमे भी यही बात है।" डाक्टर साहब ने कहा।

"हां, इलाचन्द जी न जाने कैसी भाषा लिखते है। मुझे तो ऐसा लगता है कि उन्होने कदाचित् अपना एक समय नियत कर रखा होगा कि प्रतिदिन सात से दस तक उपन्यास लिखेंगे। अब दिन भर तो लीडर प्रेस मे काम करते होंगे और फिर थोडा आराम लेकर उपन्यास पर जुट जाते होंगे।"

"हाँ भाई, इतना तो काम करना ही पडता होगा, पर उनकी भाषा यही स्वाभाविक है।" महादेवी जी ने कहा और डाक्टर साहब बोल पड़े, "एक बात समझ मे नही आती कि जोशी जी के Characters विकृत से क्यो हैं? इनके 'प्रेत और छाया' मे भी यही बात थी और 'निर्वासित' मे भी वही।

"इनके उपन्यास तो मनोवैज्ञानिक होते हैं और यदि वे Normal Characters लें तो कल्पना से उस पर इतना तानाबाना नही बुना जा सकता। इसलिए वे Abnormal Characters लेते है।"

"ऐसा ही इनका Description देखिए। कलाकार के तो suggestions होते है और कही कही सुन्दर Touches होते है। पर जोशी जी Description देंगे तो उसमे सब कुछ देंगे जैसे एक तांगा चला जा रहा था, वह ऐसा था, उसके पहिए ऐसे थे, वे ऐसी आवाज कर रहे थे, यह बात उनमें बहुत पाई जाती है।" डाक्टर साहब ने कहा।

'हाँ, यह बात तो है।" महादेवी जी ने कहा। मैं बोल पडा, "उस दिन पाडे जी कह रहे थे कि शरतचन्द्र के टक्कर का हमारे यहाँ ओंकारनाथ 'शरद्' लिखते है। मैंने तो इससे पहले इन महाशय का नाम तक नही सुना। आप बतलाइये आपने इनका कुछ पढा है?"

"नही, पाडे से ही नाम सुना है।"

"तो बतलाइए ये शरतचन्द्र के टक्कर का लिखते हैं?"

तो हँस कर कहने लगी "अरे भाई, वैसे ही कह दिया होगा, क्योंकि ये भी तो 'शरद्' हैं न!"

"नही वे Seriously कह रहे थे।'

"शरत्चन्द्र के चरित्रो का एक विशेष वातावरण मे विकास होता है और वे एक विशेष प्रकार का भाव प्रतिपादित करते हैं। यदि उन चरित्रो को उस विशेष

वातावरण से अलग कर दिया जाए तो वे कुछ भी नही। वे हृदय पक्ष को अधिक अपील करते है। यदि उनका एक बुरा पात्र है तो वह भी एक विशेष वातावरण मे आपकी सहानुभूति का पात्र बन जाता है। ये लोग इसमें विश्वास नही करते। ये कहते हैं कि जीवन मे जैसा देखा जाए वैसा ही चित्रित कर दिया जाए।"

तो फिर कलाकार ने अपना क्या दिया ?" डाक्टर साहब ने पूछा।

'वे परिस्थितियो का चित्रण करते है और विचारधारा पाठको को सोचने के लिए छोड देते है।"

'हमारा तो ऐसा विश्वास है कि कुछ भी हो पर ऐसा होना चाहिए जो मान वता का ऊपर उठाए। शरतचन्द्र मे यह बात है।"

"मानवता को ऊपर उठाने वाला तो होना ही चाहिए यह तो मैं भी मानती हूँ" महादेवी जी ने कहा। इतने मे लीला आई और अन्दर दरवाजे के पास चुपचाप खडी हो गई। महादेवी ने उसे देखा, बोली "क्यो लीला, क्या बजा है ?"

'साढे ग्यारह।" उसने कहा।

"अरे। ' डाक्टर साहब के मुँह स निकला और हम खडे हो गए। इस के बाद कोई कुछ नही बोला। महादेवी जी बरामदे तक आई। हम लोग घर की ओर चल दिए।

अगले दिन प्रभात मे डा० रमेश भाई स फिर भेंट हुई। बात ही बात मे मैंने उनसे पूछा, "आपको महादेवी जी कैसी लगी ?" बोले, "मैं और तो कुछ नही कह सकता पर इतनी बात अवश्य है कि *She is the embodiment of nobility.*"

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

37

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
20/8/47

आदरणीय 'मानव' जी

घनी प्रतीक्षा के बाद कल आपका पत्र मिला। एक पत्र मैंने आज ही सुबह लिख कर समाप्त किया है। वह और यह आपको साथ-साथ ही मिलेंगे।

हर्ष मे समय व्यतीत हुआ मालूम नही देता। 14 से 19 तक की छुट्टियाँ समाप्त हो गईं, पर ये पाँच छ: दिन एक दिन की तरह बीत गए। 15 अगस्त के सुरम्य प्रभात में एक लाख का जन समुदाय गवर्नमेंट हाउस की ग्राउन्ड पर एकत्रित हुआ और जय-जय नाद के बीच श्री सम्पूर्णानन्द जी ने राष्ट्रीय पताका फहराई। उस

समय मेरा शरीर रोमांचित हो उठा। हमे कोई साकार वस्तु नहीं मिली है, पर फिर भी ऐसा लगता है कि पृथ्वी आकाश सब बदल गए हो, समस्त वातावरण ही बदल गया हो। आज यहाँ के नदी, निर्झर, घाटी पर्वत, वन, वसुन्धरा सब हमारे हैं। ये आँखें इससे अधिक जीवन साफल्य और क्या देख सकती थी। इस मगलमय अवसर पर मेरा हर्षाभिवादन स्वीकार कीजिएगा।

भारत के बँटवारे का थोड़ा दुख अवश्य है, पर इतना नहीं कि स्वातन्त्र्य के महान् सुख को उससे मलिन किया जाए।

इस अवसर पर 'विजय' का प्रथम अक निकल गया होगा ?

पत्र के लिए मैंने श्री रामचन्द्र वर्मा एम० ए० की एक कहानी और अपना एक गीत भेजा था। और आज मैं डा० रमेश की कहानियाँ, एक छोटा उपन्यास और एकाकी नाटक भेज रहा हूँ।

23/8 की सध्या को आपके पत्र की प्रतीक्षा करूँगा।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

38

30 ए, वेली रोड
इलाहाबाद
21/8/47
प्रभात

आदरणीय 'मानव' जी,

परसो 19/8 को दिन की घोर तपन के बाद तीसरे पहर चार बजते-बजते आकाश मेघाच्छिन्न हो गया था। साढ़े चार बजे मैंने अपना अध्ययन कार्य बन्द कर दिया और डाक्टर साहब के यहाँ चल दिया। वहाँ पहुँच कर यह निश्चय हुआ कि साहित्यकार ससद् चला जाये।

"ससद् हमारे यहाँ से डेढ मील होगा। रास्ता साहित्य चर्चा मे कुछ दूर नही लगा। साढे पाँच बजते-बजते हम पु^ित जाह्नवी के तट पर पहुँच गये। बरसात मे उमडी हुई गगा का दूर तक विस्तृत पाट बहुत अच्छा लग रहा था। तट पर कुछ नाव लगर डाले खडी थी। यहाँ गगा के तट पर एक प्राचीन विशाल वटवृक्ष है। उसकी फैली हुई मोटी मोटी जडें बरसात मे गगाजल का स्पर्श करती हैं, या यों कहूँ कि आत्मवृद्धि के लिए रस खींचती हैं। हम आध घटे तक उन जडो पर बैठे बैठे बातचीत करते रहे, गगा की शोभा देखते रहे, बडे-बडे कछुओ और मच्छो की जलक्रीड़ा देखते रहे और देखत रहे सामने क्षितिज पर लटके हुए बादल।

फिर मैं उठा। उठ कर साहित्यकार संसद भवन की ओर एक ऊंचे टीले पर देखा तो वहाँ के द्वार खुले हुए थे। सोचा कोई आया है। डाक्टर साहब को लेकर मैं वहाँ पहुँचा। नौकर से पूछने पर पता लगा कि महादेवी जी हैं, स्नान करने जा रही हैं। आप अपना नाम बता दीजियेगा। मैंने अपना नाम बता दिया। वह अन्दर से लौटा और सबसे पहले वाले कमरे में, जहाँ एक कालीन बिछा था और एक तकिया रखा था और जिसके एक ओर एक मेज और एक कुर्सी थी, वहीं एक कुर्सी लाकर और डाल दी। बोला, "आप यहाँ बैठ जाइयेगा।" वहाँ गर्मी थी, इसलिए हम बाहर ही बैठ गये।

थोड़ी देर बाद महादेवी जी आयीं। वे बिल्कुल सफेद धोती पहने थीं और बिल्कुल सफेद कुर्ती। आज और दिनों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ लग रही थीं। वे हँसती हुई आयीं और बड़े स्नेह गर्भित स्वर से बोलीं, "अरे, तुम यहाँ बैठ गए ?"

"यहाँ बहुत अच्छा लग रहा था" मैंने कहा।

"बहुत देर हो गई ?"

"नहीं, यहाँ तो अभी आये थे। इससे पहले तो हम गंगा जी के किनारे बैठे थे।"

"पहले तो तुम यहाँ कभी आये नहीं ?" इतना कह कर वे आगे बढ़ीं।

"नहीं, गर्मियों में तो हम प्रतिदिन जाते थे। पर तब तो यहाँ बिल्कुल ऊबड़-खाबड़ था और बंजर सा लगता था। अब तो काफी हरियाली है" मैंने कहा। जिस स्थान पर हम खड़े थे, वह भवन के आगे वाला सहन था। उसका समतल काफी ऊँचा है। नीचे से देखने पर सभा-मंच सा लगता है। उसकी ओर संकेत कर महादेवी जी बोलीं—

"परसों पंत जी आये थे। इसे देखकर कहने लगे कि यह तो बना बनाया मंच है। यह नीचे से लगता भी तो मंच जैसा है।" "हूँ।" फिर उस समतल से नीचे उतरे। उसको दिखाकर बोलीं, "यह अर्द्ध वृत्ताकार Lawn रहेगा। इसके किनारे-किनारे फूल पत्तियाँ लगा देंगे। लतायें ऊपर चढ़ा दी जायेंगी।"

"अच्छा।"

फिर वहाँ से एक कोने पर पहुँचे। यहाँ इसके पास ही एक भगवान शिव का मन्दिर है। पर यह संसद की जमीन में नहीं आता, बल्कि सीमा रेखा से बिल्कुल लगा हुआ है। इसी सीमा-रेखा वाली संसद की जमीन के Plot की ओर संकेत कर कहने लगीं—

"यहाँ मेरी कुटिया बनेगी।"

"यहाँ ?"

"यहीं ठीक है एक ओर।"

"तब तो इसकी नींव बड़ी गहरी रखी जानी चाहिये, क्योंकि बरसात में इसके नीचे तक गंगा जी आ जाया करेंगी। कभी कोई ऊँची लहर आ गई तो बहा कर ले जायेगी," मैंने जरा हंस कर कहा।

"यही तो मैं चाहती हूँ। अच्छा है कोई लहर बहा कर ले जाये। हम लोग स्मारक वाले व्यक्ति थोड़ी ही हैं।" इतना कह कर वे आगे बढ़ गईं। कुटिया के स्थान के सामने वाले Lawn की ओर संकेत कर बोलीं—

"यह आप लोगों के लिये Lawn का स्थान रहेगा, नहीं तो मेरे पास आओगे तो बैठोगे कहाँ"? इतना कह कर आगे बढ़ गईं। फिर पीछे मुड़ कर बोलीं—

"वे देखो मैंने अपनी कुटिया के पास दो अशोक के वृक्ष लगा दिए हैं।" मैंने मुड़ कर देखा तो उनकी कुटिया वाले plot के दो कोनों पर दो अशोक के वृक्ष लहलहा रहे थे। अब तीसरे नीचे वाले समतल पर उतरे। वहाँ के एक plot की ओर संकेत कर बोलीं, "यहाँ एक छोटा-सा सरोवर बन जायगा। उसमें कमल लग जायेंगे।"

"बहुत अच्छा रहेगा। पर अभी लगभग एक लाख रुपया चाहिये।"

"हाँ, इतना तो चाहिए ही"। फिर आगे बढ़ती हुई जैसे अपने से ही कह रही हो, इस प्रकार बोलीं—

"जो कुछ पहले था वह तो विद्यापीठ को दे दिया था। जो अब था वह यहाँ लग गया। अब तो कुछ है नहीं। अब गले में झोली डालनी पड़ेगी।" समतल न होने के कारण मेरा पैर जरा गड़बड़ा गया, तो तुरन्त बोलीं, "देखो भाई, संभल कर चलना।"

"नहीं, मुझे तो आदत है। मैं तो पहाड़ पर भी पैदल ही यात्रा करता था।"

"पहाड़ पर घास तो नहीं होती। यहाँ घास में उलझ कर गिर गये तो?"

"घास पर गिर गये, तो चोट तो नहीं लगेगी। वहाँ पहाड़ पर गिर जाओ, तो फिर मर ही जाओ" मैंने कहा। महादेवी जी आगे-आगे चली जा रही थीं और हम उनके पीछे-पीछे उनके पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए चल रहे थे। फिर भी उन्हें हमारी चिन्ता थी।

अब हम संसद् भवन के पश्चिमीय भाग से पूर्वीय भाग पर आ पहुँचे थे। वहाँ कोई मजदूर एक पेड़ की डाल पर अपना अंगोछा भूल गया था। महादेवी जी ने उसे उठा लिया, "देखो, यहाँ भूल गया है, आजकल कपड़ा बिल्कुल मिल नहीं रहा है।" वे उस अंगोछे को हाथ में लेकर चल दीं। थोड़ी ही दूर चली होंगी कि मैंने उनके हाथ से अंगोछा ले लिया, ले क्या लिया, छीन लिया समझो, तो बोलीं, "कुछ बोझ थोड़े ही है, मैं लिये चल रही हूँ।"

फिर हम नीचे से ऊपर को चढ़ने लगे तो कहने लगीं, "देखो गिर मत जाना।" अब की बार मुझे हँसी आ गई। बात यह थी कि मुझे पंत जी याद आ गये थे, मैंने

कहा, "मैं पंत जी थोड़े ही हूँ। उनके लिए वहा होता तो ठीक है।"

"अरे भाई नही, तब भी गिर जाओ तो। पंत जी को भी परसों मैंने घुमा ही दिया। बेचारो को कष्ट तो बहुत हुआ होगा। उन्हे यह जगह पसद तो आयी। वह रहे थे कि मैं एक ऐसा ड्रामा लिख दूँगा जो नाव पर खेला जा सके। ड्रामा तो नाव पर खेला जायगा पर दर्शक कहाँ रहेंगे ?

मैंने कहा 'दर्शकों की नावें भी साथ साथ चलेंगी।"

अब हम भवन के पूर्वीय पार्श्व पर पहुँच गये थे। उस ओर के एक बड़े प्लॉट की ओर देख कर मैंने पूछा, "इसमे क्या रहेगा ?" हँस कर बोली, "फिलहाल तो गेहूँ बुआ रही हूँ।"

गेहूँ '

"हाँ, कुछ साहित्यिक यहाँ रहने के लिए आ गए, तो उनके लिए कुछ तो होना चाहिए।' फिर हम नीचे उतरे। वहाँ सबसे नीचे एक पेड़ की छाया में छोटा सा प्लॉट था। उसे दिखा कर बोली, 'यहाँ भी एक छोटा सा तालाब बन जायगा और उसमे कमल लग जायेंगे। यदि कोई लेखक एकान्त मे कुछ लिखना चाहता है तो यहाँ पेड़ के नीचे बैठकर लिखता रहे।' अब हम ऊपर को लौट चले। चढ़ते चढ़ते बोली "मुझे पहाड़ म सीढ़ियोनुमा खेतों की क्यारियाँ बहुत अच्छी लगती थी। यहाँ तो बनी बनाई ही मिल गईं।" अब हम ऊपर वाले स्तर पर भवन के मुख्य द्वार के सामने आ गये। उसके सामने दो बड़े बड़े नीम के पेड़ है। उनकी ओर सकेत कर बोली, "ये पेड़ भी ठीक ही रहे।'

फिर हम पश्चिमीय पार्श्व की ओर आये। अंगोछा मजदूर को दे दिया गया। इधर पश्चिम की ओर एक प्लॉट में एक मजदूर माथे पर पट्टी बाँधे काम कर रहा था। उसे देख कर महादेवी जी ने कहा, 'राधे ! सिर मे दर्द है तो काम क्यों कर रहा है बस रहने दे।" हमारी ओर मुड़ कर कहने लगी, 'मैं रहती हूँ तो ये लोग बहुत काम करते हैं।"

पश्चिमीय पार्श्व की ओर उन्होने वह स्थान बताया जहाँ ससद का सिंहद्वार बनेगा। फिर उधर बनी हुई खपरैल की ओर गये। वह घुड़साल सी थी। वहाँ बड़ा अंधेरा भी था और कुछ गन्दगी भी थी। उसे प्रकाशमान बनाने के लिए तुड़वा कर खिड़कियाँ लगवाने के लिए कहती रही। मैंने कहा यहा प्रेस ठीक रहेगा।"

'प्रेस के लिए भी ठीक जगह है और नहीं तो कुछ और भी बन सकता है।" फिर हम वहाँ से लौट चले और ऊपरी समतल वाले पश्चिमीय पार्श्व भाग मे पहुँचे जहाँ कुँआ है। वहाँ ऊँचे मेड़ के समतल मे मिला हुआ एक चबूतरा सा है। भवन के बाहर यही एक खुला हुआ सबसे ऊँचा स्थान है। यहाँ से गगा जी तथा पुल का दृश्य बहुत सुन्दर दिखाई देता है। वहाँ नौकर ने एक फूलो वाली सुन्दर चादर बिछा दी थी। उस पर हम लोग बैठ गए। महादेवी जी पाल्थी मार कर बैठ गई। श्वेत वस्त्रो मे

परिवेष्ठित वे उस उच्च-स्थल पर ऐसी ही लग रही थी जैसे हिमाचल की उच्चतम श्रेणी का सर्वोच्च भाग वहाँ लाकर रख दिया गया हो और वह पिघला न हो। उनके मुख पर शांति थी और प्रसन्नता भी। उनके नेत्रों म संतोष की आभा थी— ऐसी ही आभा जैसी एक कलाकार के नेत्रों मे कला का सृजन कर लेने पर होती है। आज सचमुच उनमे सृजनात्मक आल्हाद था।

हम बैठ गए। कुछ देर तक कुछ नही बोले। फिर मैंने बात प्रारम्भ की।

"आज सुबह पत जी से भेंट हुई। कही जाने वाले थे। दस ग्यारह मिनट बात हुई होगी। जो कुछ भी उन्होने कहा वह बहुत ही संक्षेप मे और अस्पष्ट सा था।" इसी बीच डाक्टर साहब बोल पडे, "वह पहले से ही कुछ सतर्क से हो गये थे।"

"हाँ, उन्होने यही समझा कि मे कही P D Tondon की तरह Interview तो लेने नहीं आये, इसलिए दूध का जला छाछ को भी फूंक फूंकर पीता है।' मैंने कहा।

"ठीक तो है, ये लोग भी तो मुँह की बात पकडते हैं। अगर किसी के विषय म कुछ लिखें तो पहले उसे दिखा लेना चाहिए। अब पत जी ने तो यह कहा था कि 1942 मे कम्युनिस्ट भ्रान थे, उन Correspondent महोदय ने उसके लिए लिख दिया कि Traitors थे।"

"हाँ भ्रांन का तो यही अर्थ है कि Confounded थे," मैंने कहा।

'हाँ, भूले हुए थे और Traitor मे बडा भारी अन्तर हो जाता है।"

"Traitor का अर्थ तो यही है कि Deliberately वह ऐसा कर रहे थे।" डाक्टर साहब ने कहा।

"मैंने टडन जी के और भी Articles और Interviews पढे हैं। यह उनका गुण है कि वे अपने विरोधी पर बडा तीखा प्रहार करते हैं।" मैंने कहा।

"हाँ, उनका कम्युनिस्टों से व्यक्तिगत विरोध है। अब उन्होंने यह अवसर पाकर जो कहना था कह डाला। पत जी बडे सकट मे पड गयें कि मैंने तो ऐसा कहा नहीं।"

"हाँ, मैंने सुना था वह इसके लिए बहुत व्यथित थे।"

'जितना कहा जाए उतना ही तो देना चाहिए। अब पत जी ने उसका Contradiction भेजा है, मैंने तो अभी पढा नहीं।"

"सुना है, पढा तो मैंने भी नही, कि इस सप्ताह के 'देशदूत मे निकला है।"

'National Herald तो कदाचित ही निकाले क्योकि कांग्रेस पेपर है न ?" महादेवी जी ने कहा।

"अब तो पन्त जी बदल रहे हैं, उनकी इधर की जो कविता है 'स्वर्ण किरण',

'स्वर्ण धूलि' की, उनमे उन्होने वहिर्जगत और अन्तर्जगत का समन्वय कर दिया है।"

"पन्त जी प्रयोग बहुत करते हैं। जो जिस समय करते है उसी को परम सत्य बताने लगते हैं। साहित्यिक का सत्य तो एक ही होता है। वह कभी बदलता नहीं। जो आज सत्य है वही हजार वर्ष बाद भी सत्य रहेगा। वैसे वह कितनी ही चीजें लिखें पर सबके पीछे एक सूत्र रहता है। अब निराला की एक ओर 'राम की शक्ति पूजा' है और दूसरी ओर 'गरम पकौड़ी', पर दोनो के पीछे एक सूत्र है। जब पन्त जी हम लोगो को छोड़कर चले गए तो हमको आश्चर्य भी हुआ और दुख भी। एक बार बातचीत हुई थी तो कहने लगे पहले जो कुछ लिखा है, वह सब कुछ नहीं और यह सब कुछ नहीं रहेगा। हमको तो ऐसा कुछ था नहीं। यदि सभी साहित्यिक कह देते कि ये हममे से नही है तो इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। बहुत से साहित्यिक कलाकार मर गए। उनके जीवन में किसी ने उन्हे जाना तक नही पर सौ दो सौ साल बाद उन्हें लोगो ने ढूंढ निकाला। हमारे यहाँ के साहित्यिक तो ऐसे ही रहे हैं। उन्होने बड़े बड़े काव्य लिखे, पर अपने विषय मे कहीं भी कुछ नही कहा। उन्हे अपने जयघोष तथा फूल मालाओ की आकांक्षा नही रही। साहित्यिकों के मठ नही बनते।"

"हाँ, जो मणि होगी वह कब तक अन्धकार मे रहेगी?" मैंने कहा। तुरन्त ही डाक्टर साहब बोल पड़े, "हमारे अजन्ता के पेन्टिग्स ही हैं। इन चित्रो को दुनिया जानती है पर चित्रकारो को कोई नहीं।'

"साहित्यकार का सत्य तो कभी नही बदलता यह बात तो ठीक है, पर राजनीतिज्ञ का सत्य बदलता रहता है, इसलिये राजनीतिक साहित्य किसी विशेष समय के लिये उपयोगी साहित्य है। जब गुप्त जी की 'भारत भारती' निकली थी तो कैसी धूम थी, पर आज उसे कोई नही पूछता। 'ग्राम्या' के बाद से ऐसा लगता है कि पन्त जी ने अपना पुराना सूत्र छोड़ दिया और उनकी विचारधारा राजनीतिक दृष्टिकोण को लेकर आगे बढ़ी। मैंने कहा और महादेवी जी बोली:

'युगवाणी से ही पन्त जी तो बदल गये थे। कहने लगे थे कि इससे पहला सब व्यर्थ है।'

'जीवन के आर्थिक संघर्ष को ही ये प्रगतिवादी सब कुछ समझते हैं और इनका विचार है कि इसमे सम्बन्धित साहित्य मे ही प्रगति है। ये लोग इसी मे भूल करते हैं। मेरा तो विचार है कि अध्यात्म म भी प्रगति है।" डाक्टर साहब ने कहा।

"विरोध जितना नाम स उत्पन्न होता है उतना वास्तव मे होता नही। इगलैंड म एक Progressive Writers Association था। प्रेमचन्द जी कहने लगे कि हम भी एक लेखकों की एमी सस्था चाहते हैं और उसका नाम 'प्रगतिशील लेखक संघ' रखा जाए। मैंने कहा नाम यह न रखिए। वहाँ का अनुकरण करने से क्या लाभ?

पर वे माने नहीं। आज ये लोग अपने को बिल्कुल अलग समझने लगे हैं। वैसे किसी भी देश के महान् कलाकारों मे चाहे वे रूस के हो या भारत के, विशेष अन्तर नही होता। साहित्य तो सरिता है। इसमे समतल पर बहुत ऊँची नीची लहरें हो सकती हैं, पर गहराई मे ऐसा कुछ नहीं होता" महादेवी जी ने कहा। कुछ क्षणो तक हम चुप रहे। फिर मैंने पूछा, "पन्त जी को यह स्थान कैसा लगा।"

"यह जगह तो उन्हे पसन्द आई ? अपने 'लोकायन' के लिये कह रहे थे।"

"यह लोकायन क्या है ?"

"वे एक शिक्षण संस्था चाहते हैं। अब यही देखना है कि संसद् के साथ-साथ यह कहाँ तक ठीक रहेगी। कुछ ऊँची क्लास के विद्यार्थी यदि किसी विषय पर जानना चाहते हैं तो Lectures रखे जा सकते हैं और किसी विषय पर कोई खोज का कार्य करना चाहे तो उसे छात्रवृत्ति देंगे और दूसरी भी हर प्रकार की सुविधा देंगे। ऐसा तो संसद् के विधान के अन्तर्गत भी है। पर यदि पन्त जी की कोई बड़ी योजना है तब तो कठिन रहेगा, क्योंकि इसमे लग गये तो फिर संसद् का कार्य रुक जाएगा।"

"पन्त जी यहाँ रहने के लिए क्या कह रहे हैं ?"

'अभी उनका कुछ ठीक नही। बाहर के इन कमरो के लिए कह रहे थे यहाँ रहना ठीक नहीं है। पता नही उनको यहाँ अच्छा लगेगा या नही। उन्हें प्रत्येक सुव्यवस्थित चीज अच्छी लगती है। जरा भी Abnormality उन पर सहन नही हो पाती। अब परसों निराला जी आए। पन्त जी भी यहाँ बैठे थे। आते ही उन्होंने कुर्ता उतार कर एक ओर रख दिया। बस पन्त जी तो घबरा गये। पन्त जी की ऐसी कोमल प्रवृत्ति है। वास्तव मे यह व्यक्ति इस देश के योग्य नही है।"

"यह बात बिल्कुल ठीक है। भारत मे उनके मन के अनुकूल वातावरण कहाँ ?" मैंने कहा। डाक्टर साहब ने पूछा ;

"सुना है निराला जी का मस्तिष्क कुछ विकृत हो गया है ?"

"हाँ कुछ है ऐसा ही। उनकी पत्नी मर गई। लडकी के लिये डाक्टर ने 5 रु० का Prescription लिखा। निराला जी अपना कुर्ता तक रखने को तैयार थे, पर उन्हें कहीं से पाँच रुपए नहीं मिले। उनकी लड़की ऐसे ही मर गई। जिस पर ऐसे आघात हुये हों उसके मस्तिष्क का विकृत हो जाना स्वाभाविक ही है। अब उन्हें कुछ Persecution का सा दौरा हो गया है। कहते हैं कि कांग्रेस वाले उनके पीछे डन्डे लेकर पडे हैं" हँस कर महादेवी जी ने कहा। फिर बोली, "डाक्टर कहता है Injection से ठीक हो जायेंगे, पर वे Injection लेने के लिए तैयार ही नहीं, तो दिए कैसे जायें ? उनके हाथ पकड कर तो दिए ही नहीं जा सकते, क्योंकि हम जैसे चार-पाँच को तो वे यों ही गिरा दें," महादेवी जी ने हँस कर कहा।

"इसमे क्या सन्देह है पहलवान आदमी तो वे है ही," मैंने भी हँस कर कहा।

"जब यहाँ आए तो मैंने पूछा, 'आप स्वस्थ तो हैं ?' तो झट कुरता उतार दिया और अपने शरीर के पुट्ठे दिखा कर बोले 'हाँ, हाँ स्वस्थ तो हूँ। देखती नहीं।'" हम लोगों को हँसी आ गई। महादेवी जी बोलीं, "अब उनकी ये बातें देखकर मुझे तो ऐसा ही लगता है कि अपना बच्चा है, वह इतना भीमकाय हो गया है और बच्चों की सी उछल कूद कर रहा है। इससे अधिक और कुछ नहीं। पर पन्त जी ने तो उनको ऐसा करते देख कर मुँह एक ओर फेर लिया।' फिर क्षण भर रुक कर कहने लगीं, "पन्त जी में सभी सभ्य संस्कार हैं, और निराला जी के सब संस्कार विचित्र से हैं, लुंगी पहनेंगे, अण्डे, मांस, मच्छ के बिना उन्हें भोजन में स्वाद नहीं आता।"

"तब तो बड़ा आश्चर्य है। आपकी उनसे किस प्रकार निभती है। आपका तो सब कुछ अहिंसा पर आधारित है और उनको यह सब चाहिए।"

"मेरे यहाँ तो वह कुछ नहीं कहते। दाल भात रोटी आनन्द से खा कर यही कहते हैं कि 'बड़ा दिव्य है, बड़ा दिव्य है।' होमवती जी के यहाँ मेरठ गए तो उन्हें परेशान कर डाला, 'लाओ यह और लाओ यह।' यहाँ तो जो मिल जाता है, चुपचाप खा लेते हैं।" हँसते-हँसते महादेवी जी ने कहा और फिर बोलीं, 'मेरे यहाँ आकर तो वे कुछ अधिक ऊटपटाँग भी नहीं बकते। विक्षिप्त सी दशा में भी उन्हें तो यहाँ कुछ भय सा ही बना रहता है।"

"नहीं, आजकल तो वे टैगोर और न जाने किसके बारे में क्या क्या कहते रहते हैं।"

"बात यह है कि जो बात कभी उनके Sub conscious में रही होगी वह विक्षिप्त दशा में उभर आती है" महादेवी जी ने कहा। इतनी देर में दाता उनकी डाक ले आया। इस डाक में खत तो कोई नहीं था, केवल सात-आठ पत्र-पत्रिकायें थीं। इनमें एक मासिक पत्रिका व्यवसाय कला या कुछ ऐसी ही थी। उसे मेरी ओर डालते हुए बोलीं, "ये लोग समझते हैं कि मुझे व्यापार की बातें भी जानना जरूरी है।" उसे मैंने पलटा। उस पर अन्दर के पृष्ठ पर एक चिप्पी लगी थी। For favour of opinion। महादेवी जी सबके पन्ने पलट कर और उनके शीर्षक पढ़-पढ़ कर मेरी ओर रखती रहीं। मैंने भी उन्हें इधर उधर से पढ़ा। इसके बाद एक नया साप्ताहिक 'संगम' जो इलाचन्द जी के सम्पादकत्व में आरम्भ हुआ है, सामने आया। उसमें महादेवी जी का एक फोटो था। उसकी ओर संकेत कर मैंने कहा 'देखिए यह आपका फोटो है। पर आपकी सूरत से बिल्कुल नहीं मिलता।"

"मुझे तो पता नहीं भाई।'

इसी तरह सब पत्र-पत्रिकायें देख कर एक ओर रख दीं। मैं एक पत्रिका देख रहा था। महादेवी जी एकदम बोल पड़ीं—

"कितना सुन्दर बादल है ?" मेरी और डाक्टर साहब की दृष्टि एकदम उधर खिंच गई। बात यह थी कि छिपते हुए सूर्य की अरुण रश्मियो ने गगा के उस पार क्षितिज पर लटके हुए मेघो को गुलाबी और स्वर्णिम बना दिया था। उनमे भी एक बादल तो बहुत ही सुन्दर लग रहा था। उसी की ओर सकेत कर महादेवी जी ने कहा था। मैं भी उस ओर देखता ही रह गया।

"इसको Paint करती। ' पर आखें " इतना कह कर चुप हो गईं। उस समय उन्हें कितनी व्यथा हुई होगी, इसका कोई अनुमान नही लगा सकता। यहाँ ससद् मे रह कर इस सुहावनी पावस ऋतु के प्राकृतिक सुन्दर दृश्यो को देख कर मिलने वाली प्रेरणा को चित्रो मे परिणत न कर सकने की असमर्थता पर नही, बल्कि विवशता पर, सचमुच उन्हें बहुत ही दु ख होता होगा। कुछ क्षणों तक व्यथामय निस्तब्धता रही। मैंने आकाश की ओर देखा। सूर्य बादलो के पीछे से अस्ताचल को जा रहा था और सध्या उमडती आ रही थी।

अब महादेवी जी ने उस दिन का लीडर उठाया। उसमे सबसे पहले मोटी Head line थी Pakistan forces invade India एक दम पढते ही महादेवी जी के मुँह से निकल पडा "अरे " हम लोगो को हँसी आ गई, क्योंकि बात यह थी कि जिस बहुत छोटी सी बात को पत्रिका ने किसी कोने मे छापा था Leader ने व्यर्थ की इतनी Impor ance दे दी थी। कुल 100 आदमियो ने दो-तीन Border के गावों मे लूट मार की। इधर के Troops गये और उन्होने उन सब को गिरफ्तार कर लिया। यह बात डाक्टर साहब ने बतलाई तो महादेवी जी बोली, "अब ऐसा तो होगा ही, क्योकि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के बीच कोई प्राकृतिक सीमा रेखा तो है नही।"

"हाँ, कोई China wall जैसी Great wall बन जाये तब तो अलग हो भी सकते हैं, नही तो प्राकृतिक रूप से तो हिन्दुस्तान-पाकिस्तान एक ही है", मैंने कहा। फिर बाउण्ड्री कमीशन के Award पर बातचीत होती रही। पजाब के दगे अभी शान्त नही हुये न ? इसलिए उसकी खबरो से महादवी जी विशेष व्यथित और क्षुब्ध हो गई। बोलीं, "किसी सभ्य युग मे एक जाति दूसरी जाति पर इतने अत्याचार करती है, पता नहीं। इनका कब अन्त होगा, पता नही गाधीजी को भी क्या हो गया है। कलकत्ते में पडे हैं, पजाब नहीं जाते।"

"हाँ, अब तो उन्हे पजाब चले जाना चाहिये। कलकत्ते मे उनकी अब इतनी आवश्यकता नही" मैंने कहा। फिर मैंने दूसरी बात उठायी "ये मुसलमान बहुत से Converted Hindus हैं, तो क्या अपने पुराने सस्कारो का इनमें लेश मात्र भी नही रह गया ?"

"ये क्या, कोई इनके बाप दादा मुसलमान हुए होगे। बस उन्ही तक कुछ सस्कार

रहे होंगे और अब जो बगाल मे गाँव के गाँव मुसलमान हो गए है। इस बीच के Converted Muslims और भी भयकर होंगे क्योकि हिन्दू जाति के प्रति अब उनके मन म एक घृणा हो गई होगी कि यह ऐसी जाति है कि हमारी रक्षा नही कर सकी। महादेवी जी एक स्पष्ट विषाद म डूब गईं। कुछ क्षण बाद केवल उनके मुख से यही निकला कि हम लोग यहाँ शांति से बैठ हैं। हम कुछ करना चाहिए। इतना कह कर वह चुप हो गईं और किन्ही विचारो म खो गईं। इसी बीच उनके मुख पर गहरी विषाद की रेखायें दिखाई दी और विलीन हो गईं। एक दो मिनट तक कोई किसी से नहीं बोला। अब तक विषाद की छाया सा हल्का अधकार भी वसुधा पर छा गया था।

फिर कुछ इधर उधर की बात हुई। महादेवी जी आपको याद कर रही थी। मैंने आपकी सदस्यता की बात पूछी तो कहने लगी उन्हे अपनी सदस्यता म भी कुछ सन्देह है क्या? हमने तो उन्हे स्वय निमंत्रित किया था। और भी बातें हुई पर मुझ ऐसा लगता है कि अब आपको यहाँ आना ही होगा। इस समय मुरादाबाद में नहीं इलाहाबाद म आपकी आवश्यकता है।

महादेवी जी ने नौकर को बुला कर कहीं से दूध लाने के लिए कहा और एक दूसरे नौकर से चाय का पानी पकाने के लिए। फिर बोली अब अधेरा हो गया है, अन्दर चलो। हम लोग वहाँ से उठे। मैंने चादर उठा ली और अन्दर एक बड़े कमरे म जिसमें महादेवी जी रहती हैं आये। वे चाय के लिए बाहर चली गईं। म उनके कमरे म घूमता रहा। हाँ एक ओर एक कालीन बिछी थी। उस पर बैठ कर पढने का एक डेस्क था। वहाँ एक प्रति साहित्य सन्देश की रखी थी और एक प्रति विश्व वाणी की और उस पर एक चश्मा रखा था। शायद महादेवी जी ने अब चश्मा ले लिया है जिसे लगा कर कुछ पढती हैं। एक आलमारी म उनकी खद्दर की धोतियाँ तह की हुई रक्खी थीं और उसके दूसरे खाने म एक ऋग्वेद की हिन्दी भाषा वाली जिल्द थी जिसे शायद महादेवी जी ने पढते पढते वहाँ रख दिया था। वहाँ के वातावरण को देखकर मुझ तो विश्वास है अब महादेवी जी हिन्दी साहित्य को कोई अमूल्य भेंट अवश्य देंगी।

थोडी देर म महादेवी जी आ गईं। आते ही उन्होने Table fan खोल दिया और हम लोग कमरे के बीच म बिछी हुई कालीन पर बैठ गये। इतने म भक्तिन आ गई। मैं भक्तिन से बात करने लगा—

भक्तिन अच्छी हो?

हाँ हाँ ठीक हूँ अपनी भाषा म बडी सरल और मुक्त हँसी हँसते हुए उसने उत्तर दिया। फिर मैंने पूछा

अभी कितने दिन और जिआगी? बड़े विश्वास के साथ उसने उत्तर दिया

"बहुत दिन।" फिर महादेवी जी बोली, 'पंत जी ज्योतिष भी तो जानते हैं न। वे भक्तिन को बतला गये हैं 73 साल जियेगी।" इस प्रकार हम सब लोग हँसते रहे।

मैंने कहा, "पंत जी कोमल बहुत हैं। कोई एक बार पहले पहल देखने वाला समझ सकता है कि यह कोमलता कृत्रिम है। हो सकता है शुरू शुरू में कृत्रिम रही हो, पर अब तो स्वभाव बन गया है। चलने फिरने में, उठने बैठने में, यहाँ तक कि बातचीत में भी वे इसे नहीं छोड़ पाते। कविता पढ़ते समय स्वर और लय के साथ उनके अंगों का संचालन एक अद्भुत सौन्दर्य ला देता है। आज सुबह मैं गया था। उनकी एक कविता है 'अगुंठिता'। उस पर बातचीत चल पड़ी तो बोले, 'अगुंठिता' एक स्त्री जिस के मुख पर अवगुंठन नहीं, जिसे सब जानते हैं " मैंने अभिनय करते हुए कहा। सब हँसने लगे।

महादेवी जी बोलीं, 'यह तो उनका स्वभाव ही है।"

"नहीं, मुझे तो आश्चर्य इस बात का है कि इस कठोर युग में वे इतने कोमल कैसे रह पाये हैं और इससे भी बड़ा आश्चर्य इसमें है कि देखने पर ऐसा पता लगता है कि इस कठोर युग ने उन पर कोई अपनी छाप भी नहीं छोड़ी है।" मैंने पूछा।

'पंत जी ने इस युग की कठोरताओं को स्वीकार ही नहीं किया। उनको उनके आगे नतशिर ही नहीं होना पड़ा। निराला उन कठोरताओं में पिस गये। अपने में ही टूट गये। यह सब इसलिए कि निराला ने विवाह किया था, उनका गृहस्थ था, पर वे, व्यवहारिक तनिक भी थे नहीं। व्यवहारिक तो पंत जी भी नहीं हैं, पर उन्होंने विवाह नहीं किया और गृहस्थी का भी कोई भार नहीं था, इसलिए वे युग की कठोरताओं से बच गये।'

"मैंने आज पंत जी से पूछा था कि आपने विवाह क्यों नहीं किया ? आया कि मुझे पूछना नहीं चाहिए था पर मैंने पूछ ही लिया। बाद में मुझे बहुत पछतावा हुआ, क्योंकि पंत जी को भी यह अच्छा नहीं लगा था।"

"ऐसा प्रश्न नहीं पूछना था। इस प्रकार नासमझी का विज्ञापन नहीं करते' महादेवी जी ने हँसते हुए स्नेहमय ढंग से जैसे समझाया करते हैं उस प्रकार कहा।

"नहीं यह बात नहीं। बात ही ऐसी आ पड़ी थी। मैंने सोचा था पंत जी Formal नहीं होंगे। पर जैसे ही हम लोग बैठे और इसके पूर्व कि कोई बात शुरू होती पंत जी बोले, 'कहिये क्या काम है ?' मैं सन्न रह गया। क्या काम बताऊँ ? मैंने कहा, 'वैसे ही बातचीत करनी थी।' बोले 'क्या बातचीत करनी है ?' मुझे कुछ भी नहीं सूझा कि क्या बताऊँ। तुरन्त ही उनकी 'अगुंठिता कविता याद आ गई। उसमें मुझे कुछ स्पष्ट समझ में नहीं आया था। पंत जी ने उसमें कहा है कि देह और स्नेह साथ साथ नहीं चल सकते हैं। उनका यह भी कहना है कि स्नेह देह

के बिना भी चल सकता है। यह आवश्यक नही कि देह के साथ ही स्नेह चले। तब मेरे मन मे यह बात उठी कि पत जी का कोई ऐसा सिद्धान्त तो नही कि जिसके अन्तर्गत विवाह न आता हो।"

"ऐसा कोई सिद्धान्त तो पत जी का नही। बात यह है कि उन्हे कोई उपयुक्त साथी नही मिला। और कोई साथी मिल भी जाता तो उसे साथ लेकर वे जीवन का सघर्ष नहीं कर सकते थे। उन्हे भी निराला की तरह पराजित होना पडता।" महादेवी जी ने कहा।

"अब भी तो पत जी को अपने लिए सघर्ष करना पडता होगा।" "हाँ, पर पत जी व्यावहारिक नही है। व्यावहारिक तो सबसे अधिक मैं ही हूँ" महादेवी जी ने कहा।

"यह बात आपके साथ अच्छी ही है" मैंने हँस कर कहा।

हमारे देश मे पत जी जैसे महान् कलाकार को भी यदि जीवन की सब सुविधाये प्राप्त न हो, अर्थाभाव के कारण यदि उन्हे भी कभी कष्ट उठाना पडे तो सचमुच यह इस देश का और इस देश के हिन्दी भाषा-भाषियो का दुर्भाग्य ही है।

सुबह पत जी से हुई भेंट की बात उठाते हुए डाक्टर साहब ने कहा, "पत जी कुछ सतर्क हो गये थे। इधर उधर की बातें करते रहे।"

"नही, पत जी बहुत अच्छे है" महादेवी जी ने कहा।

"यह बात तो है ही। पर उन्होने 'ग्राम्या' के बाद जो लिखा है वह अच्छा ही है। 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' उनकी बहुत सुन्दर पुस्तकें रहेगी। इनमे उनकी विचारधारा बडी ही Balanced मालूम होती है" मैंने कहा।

"हाँ, अब ठीक मार्ग पर आ गये हैं।"

"पर एक बात जरूर है। इधर की कविताओं मे चिंतन-पक्ष अधिक हो गया है और भाव-पक्ष कम।"

अब तक नौकर चाय ले आया था। महादेवी जी ने उससे दालमोठ और बिस्कुटो का डिब्बा लाने को कहा। और फिर पहले सूत्र को जोडती हुई बोली—

"आरम्भ की लिखी हुई चीजो मे भाव पक्ष कुछ अधिक रहता ही है, बाद मे चिंतन-पक्ष की बहुलता हो जाती है। यह बात कुछ उम्र पर भी निर्भर करती है।"

"पर टैगोर की 'गीताजलि' मे देखिए कि दोनो पक्षो का कितना सुन्दर समन्वय है" डाक्टर साहब ने कहा।

'भाई, टैगोर जैसा व्यक्ति तो कोई कभी युगो में कही एक पैदा हो जाता है।

उनमे तो दर्शन, भाव, कल्पना, संगीत, सभी का अद्भुत सम्मिलन था" महादेवी जी ने कहा।

"अन्तप्रेंरणा से जो भी लिखा जाता है उसमे ऐसा ही रहता है। उसमे नीरसता नही आ पाती। 'बच्चन' जी की 'निशा निमन्त्रण' बहुत अच्छी है, 'मिलनयामिनी' भी बहुत अच्छी रहेगी, क्योकि दोनो के पीछे एक शक्तिशाली प्रेरणा थी, पर 'बच्चन' जी का 'हलाहल' मुझे बिल्कुल अच्छा नही लगा। उसमे तो ऐसा लगता है कि गद्य मे तुकें जोड़ कर पद्य बना दी हैं। और इसी तरह 15 अगस्त को स्वातन्त्र्य का आव्हान करते हुए उन्होने एक कविता सुनाई थी। बहुत साधारण कोटि की कविता थी वह। वैसी कविता कोई कलम पकड़ने वाला भी लिख सकता है। जब स्वतन्त्रता-दिवस से उन्हे कोई प्रेरणा नही मिली थी, तो उन्होने वह कविता क्यो लिखी? हमे तो उस दिन कोई कविता लिखने जैसी प्रेरणा नही मिली थी।" अब चाय ठंडी होती जा रही थी और ठंडी चाय किस काम की। मैंने चाय बनाने का उपक्रम करते हुए हाथ बढाये और महादेवी जी ने पहली बात को समाप्त करते हुए कहा "बच्चन जी लिख तो रहे है पर वे व्यक्ति तक ही सीमित रह गये।" मैंने अपने हाथ पीछे खींच लिये। डाक्टर साहब ने कहा—

'हाँ, पन्त जी कोई गम्भीर चीज नही लिख सकते उनके अन्दर का कवि अभी दार्शनिक नहीं हुआ।"

"महान् कलाकार होने के लिए व्यक्ति माध्यम हो सकता है, लक्ष्य नही" महादेवी ने कहा। इधर मैं चाय के लिए लालायित हो रहा था, क्योकि सबसे अधिक भय ठंडी हो जाने का था। जैसे ही मैंने हाथ बढाया तो बोली, "बस चुपचाप बैठे रहो। मैं बना रही हूँ। अभी मिल तो रही है।" मुझे बडी जोर की हँसी आ गई। डाक्टर साहब भी हँस पड़े। मैं फिर चाय बनाने मे सहायता देने का उपक्रम करने ही वाला था कि बोलीं, "इतनी परेशानी क्यों है?"

सुन्दर कलर वाला पानी उन्होने चाय के प्यालो मे उडेला। मैंने कहा, 'चाय से मुझे बड़ा प्रेम हो गया है।" महादेवी जी हँसती हुई बोली, "तुम्हे और कुछ नही मिला?" इस पर तो बहुत ही हँसी आई। वातावरण बिल्कुल बदल गया था। गम्भीर वार्तालाप के बाद ऐसा वातावरण बहुत अच्छा लगता है। हम लोग चाय पीते रहे। डाक्टर साहब बोले, "यहाँ आप एक दो गाय और रखिये। बिल्कुल प्राचीन ऋषि मुनियों का सा आश्रम हो जायेगा।" मैंने डाक्टर साहब की ओर मुड़कर कहा—

"तो क्या आपका इरादा चाय से दूध पर उतरने का है।" सब हँस पड़े। मैंने कहा, "नही जी, एक बकरी ही ठीक है। उसके दूध से चाय बन जाया करेगी।"

'बकरी तो मै रखूँगी नही, क्योकि वह जल्दी ही अपने परिवार से पूरे ससद्

को मर देगी और बकरी के बच्चो को मैं बेच सकती नही, क्योकि Slaughter House म हो उनके लिए स्थान है।" फिर ऐसी ही हल्की फुल्की सुन्दर बातचीत होती रही। अब साढे आठ बज गये थे। घडी तो वहाँ नही थी, पर अनुमान से यही समय होगा।

हम घर को चलने लगे। जैसे ही कमरे से बाहर आये तो बाहर घोर अन्धकार था। यह देख कर महादेवी जी बोली, "कितना अधेरा है। अच्छा रुको। टार्च लाती हूँ। अपनी आलमारी मे मे ढूँढ कर टार्च लाई। फिर हम वहाँ से घोर अन्धकार मे सडक के छोर तक जहाँ प्रकाश था, चले। हम लोग पगडन्डी पर चले जा रहे थे और महादेवी जी उस अन्धकार मे अपनी टार्च से मार्ग दिखा रही थी। थोडी दूर चलकर मैंने कहा "देखिए अन्धकार मे गगा जी कैसी लग रही हैं।"

"ऐसा लगता है अब तो बालू का तट यही है।"

हम और आगे चले। अन्धकार के समुद्र को पार कर कुछ हलके प्रकाश के तट पर आये। मैंने कहा, "अब आप लौट जाइये। हम चले जायेंगे।" हमने प्रणाम किया। उन्होने भी हाथ जोडे और तुरन्त ही अंगुली उठाकर बोली, "देखो चाँद कितना सुन्दर है।' हमारी आँखें उधर ही खिच गईं। कुछ श्यामल बादलो के साथ हँसियाकार चौथ का चाँद आँख-मिचौली खेल रहा था। सफेद हलके रुई के टुकडो स बादल उस चाँद बेचारे की क्षीण प्रभा को ढक कर उडे जा रहे थे।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

39

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
31 / 8 / 47

आदरणीय 'मानव' जी,

इस बीच एक दिन मैं यहाँ की एक साहित्यिक सस्था परिमल की At Home party मे निमन्त्रित था। वहाँ के सम्माननीय अतिथियो मे थे श्री सुमित्रानन्दन पत। सौभाग्य से मैं उनके दायीं ओर बैठा था और उनके बायीं ओर थे श्री केमिल बुल्के- एक डैनमार्क के युवक जो यहाँ हिन्दी में रिसर्च कर रहे हैं। आज पत जी से heart to heart बातचीत हुई, पर फिर भी ऐसा लगा जैसे वे कुछ खोये से रहते हैं। मैंने उनके 'लोकायन' की योजना के विषय मे पूछा था। कहने लगे, "अभी तो मुझे ही कुछ मालूम नहीं कि क्या होगा।" मैंने उनके लिए चाय बनाई। चाय मे दूध जितना average आदमी पीते हैं उतना ही डाला था, पर पत जी क लिए वह अधिक था इसलिए वह प्याला बुल्के साहब को दे दिया। उनके लिए दूसरा प्याला बनाया गया जिसमे दूध नाममात्र को पडा था। पत जी सिगरेट भी पाते हैं।

पत जी पैंट पर खुले गले की शर्ट पहनते हैं। सिल्क उन्हें अधिक पसन्द है। जब तक पत जी मेरे पास बैठे रहे, मैं उन्हें पखे से हवा करता रहा, क्योंकि आज बिजली खराब थी। सचमुच कोई और व्यक्ति होता तो हवा करते करते मन ऊब जाता, हाथ थक जाते, पर उस दिन इन दोनो मे से कुछ भी नही हुआ। मैं उन्हें पखा करता रहा और देखता रहा कि उस हवा मे उनके सुनहरे रेशमी बालो के लच्छे कैसे उड रहे थे। जब कभी बाल उड कर उनकी दृष्टि को अवरुद्ध कर लेते थे तो बडी कोमलता से हाथ उठा कर वे उन्हें एक ओर कर देते थे। चश्मा लगा लेने पर पत जी विशेष सुन्दर लगते हैं। हिन्दी साहित्य के जीवित कलाकारो मे शरीर मे सब से सुन्दर हैं पत और मन की सबसे सुन्दर हैं महादेवी।

पत्र की प्रतीक्षा मे

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

40

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
1 / 9 / 47

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका 28/8 का पत्र कल सध्या को मिला। उस समय मैं और राम प्रसाद भटनागर साहित्यकार ससद जाने वाले थे। पत्र मिल जाने पर ऐसी ही प्रसन्नता हुई जैसी किसी चिर प्रतीक्षित वस्तु को पाकर होती है। प्रतीक्षा का भी जीवन मे कितना महत्व है! प्रतीक्षा का दुख कहूँ या सुख, एक भिन्न प्रकार का ही होता है।

हम साहित्यकार ससद गये। देखा गगा मे पानी बहुत आ गया है। जान्हवी ने बढकर ससद क चरण स्पर्श कर लिये हैं। यदि कुछ और जल बढ गया तो फिर हम लोगो के आने जाने का मार्ग रुक जायगा। सामने इतना अपार जल प्रवाह देखकर मन एक अज्ञात उल्लास से नाच उठता है। क्षितिज पर लटके हुए सध्या के रगीन मेघ ऐसे लगते हैं जैसे अन्तरिक्ष की विस्तृत पलको मे कोई रगीन महा स्वप्न हो। इन बिल्कुल बोलते हुए से, सजीव से, सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों को देखकर मुझे लगता ही नहीं, विश्वास भी होता है कि ईश्वर जैसी कोई महा सत्ता है, नही तो फिर यह सब कौन बना गया?

महादेवी जी ससद की भूमि से मिले हुये एक देव मन्दिर की उच्च पीठिका पर खडी हुई कुछ व्यक्तियो को विदा दे रही थी। हम उनके पास गये, भटनागर साहब का परिचय करा दिया। इतनी देर मे कुछ महोदय आ पहुँचे, वे यहाँ की म्युनिसिपैल्टी के शायद कुछ थे। महादेवी जी उनसे कुछ बातें करनी लगी, जिनका साराश ससद के सामने का मार्ग पानी से अवरुद्ध न हो, यह था।

इसी बीच मैं भटनागर साहब को इधर उधर घुमाने ले गया। उन्हें पूरी संसद की बाह्य भूमि दिखलाई। भवन नही दिखा सका, क्योंकि वहाँ आज महिला विद्या-पीठ की छात्रायें आई हुई थी। हम लोग घूमते रहे। रात होने को आ गई थी अत हम लौट कर महादेवी जी के पास आए तो देखा दो नौकाओं मे सब छात्रायें बैठ रही थी और महादेवी जी ऊपर खड़ी-खड़ी निरीक्षण कर रही थी।

हम उधर गए। ऊपर चढ कर मैं इधर उधर देखने लगा। पूर्व मे सोने की थाली सा चांद ऊपर आ गया था। महादेवी जी कह रही थी, 'देखो, एक नाव मे ही सबकी सब भर गई हैं।"

"आप नही जायेंगी?" मैंने पूछा।

"पहले उन्हे, ठीक तरह से बिठा आऊँ।"

हम बीस पच्चीस मिनट तक इधर-उधर घूमते रहे। फिर नीचे घाट पर जाकर देखा तो वहाँ कोई भी न था। सामने दूर पूर्णिमा की शुभ्र ज्योत्स्ना से झिलमिलाती हुई बीच धार मे दो नौकायें चली जा रही थी। समस्त वातावरण शान्त और निस्तब्ध था।

मन मे नौका विहार की एक अदम्य भावना जगी। एक खाली नौका किनारे पर थी भी, पर दोनो मे से किसी के पास भी पैसा न था। मन मार कर हम घर की ओर चल दिये। चारो ओर चाँदनी छिटकी हुई थी, पर मैं यही सोचता जा रहा था कि यह चाँदनी तारकूल की काली सडक पर चलने के लिए नही हैं, बल्कि जल की चाँदी सी सडक पर अपनी छोटी सी डोंगी लेकर जाने के लिए है—दूर बहुत दूर, जहाँ ससार की यातनाओ का आभास मात्र भी न हो सके।

हम घर की ओर लौट रहे थे। प्यास लगी। रसूलाबाद मे एक मियाँ साहब का घर दिखाई दिया। उनके यहाँ एक बूढे मियाँ कुयें से उसी समय पानी लाए थे। हम उनके घर गए। उनमें से एक मियाँ बोले, "अन्दर आकर बैठ जाइये।" हम अन्दर बैठ गये। उसने अपनी आठ साल की लड़की से गिलास मे पानी देने के लिये कहा। मैं पानी पीता रहा और उस बच्ची की ओर देखता रहा। मन मे स्नेह उमड आया। ऐसी भावना मन मे जगी कि उस बच्ची को खीचकर गोदी मे बिठा लूं और उसके माथे पर स्नेहमय चुम्बनो की बरसात-सी कर दूं। आज राखी पूनो थी। सुबह से ही मेरे मन मे एक भावना जगी थी कि मेरी कोई छोटी बहिन नही। इस समय यही भावना ऐसी परिस्थितियो में करुण रूप लेकर फिर जाग उठी। क्या अच्छा होता यह मेरी छोटी बहिन होती! वे मुसलमान है और हम हिन्दू है। तो क्या सम्बन्धो को भी जाति की सीमा चाहिए? जब एक बार मैंने अपने गाँव वाले घर की महतरानी को भगते की माँ कह कर पुकार लिया था तो मेरी अम्मा जी चिल्लायी थी, "एम नथी कहता, ए तो ताई छे. ताई कहवुं जोइए।" (ऐसा नही कहते, ये तो ताई हैं, ताई कहना चाहिए।) वह सब क्या झूठ था? और हमारे घर के पास एक

मुसलमान फकीर साई रहता था, वह ईद के दिन अम्मा को मेरे लिए सूखी सिवैयें चीनी और दूध क्यो दे जाया करता था ? क्या इसीलिये कि तीसरे चौथे दिन जब वह माँगने आता था तो मैं उसे कटोरा भर चून दे दिया करता था और वह सिर पर हाथ फेर कर कहा करता था, "बेटा। जीते रहो।" नही यह बात नही। शायद वे कुछ सम्बन्ध ऐसे थे जो जाति विशेष की सीमा से परे हैं, जो मानव मानव के पारस्परिक व्यवहार की भित्तियो पर आधारित हैं, जो मन मन की आतरिक-सूक्ष्म भावनाओ से कसे हैं।

मेरा मन बार-बार यही करता है कि आपके पास चला आऊँ। मैं एक कामरेड की तरह आपके साथ दिन भर काम करूं, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हो। आपके महान् यन्त्र मे यदि मैं कभी किसी कल पुर्जे की तरह भी फिट हो सका तो मैं उसे अपना सौभाग्य ही समझूंगा।

जब कभी भी मैं महादेवी जी के पास जाता हूं, पूरे समय आप याद आते रहते हैं। हां, शरीर से तो नही, पर भाव से आप सदा ही वहाँ रहते हैं। कितनी बार एसा Co incidence हुआ है कि मैं इधर उनसे बातें कर रहा था और उसी समय आप मुरादाबाद मे यह सोच रहे थे कि मैं इस समय वहाँ गया हूंगा। यह क्या बात है ? आपने एक बार बताने के लिए कहा था। इस बार बताइयेगा न ?

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

41

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
6/9/47

आदरणीय 'मानव' जी,

आपके 2/9 और 4/9 के पत्र क्रमश परसो मध्यान्ह और कल सध्या को मिले।

अब से तीन चार साल पहले मेरा यह स्वप्न था कि मैं किसी दिन एक पत्र का सम्पादक होऊँ। पर फिर सम्पादकों की गरीबी देखकर मन हटता गया, क्योकि मेरे मन में बचपन मे ही गरीबी के प्रति विद्रोह रहा है और अब भी है। गरीबी से निकलने के लिए तो अब भी सघर्ष करना पड़ेगा हो। पता नही यह सघर्ष कैसा होगा, यही सोचकर कभी कभी मन घबरा उठता है।

अब हिन्दी का भविष्य बहुत उज्जवल है, ऐसा लगता है, अत सम्पादकों की दशा सुधरेगी ऐसी आशा है। एक स्वतन्त्र देश मे किसी पत्र का सम्पादक होना एक महान् गौरव की बात ही होनी है।

महादेवी जी को तो आपको प्रथम अक से ही पत्र भेजना था। अब दोनो अक भेज दीजियेगा। साधारण पत्र मले ही हो, पर वह आपका तो है और फिर पत्र की ऊपरी सुन्दरता से उन्हे क्या लेना ? सकोच न कीजिये।

आप थीसिस के काम को छोडियेगा नही। मुझे तो पक्का विश्वास है कि ससद् मे रहने पर आपका शेष काम दो महीने में पूरा हो जाएगा। इतनी बडी चीज के लिये यदि आप इतना समय दे सकें, तो बहुत अच्छा रहेगा। मुझे ऐसा लगता है कि थीसिस का काम इस वर्ष हो गया तो हो गया, नहीं तो फिर होगा नही। ना करने की तो बात ही नही उठती। जैसा आपको अपने साधारण पत्र पर सकोच है ऐसा ही सकोच उन्हे भी था। वे कह रही थी कि अभी जगल मे क्या बुलाऊँ। कुछ ठीक-ठाक हो जाए तो फिर बुलाऊँगी।

जब आपके मन मे इस समय आने की बात उठी है तो आइये न। यहाँ सब आपको याद करते हैं। तो फिर कब आइएगा ?

शकुन्तला जी का पत्र आया था। उन्हें 'विजय' की प्रति मिल गई है।

आपने आकर्षण की बात लिखी। निस्सदेह आकर्षण एक महान् शक्ति है, यदि आकर्षण हो। कभी कभी मैं सोचता हूँ जिस समय हम किसी व्यक्ति विशेष के विषय मे स्वप्न देखते होगे, तो उसे भी तो कुछ होता होगा ? कभी मैं आकर्षण के इस रहस्य की स्वय विवेचना करने लगता हूँ। सोचता हूँ बहुत सी वीणायें हैं वे सब एक ही Dune मे attuned हैं तो फिर एक को झकृत करने से पास वाली वीणायें स्वय झकृत हो उठती हैं। ऐसी ही बात हृदयो की होगी, प्राणो की होगी। यदि प्राण प्राणो से बधे हुये हैं हृदय हृदय से मिला हुआ है तो एक हृदय की झकार, एक प्राण की पुकार, दूसरे हृदय तथा प्राण तक नही पहुँचती होगी ? अवश्य पहुँचती होगी। इसी बल पर मेरा विश्वास है कि अपना व्यक्ति कितनी ही दूर क्यो न हो और मन के भावो के आदान-प्रदान के सभी साधन समाप्त क्यो न हो गये हो, पर फिर भी अपनी बात अपने आदमी तक पहुँचायी जा सकती है। कभी हम बैठे बैठे ही अकारण आकुल हो उठते हैं, सहसा व्यथा मे डूब जाते हैं, अपने आप मुस्करा उठते हैं हँस उठते हैं, गा उठते हैं। यह सब क्या है ? अपने आदमी की तीव्रानुभूति की लहरें बिखर पडी होगी। उन लहरो से हमारे एक लय मे मिल प्राण यन्त्र को अन्तर्चेतना सिहर उठती है। यह अकारण व्यथा, उदासी, मुस्कान आदि उसी की बाह्य अभिव्यक्तियाँ हैं।

मैंने महादेवी जी को माँ कहा है और माँ का यह सम्बन्ध मेरी ओर से मन का सम्बन्ध है। मैं इस बात मे भी विश्वास करता हूँ कि मन मे जैसी बात हो, व्यवहार मे भी वैसी ही आनी चाहिए। पर बातचीत मे दो व्यक्तियो को एक ही स्तर पर उतरना पडता है। जहाँ बातचीत करने वाले व्यक्ति दो भिन्न-भिन्न स्तरो पर हैं, वहाँ बातचीत नही हो सकती। इसी से कभी कभी ऐसे प्रश्न कर बैठता हूँ जो सामान्य रूप से मुझे नही करने चाहिए थे।

हो सकता है मैं उनके बहुत से विचारो से सहमत न होऊँ, पर फिर भी जिस रूप मे मैंने उन्हे देखा है, उसकी गरिमा के निर्वाह मे कभी कोई कमी नही आयेगी। आप विश्वास रखें।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

पुनश्च 'विजय' के लिये जो कुछ भी यहाँ मिलता रहा करेगा, भेजता रहा करूँगा। सामाजिक तथा राजनीतिक लेख लिखने वाले यहाँ कम है, फिर भी मैं प्रयत्न करूँगा।

पत्र हम दोनों का है, मैंने तो यही सोचा है और ऐसा लगता भी है। आपने सहकारी के रूप मे नाम देने की बात लिखी। मेरे और आपके बीच नाम की बात उठती ही नही।

नागर

42

30 ए बेली रोड
इलाहाबाद
13/9/47

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका 9/9 का पत्र परसो सध्या को मिल गया था। आप आजकल मानसिक रूप म क्षुब्ध हैं, यह जानकर मन व्यथित हो उठा।

जब पीडा के भरे-भरे मेघ हृदयाकाश को इस प्रकार आच्छादित कर दें तब तक ऐसा कोमल साथी अपने पास होना चाहिये जिसकी एक हलकी सी मुस्कान उन मेघो को भेद कर जीवन को इन्द्र धनुषी बना दे, पर कहाँ मिलता है ऐसा साथी ?

भटनागर साहब ने मुझसे यह बात कही थी कि अब मुरादाबाद से मानव जी का मन ऊब सा गया है। वहाँ कोई भी आदमी ऐसा नहीं जिससे बात की जा सके। तभी से मैं बराबर आपको इलाहाबाद आ जाने के लिये लिख रहा हूँ। आप आते क्यो नही ?

कल श्रीमती सरोजिनी नायडू आई थी। यह महिला आन्तरिक सौंदर्य और बाह्य कुरूपता का अद्भुत सम्मेलन है। ऐसी सुन्दर वक्तृता मैंने जीवन मे कभी नही सुनी थी। ये अब वृद्ध हो गई हैं। सिर के बाल पूरी तरह सफेद होने को आ गए हैं। शरीर की त्वचा भी ढीली पडती जा रही है। पर इनके अन्दर एक कोकिल कठ निहित है। मैं समझता हूँ कि उस पर काल का प्रभाव नहीं पड़ा, यद्यपि लीलावती मुन्शी ने अब स दस साल पहले उनके रेखा चित्र में यह लिखा है कि इनकी आवाज अब वैसी नही रही, जैसी पहले थी। आज भी इतनी मधुर आवाज सुनकर मैं

कल्पना नहीं कर सकता कि पहले वह कैसी रही होगी। लगता है कि जैसे वसन्त के एक मधुर प्रभात में जोर से कोकिल बोल रही हो, जैसे कहीं कोई संगीतज्ञ कलाकार मुग्ध होकर सरोद बजा रहा हो ! श्रीमती सरोजिनी नायडू बोलती नहीं, कुहुकती हैं। उन्हें जो भारतवर्ष की कोकिला कहा जाता है वह ठीक ही है। ईश्वर ने ऐसे व्यक्ति को सुन्दर शरीर न देकर अन्याय ही किया है। उनके बोलने से ऐसा पता लगता था कि वे शिष्ट मजाक करने में बड़ी ही कुशल हैं, नकल उतारने में भी खूब निपुण हैं। जब वे बोलती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी अज्ञात प्रदेश से वाणी का कलकल करता हुआ अविरल स्रोत निसृत हो रहा हो।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

43

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
17/9/47

आदरणीय 'मानव' जी,

14/9/47 का पत्र कल सन्ध्या को मिला। आपके लिफाफे के साथ ही दो लिफाफे और मिले जिनमें से एक में अथाह सुख का समाचार था और एक में अथाह दुःख का। उन पलों की अनुभूति मैं तो अवर्णनीय ही कहूँगा। पर फिर भी मुझे ऐसा लगा जैसे कि दम घुट सा रहा हो। आज मुझे महादेवी जी के शब्द रह-रह कर याद आये, "दुःख सुख से अधिक व्यापक होता है, सुख को दुःख के नीचे दब जाना पड़ता है।" केवल याद ही नहीं मैंने इस सत्य का तीव्र अनुभव किया। विश्वसनीय साथी के अभाव में मदिरा के प्यालों में दुःख डुबोया जा सकता है ऐसा मैंने सुना है, पर मैंने तो अब तक अपने मन की क्षुब्धता तथा विषाद को चाय के प्यालों में डुबोने का प्रयत्न किया है। ऐसे अवसर पर मुझे अकेले ही चाय पीना अच्छा लगता है और आस-पास दूर तक कोई आदमी न दिखाई दे तो बहुत ही अच्छा। आज भी मैंने ऐसा ही प्रयत्न किया पर आज मैं चाय भी नहीं पी सका। रोने को मन हुआ, रो भी नहीं सका। हृदय इतनी जोर से धड़क रहा था कि ऐसा लगता था कि यह अपना स्थान छोड़ देगा। पर ऐसा कहाँ हुआ। मैं तो मृत सा अब भी जीवित हूँ।

अबकी बार मेरा इरादा एक सुन्दर सा टी सैट लाने का है पर यही सोच कर मन मुरझा जाता है कि हमारे पास उसकी सी पृष्ठभूमि कहाँ है ?

'आलोक' के विषय में पत्र में भी पढ़ा था और कमल मोहन जी ने भी लिखा था। ठीक है थोड़े ही सदस्य रहेंगे तो ठीक तरह से चलता रहेगा। अधिक होने पर मत-वैविध्य हो जाता है और फिर संगठन की अपेक्षा चीज बिखर जाती है।

क्या करूं, मेरी कोई भी संध्या अच्छी नहीं कटी। दो वर्ष से मेरी प्रत्येक उषा उल्लास लिये आई है और प्रत्येक संध्या अवसाद में मुझे डुबो गई है।

14/9 को चार बजे मैं महादेवी जी के यहाँ गया था। 12, 13 को यहाँ गंगा यमुना में जोर से बाढ आई थी। कहते हैं ऐसी बाढ 1916 में आई थी। गंगा का पानी मेरे घर के सामने वाली सड़क से कुछ दूर मिलने वाली सड़क के नीचे आ गया था। अपने घर के दरवाजे से मैं गंगा जी के दर्शन कर सकता था। जिस समय मैं वहाँ पहुँचा तो इन्जीनियर साहब अपने परिवार सहित इसी समय उस स्थान का निरीक्षण करने आये थे। आज, कल की अपेक्षा दो फीट पानी उतर गया है। पर फिर भी पानी इतने आगे तक आ गया है कि गंगा जी ने ससद् को तीन ओर से घेर लिया है। अब या तो नाव से वहाँ तक जाया जा सकता है या चौथी ओर से चढ कर। पर चढने वाला मार्ग नवागतुक को दिखाई नहीं देता। मैं भी जाकर तट पर खड़ा हो गया था। सोच रहा था नाव से जाऊँगा, पर इसी बीच दातादीन ने आवाज दी, "भैया इस रास्ते से आ जाओ।" उसका मतलब उस चौथे रास्ते से था। मैं उसके साथ वहाँ गया। महादेवी जी इन्जीनियर साहब को बाढ का Highest Water Mark दिखा रही थीं। महादेवी जी अपनी कुटिया वाले प्लॉट की ओर गई। जो बात मैंने कही थी, वही हुई। गंगा की बढती हुई उत्ताल तरंगों ने उसका एक कोना तोड़ दिया था, और साथ में महादेवी जी का लगाया हुआ चम्पा का पेड भी वे बहा ले गई। ऐसा लगता था कि महादेवी जी को कोने के कट जाने का इतना दुःख नहीं था जितना अपनी चम्पा के बह जाने का। आज ही साथ घूमते-घूमते मुझे ऐसा लगा कि उन्हें फूल-पौधों का बड़ा विशद ज्ञान है। शायद ही कोई ऐसा फूल हो जिसका नाम वे न जानती हों।

इन्जीनियर साहब से मेरी बातचीत हुई। वे कह रहे थे कि महादेवी जी की कुटिया के प्लॉट से लगा हुआ नहाने का घाट बनना चाहिये, तभी ठीक रह सकता है। और दूसरे अब ससद् का सिंहद्वार जहाँ महादेवी जी का विचार था, वहाँ नहीं बनेगा, क्योंकि वहाँ तो वह प्रत्येक वर्ष पानी से अवरुद्ध हो जाया करेगा।

थोड़ी देर हम अन्दर बैठकर बात करते रहे। मुझे उस भीड़ में अच्छा नहीं लग रहा था। महादेवी जी की बहिन भी आज सपरिवार आई हुई थीं। थोड़ी देर में महादेवी जी ने दो नावें मंगवाई, और हम नाव में बैठ कर चले। बड़ी नाव में इन्जीनियर साहब, उनका परिवार, मैं, चित्रकार शम्भूनाथ और दूसरे दो एक व्यक्ति बैठे थे। छोटी नाव में महादेवी जी और उनकी बहिन का परिवार। हम चले। महादेवी जी की नाव छोटी थी। वह हमसे आगे ही रहती थी जैसे वह वहाँ भी मार्ग-दर्शन कर रही हों। 50 मिनट तक हम नौका में घूमे। मेघाच्छादित असीमाकाश के नीचे अथाह समुद्र सी गंगा में इस तरह एक महान् कलाकार के सान्निध्य में नौका

मे घूमना कितना अच्छा लग रहा था।

इन्जीनियर साहब के पास छोटा वाला कैमरा था। उससे महादेवी जी वाली नौका के दो Snaps लिए। यदि वे ठीक आ गये होगे, तो इन्जीनियर साहब से मैंने भेजने के लिये कह दिया है।

फिर ससद् भवन मे आकर महादेवी जी ने चाय का प्रबन्ध करने के लिये कहा। इतने मे दो लडके उन्हे निमन्त्रित करने के लिये आ गये। पर महादेवी जी तो 1937 से कही बाहर जाती नही। वे कह रही थी कि भीड मे व्यक्ति को समझा नही जाता हाँ, एक फूल माला अवश्य मिल जाती है।

और जब उन लडको ने यह कहा कि 45 मिनट के लिये ही चली चलियेगा तो कहने लगी, "प्रश्न 45 मिनट का नही। जिस व्यक्ति ने जीवन साहित्य के लिए दे दिया उसके लिए 45 मिनट की बात नही उठती है। प्रश्न सिद्धान्त का है। अभी तो मेरा ऐसा ही निश्चय है और काम भी मेरे इतने पडे हैं कि सोचती हूँ दिन मे 24 घन्टे से अधिक हुआ करते। जीवन के अन्तिम दिनो मे हो सकता है इधर-उधर भिशुक की तरह सभाओ और गोष्ठियो मे ही घूमा फिरा करूँ।"

अब 6॥ बजे गये थे। अन्धकार घिरने लगा था। सब लोग अपने-अपने घर को चल दिये। मैं रुकना चाहता था, पर महादेवी जी कहने लगी कि तुम अकेले कैसे जाओगे ?

मैंने कहा, "मैं चला जाऊँगा।"

"नही भाई, सुनसान सडक है, दिन अच्छे नही, आने की बात तुम्हारी है पर भेजने का उत्तरदायित्व मुझ पर है, 'आत्मन्' के साथ चले जाओ।"

विवश होकर मैंने विदा ली। महादेवी जी की बात उस समय मुझे कुछ बुरी लगी, पर दो क्षण बाद ही यह सोचकर गद्‌गद् हो गया कि उस बुरी लगने वाली बात के पीछे भी कितना स्नेह था, कितना वात्सल्य, और कितना अपनापन।

प्रगतिशील लेखक सघ की किसी भी बैठक मे मैं गया नही। पर प्रगतिशील लेखक सघ मे काफी सगठन तथा जान है, ऐसा लगा। इस अवसर पर इस सघ के सभी स्तम्भ आए थे। आप होते तो सभी बैठको मे जाया जाता।

आपके पत्र के साथ ही 'विजय' का तीसरा अक मिला। उसमे सबसे अच्छा तो मुझे 'सम्पादक के नाम पत्रो का उत्तर' लगा। सुश्री काति त्रिपाठी का गद्य गीत भी बहुत मार्मिक था।

'विजय' के ये अक तो काफी अच्छे है। आपने महादेवी जी को क्यो नही भेजेहैं ?

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
27/9/47

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका 25/9 का कार्ड मिला। डा० रमेश वर्मा सोमवार को अपने गाँव चले गये। उन्हें अपने विषय में बड़ी भारी आर्थिक चिन्ता थी, पर उसी दिन Islamic Culture मैगजीन में उनके अंग्रेजी के लेख के स्वीकार होने की खबर आ गई। वहाँ से उन्हें सौ सवा सौ रुपया मिल जायगा। ईश्वर को जब किसी से कुछ कराना होता है तो उसे ऐसी स्थिति में डाल देता है कि वह पिस तो जाए, पर मरे नहीं।

मैं यहाँ से 7 अक्टूबर को चल कर आठ को मुरादाबाद पहुँचने की सोच रहा हूँ। अभी तो कई दिन हैं। इस बीच दो पत्र मेरे आप को और मिलेंगे और दो आपके मुझे।

आपने अपने परिचितो और साहित्यिक मित्रो के महादेवी विषयक लेखो की सकलित पुस्तक की योजना के विषय मे जो एक बार चाय पर बात उठायी थी, उसका क्या रहा? वह काम इस बीच हो जाये तो अच्छा है।

चाहे आप फिल्म का जीवन ही अपनायें, पर थीसिस का काम तो तब भी होना ही चाहिये। थीसिस का बहुत सा काम तो आप कर चुके हैं। जो अवशेष है वह मैं समझता हूँ जनवरी तक पूरा हो जायेगा। थीसिस का फिल्म से कोई विरोध नही है। यह काम तो आप पूरा कर ही डालिये।

लिखने का काम तो होगा ही, पर सध्या को तो कुछ भी काम नही हो पाता। हाँ, गीत जैसी चीज सध्या को लिखी जा सकती है। सध्यायें तो बैठ कर बातचीत करने के लिये ही हैं। इस बार सध्या-समय क्लब को छोडकर आपसे बातचीत न हो सकेगी, भला यह किस अपराध का दण्ड दिया जा रहा है?

इस शनिवार या रविवार को मैं 'साहित्यकार ससद' जाऊँगा।

सावित्री जी के लिये ट्रक लेता आऊँगा। मनीआर्डर न भेजियेगा। 'रहस्य-साधना' की बिक्री का रुपया मेरे पास है।

आजकल ट्रेन मे सुना है काफी गडबड है। पत्रो के समाचारो से भी ऐसा ही पता लगता है। लिखिये मुरादाबाद नगर का साम्प्रदायिक वातावरण कैसा है?

मैं दो महीने से बँगला पढ रहा हूँ। शरतचन्द्र के उपन्यास बँगला मे ही पढना चाहता हूँ। 'शेष प्रश्न' आपके पास मिल जायेगा क्या?

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
2/10/47

आदरणीय 'मानव' जी,

आज प्रभात मे महादेवी जी के यहाँ गया था। वहाँ से लौटने पर आपका 30/9 का पत्र मिला।

यदि प्रेम को अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती हैं, तो प्रेम कही भी हो सकता है, अपनी शिष्या से भी। प्रेम किया नही जाता, प्रेम हो जाता है, ऐसा मेरा विश्वास है। एक दूसरे को ठीक से समझने का अवसर जितना गुरु और शिष्य को मिलता है इतना और किसी को कदाचित् ही मिलता हो। इसलिए यहाँ प्रेम का पैदा हो जाना और भी अधिक सम्भव है। पर साथ-साथ मेरी धारणा यह है कि प्रेम एक ही व्यक्ति से किया जा सकता है, इसलिए यदि कोई शिक्षक कही एक जगह प्रेम मे पड जाता है और फिर कही दूसरी जगह भी, तो मैं उसे गुंडे के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझता। मैं ऐसे एक दो शिक्षको को जानता हूँ जिन्होने एक से एक सुन्दर लडकियो को पढाया है पर उनमे से एक से ही कही पहले, बीच मे, या बाद मे प्रेम हो गया और उसी की साधना मे उनका जीवन बीत गया। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध रक्त का सम्बन्ध नही, भाव का सम्बन्ध है। भाई बहिन, माता पिता, बाप-बेटा ये स्थूल सम्बन्ध हैं। इनमे से दो सम्बन्ध एक साथ नही चल सकते, पर गुर-शिष्य का सम्बन्ध इनसे सूक्ष्म है। पति-पत्नि भी गुरु शिष्य हो सकते हैं,भाई-बहिन भी गुरु शिष्य हो सकते हैं और प्रेमी प्रेमिका भी। गुरु और शिष्य का मेरी दृष्टि मे केवल इतना अर्थ है कि यदि हमने किसी से कुछ सीखा तो उस क्षेत्र मे वह व्यक्ति हमारा गुरु है, हमे उसके प्रति श्रद्धा रखनी चाहिये। इस प्रकार एक व्यक्ति के जीवन मे पचासो गुरु आ सकते हैं और गुरु के जीवन मे पचासो शिष्य। यह सम्बन्ध तो दोनो ओर के निर्णय पर आधारित है। मान लो एक लडकी मेरी शिष्य है। मैं उसे शिष्या मानता हूँ, पर वह मुझे गुरु नही मानती। फिर यह तो एक ही ओर का निर्णय हुआ। ऐसी अवस्था मे क्या किया जाए ?

आपने 'समाज मे अव्यवस्था' की बात लिखी है। हाँ, सामाजिक दृष्टिकोण से किसी भी आदमी का व्यक्तिगत कार्य, जिसका समाज पर बुरा परिणाम पडता है, वर्जित है। एक शिक्षक या डाक्टर यदि ऐसा काम करता है तो उससे पूरी शिक्षक या डाक्टर जाति पर कलंक लगता है, यह भी मानता हूँ, पर आज का युग व्यक्ति को व्यक्ति की तरह अधिक देखने का है। यदि एक शिक्षक घर-घर की लडकियो को भ्रष्ट करता है, तो केवल उन महोदय को कोई अपने घर पर नही बुलायेगा, न कि शिक्षक जाति पर से ही विश्वास उठ जायेगा।

दूसरी बात आपने 'विश्वासघात' की लिखी है, पर सच पूछिए तो यह विश्वासघात शिक्षकों की और डाक्टरों की प्रेम-कथाओं तक ही सीमित नहीं, बल्कि भारतवर्ष में 99 प्रतिशत प्रेम-कथायें इसी विश्वासघात पर आधारित होती हैं, चाहे वह किसी भी रूप में किया गया हो। हमारे समाज में खुले रूप में प्रेम के लिए स्थान नहीं, इसीलिए हमारे यहाँ की अधिकांश प्रेम-कहानियाँ किसी आवरण के पीछे चलती हैं। एक बार सुमित्रानन्दन पंत ने प्रेम पर बातचीत करते हुए यही बात कही थी कि हमारे यहाँ शास्त्र ने या समाज ने प्रेम को आज्ञा कहीं नहीं दी, हमारे यहाँ प्रेम का देवता कोई नहीं, इस पर मैंने कहा काम देव हैं तो कहने लगे, "वे तो काम के देवता हैं, प्रेम के नहीं।" उनकी बात सच ही है। हमारे यहाँ नारी को प्रेमिका बनने का आदर्श नहीं दिया गया। लड़की को केवल पत्नी बनने का अधिकार है और फिर माता। और तो क्या जिन दो व्यक्तियों का विवाह-सम्बन्ध निश्चय हो गया है पर विवाह संस्कार में एक दो साल का समय है तो उन व्यक्तियों में भी इस बीच प्रेम का व्यवहार ठीक नहीं समझा जाता। हमारे यहाँ यह बात भुला दी गई है कि प्रेम भी मन की स्वाभाविक माँग है। हमारे यहाँ हजारों विघ्नों, हजारों बाधाओं और हजारों नियन्त्रणों के बीच में मार्ग निकालना पड़ता है। डाक्टर और शिक्षक की बात छोड़ दीजिये, पर किसी भी व्यक्ति को यदि घर में आने दिया जाता है तो वह इसलिये नहीं कि वह हमारी लड़की या हमारी बहिन से प्रेम करे, पर सब प्रेम-कहानियाँ ऐसे ही चलती हैं। सभी में भारतीय दृष्टिकोण से विश्वासघात रहता है। इस विश्वासघात की डिग्री में अन्तर हो सकता है, पर और कुछ नहीं। इसलिये इस विश्वासघात का दोष केवल शिक्षकों या डाक्टरों पर ही नहीं लगाया जा सकता, बल्कि जो भी प्रेम करता है उसी पर लगाया जा सकता है।

आपने 'मन के निग्रह' की बात लिखी है। कोई भी तटस्थ व्यक्ति यही बात कहेगा, पर वास्तविकता यह है कि जब दो व्यक्तियों में प्रेम का जन्म होता है तो इससे पहले का स्टेज संघर्ष का स्टेज है। उनके मन में निग्रह की बात आती है, अपने मार्ग की बाधाओं पर ध्यान जाता है, अपनी-अपनी परिस्थितियाँ देखते हैं, सभी बातें सोचते हैं। यह संघर्ष बहुत दिनों तक चलता है। यदि इस संघर्ष को ठीक से पार कर गये तो बिना भीगे हुए नदी पार कर गये, पर यदि पराजय हो गयी तो फिर डूब गये। उस समय डूबना ही अच्छा लगता है, बहुत अच्छा। तब निग्रह की बात मन में नहीं उठती।

जिस व्यक्ति का मन मरा मरा है वह हजार सुन्दरियों के बीच विचरण कर सकता है—निर्भय और निश्चिन्त देवता की तरह, पर जिसका मन मरा हुआ नहीं, उसको सभी जगह भय है। परिस्थितियाँ मिलने पर प्रेम का कहीं भी जन्म हो सकता है। आखिर शिक्षक और डाक्टर भी मनुष्य हैं, यह बात आप क्यों भूल जाते हैं?

आज सुबह सात बजे मैं साहित्यकार ससद् गया था। महादेवी जी अपने कमरे मे बैठी हुई अखबार पढ रही थीं। प्रभात मे समाचार पत्र आज कल के युग का एक आवश्यक साथी हो गया है। मैंने उसके बीच के दो पन्ने ले लिये और देखने लगा। कुछ ही देर बाद महादेवी जी बाहर चली गई। दो ही क्षण बाद लीला आई। बोली, "बाहर बुला रही है।" मैं बाहर उठकर गया। महादेवी जी ने मुस्करा कर कहा, 'देखो भाई हमारी बेल में फूल आ गया।" उन्होने फूल की ओर इंगित कर कहा। भवन के द्वार पर जो बेल उन्होने बहुत दिन पहले लगाई थी, वह अब बडी होकर बहुत ऊपर तक पहुँच गई थी और यह फूल उस पर सबसे पहला फूल था। इस फूल के खिलने पर महादेवी जी के मुख पर एक प्रकार का आह्लाद उमडा पड रहा था। मुझे महादेवी जी की वह बात याद आ गई जो उन्होने 'यामा' की भूमिका मे लिखी है कि जब एक फूल खिलता है तो मुझे ऐसा लगता है जैसे यह फूल मेरे मन मे ही खिला हो। फिर उनकी दृष्टि एक गमले पर गई। उसमे लग हुये पौधे की एक शाखा सूखती जा रही थी। माली से गमला उठा लाने के लिये कहा और देख कर कहने लगी, 'इसकी मिट्टी मे कुछ खराबी है मिट्टी बदल दो।"

लता, फूल, पक्षियों से उनका ऐसा ही नाता है जैसे वे उनके विशाल परिवार के सदस्य हों। वे उन सब के नाम जानती हैं। उनकी बातें समझती है और अपने शिशुओ की तरह ही उनका पोषण करती है, ऐसा लगता है। मैंने कहा, 'Symmetry के लिये ऐसी ही लता इस द्वार के दूसरी ओर लगा दीजियेगा।' कहने लगी—

"यहाँ तो सामने बरामदा बनेगा। यह भी यहाँ से हटानी होगी। कैसे हटायी जायगी ?" जैसे उसे हटाने का काम उनसे नही हो सकेगा, इस प्रकार उन्होने कहा और बात है भी स्वाभाविक ही। जो लता उन्होने लगायी है, उसका हटाया जाना कम से कम उन्हे अच्छा नही लगेगा। फिर हम बाहर उस कुँए के पास वाले ऊँचे चबूतरे पर, जहाँ पहली बार सध्या को बैठे थे, बैठ गये। उसके नीचे ही एक छोटी सी पोखर मे कमल लगा दिये हैं। अभी उन कमलो मे फूल नही आये। अभी केवल जल पर पात ही पात तैर रहे हैं।

'आप तो इस बीच लखनऊ गई थी ? रामदास कह रहा था कि तार आया था।"

' हाँ, सरोजिनी नायडू से मिलना था। उन्होने इधर ही निधि निश्चय कर दी।"

"ससद् के उद्घाटन का क्या रहा ? सरोजिनी नायडू आयेंगी ?"

"हाँ, मैं तो चाहती थी वे आयें, पर वे हिन्दुस्तानी की पक्षपाती है, इसलिये हमारे यहाँ के और लोग नही चाहते। वैसे तो उन्होने हिन्दी म ही बात की। कहीं-कहीं उर्दू के शब्द भी आ जाते थे।'

"उन्हें बुला लिया जाता तो अच्छा ही था। व्यक्तिगत रूप से हिन्दुस्तानी की

पक्षपाती होने दीजिये। पर उनके साहित्यिक व्यक्तित्व मे तो किसी को कोई सन्देह नहीं।"

"हाँ, यदि उनके हाथ से यह काम होता, तो सारे प्रान्त का ध्यान इस ओर आकर्षित हो जाता, पर अपने यहाँ के व्यक्तियो की ऐसी सलाह नही। ठीक है सब काम सबकी प्रसन्नता से ही ठीक होते हैं।" उनकी बात से यही लग रहा था कि महादेवी जी साहित्यकार संसद की सब कुछ हैं, पर फिर भी Dictatorship में विश्वास नही रखती, Democracy मे रखती हैं। मैंने कहा—

"हिन्दुस्तानी का पक्षपात तो उनकी पार्टी की नीति है।"

"हाँ, भाई राजनीति मे तो वीर पूजा चलती है। सरोजनी नायडू गांधी जी के विरुद्ध विद्रोह नही कर सकती। यह तो हम जैसो से ही सम्भव है। हम गाधी जी के भक्त भी हैं, उन पर कविता भी लिखते हैं पर उनका विरोध भी कर सकते हैं। हम से भक्ति म व्यक्तित्व को तो नही मिटाया जा सकता" महादेवी जी ने कहा।

"हाँ, यह बात तो ठीक है। वहाँ तो पार्टी की नीति है। सरोजिनी नायडू तो उस दल की सैनिक मात्र हैं जिसके सेनानी महात्मा गाधी हैं। वह उनका विरोध नही कर सकती" मैंने कहा। कुछ क्षण हम चुप रहे। महादेवी जी बोली—

"इसी के साथ उन्नाव मे निराला जी से भी मिल आयी। पता चला था उनकी मानसिक अस्वस्थता बढ गई है। उन्हें कमरे मे बन्द रखते है। लोगो को मारते-बारते भी हैं। पहले तो वे ऐसा कुछ करते नहीं थे। मैं तो सोचती थी ऐसी दशा मे पहचानेंगे भी नही, पर नही उन्होने पहचान लिया और कोई ऐसी बात भी मुझे तो दिखाई दी नही जो उन्हे बन्द करके रखा जाता। सुमित्राकुमारी जी के पति महोदय का स्वभाव कुछ गरम होगा। निराला जी से कुछ कह दिया होगा, फिर उनके लिये मारने को दौड बैठना कोई आश्चर्य की बात तो नही", हँस कर महादेवी जी ने कहा।

"जब निराला जी को वहाँ ठीक वातावरण नही मिलता तो वे रहते क्यो हैं?" मैंने पूछा।

"निराला जी कहते है कि अन्न का सब जगह बडा कष्ट है। अब किसके यहाँ रहा जाये। ये तो जमीदार हैं। गाँव से अन्न आता है। आठ दस आदमी और खाते है उसी मे मैं भी खा लेता हूँ। उनके यहाँ मेरा खाना कुछ मालूम नही होता, और कहीं ऐसा नही हो सकता था।"

"हाँ, यह तो बात ठीक है। जमीदारो के अतिरिक्त और तो सब जगह अन्न का बडा कष्ट है, इसलिये दूसरी जगह निभना तो कठिन ही था," मैंने कहा। "इतना तो उन्हें करना ही चाहिये। उनकी पुस्तकें भी तो उनकी संस्था से निकलती हैं," महादेवी जी बोली।

"निराला जी का वे व्यवस्थित रूप से इलाज क्यो नही कराते?"

"व्यवस्थित रूप से क्या इलाज कराय ? उनके अनुकूल वातावरण रहे तो वे अधिक कुछ पागलपन की बातें नहीं करते।' फिर हम चुप हो गये। मैंने पूछा—

"पंत जी अभी तो यहीं हैं।"

"हाँ, यहाँ हैं। उनकी भी 'लोकायन' की योजना चल रही है।"

"पहले तो उन्होंने 'लोकायत' नाम रक्खा था।"

"हाँ, अब बदल कर 'लोकायन' कर दिया है। कह रहे थे 'लोकायन' के अन्तर्गत ही साहित्यकार संसद की योजना आ जायेगी। नाम 'लोकायन' रहेगा। पर यह कैसे हो सकता है। 'लोकायन' में तो कोई भी योजना जो लोक कल्याण के लिए हो आ सकती है। पर हमारी संस्था तो लेखकों और साहित्यिकों के जिस उद्देश्य को लेकर चली है, वह बात तो इस नाम से व्यक्त होती नहीं।"

"हाँ, आप जिस उद्देश्य को लेकर चली हैं उसके लिए तो 'साहित्यकार संसद' नाम ही सबसे उपयुक्त है", मैंने कहा "पर 'लोकायन' का क्या उद्देश्य है ?'

"यह संस्था कला और संस्कृति से सम्बन्धित होगी।" इतनी देर में लीला आई और महादेवी जी से कहा, 'चाय हो गई।' हम लोग उठकर अन्दर चल दिये। रास्ते में वे कहती जा रही थी, "यहाँ बहुत से छोटे छोटे कुन्ज बनवाऊँगी जिनमें खूब फूल हों। मुझे फूलों वाली जगह बैठना अच्छा लगता है।' इस प्रकार हम अन्दर कमरे में आ गये। वहाँ पाँडे जी बैठे एक पुस्तक पढ़ रहे थे। अब खाना पीना आरंभ हुआ। मैंने तीन प्याले चाय पी और एक Energy बिस्कुट खाया और फिर अनन्नास के मुरब्बे के साथ एक गरम गरम परौंठा भी उड़ाया।

खाना समाप्त होने पर महादेवी जी ने एक अंग्रेजी की मोटी पुस्तक उठायी। उस पुस्तक का नाम था The Cultural Heritage of India। उसमें बहुत से पेन्टिंग्स थे। उन पर टीका टिप्पणी हुई। उसमें बहुत सी Architectural Buildings के नमूने थे। उनमें से 'साहित्यकार संसद' के मुख्य द्वार के लिए Design छाँटा गया और साथ ही कुछ Design छतों और स्तम्भों के लिये भी निकाले गये।

साढ़े दस बजे मैं घर आ गया था।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

46

30 ए, वेली रोड,
इलाहाबाद
3/11/47
प्रभात

आदरणीय 'मानव' जी

जब तक मनुष्य केवल भोक्ता रहता है, तब तक उसकी स्थिति उस मनुष्य की सी है जो किसी विशेष रस में डूब गया हो, किन्तु वही भोक्ता जब अपने भोग का

दूर से दृष्टा हो जाता है, तो उसकी स्थिति एक आलोचक की सी हो जाती है—उस मनुष्य की सी जो रस के स्रोत से निकल कर किनारे पर आ खडा है। एक दो दिन यहाँ आने पर ऐसी ही स्थिति मे मैं पडा रहा। मन अपना ही आलोचक हो उठा। पूरा अक्टूबर बीत गया और मैंने कुछ नही किया, मुझे अपनी निष्क्रियता पर खीझ हुई और साथ ही पश्चात्ताप भी।

कल प्रभात काल 6॥ बजे मैं ससद् गया था। मन मे जाने की बात तो 30 ता० से ही थी, पर जाना नही हो सका था।

नवोदित सूर्य की कोमल किरणो मे अपने घर से ससद् तक की यह सवा मील की पैदल *यात्रा ऐसी है कि न तो थकान ही मालूम होती है और न मन ही ऊबता* है। सात बजे मैं वहाँ पहुँच गया था। महादेवी जी चाय पीने जा रही थी। उन्होने अपना प्याला बना लिया था। चीनी की एक प्लेट मे सीताफल रखा था। मैंने हाथ जोड कर प्रणाम किया और उनके पास बैठ गया। महादेवी जी एक पतली सफेद धोती पहने थी और एक सिलहैंटी रग की ऊनी चादर उनके कन्धों पर पडी थी। चेहरे से ऐसा लगता था जैसे उनका स्वास्थ्य पहले की अपेक्षा कुछ गिर गया हो। सीताफल की ओर इगित कर कहने लगी, "आज एक पेड पर यह सीताफल पक गया था।"

"यह सब से पहला पका हुआ सीताफल है ?" मैंने हर्षातिरेक मे पूछा।

"हाँ, आज सुबह मैंने देखा, कि तोते ने इसे उधर से काट दिया है। मैंने सोचा जरूर पक गया होगा। माली इसे तोडकर ले आया है।"

"तब तो यह जरूर मीठा होगा। फलो के मामले मे पक्षियो को मनुष्यो से अधिक पहचान होती है। चलो इसका आधा भाग मेरे भाग्य मे भी था' मैंने हँस कर कहा। उन्होने नौकर से कुछ और लाने के लिये कहा। अपना चाय का प्याला उन्होने मेरी ओर बढा दिया, और दूसरा प्याला बनाने लगी। मैं चाय पीने लगा। उन्होने प्रश्न किया, "कब आये ?'

"29 की मध्यान्ह मे आ गया था।"

'मानव जी अच्छी तरह हैं ?"

"हाँ, वैसे तो सब ठीक हैं। उनके दो बच्चे थे—प्रभात और राजीव। उनमे से छोटा राजीव जाता रहा। सारे घर मे शोक पूर्ण वातावरण छाया था। पर 'मानव' जी तो ऐसे समय मे भी धैर्य नही खोते। दुःख तो उन्हें अथाह हुआ होगा, पर हमने उनकी आँख में आँसू नहीं देखे। गम्भीरता से बच्चे की मृत्यु के बारे मे बताते रहे। बातचीत करते रहे।" महादेवी जी कुछ नही बोली। वातावरण उदास हो गया था। मैंने नीरवता भग करते हुए कहा, "ऐसे अवसरो पर बहुत कम व्यक्ति ही सयम रख पाते हैं।"

"संयम रखना चाहिये। जो दुःख प्रकाश मे आ गया, उसका कुछ मूल्य नही रह जाता" महादेवी जी ने कहा।

"मृत्यु को इतने पास से उन्होने पहली बार ही देखा था। रात के नौ बजे से बच्चे को गोद मे लिये बैठे रहे और रात के बारह बजे मृत्यु उसे उनसे छीन कर ले गई। मृत्यु का भी कैसा मन को हिला देने वाला दृश्य होता होगा?' अपनी आँखें फाड कर और गम्भीर होकर एक उच्छ्‌वास भरते हुए महादेवी जी ने कहा, "ठीक वैसे ही होता है जैसे धीरे-धीरे उस पार जाते हैं।" उनकी दृष्टि खिड़की से चमकते हुए गंगा के उस पार बालुकामय तट पर थी। मैंने चाय का एक घूंट भरा और एकटक दृष्टि से उसी ओर देखने लगा। उसी क्षण जैसे मृत्यु के बहुत से दृश्य महादेवी जी की आँखों के सामने आ गये हो। बोली, ' मैंने भी बहुत सी मृत्यु देखी हैं। कुछ लोगों की बडी ही शात मृत्यु होती है और मरने पर उनकी आकृति सौम्य और शात रहती है, पर बहुतो की मृत्यु बडी कष्टपूर्ण होती है तथा मरने पर आकृति विकृत तथा विकराल लगने लगती है। ऐसा लगता है कि मृत्युपरान्त जीवन मे किये हुए सुकृत्य और दुष्कृत्य, शरीर की चेतना निकल जाने पर मुख पर लिखे से रह जाते हैं। उन अको को न तो वह छिपा सकता है और न कोई मिटा सकता है," महादेवी जी ने कहा और फिर बोली "मृत्यु पर दुख तो होता ही है।"

'पर प्रत्येक की मृत्यु पर दुख नही होता।" मैंने कहा।

"बहुत सी मृत्यु हम दूर से देखते हैं, हाँ भाई, मर गया। एक क्षण के लिए उदासी की रेखा सी तो अवश्य दौड जाती है, पर इससे अधिक कुछ नही।"

"भाई, दुःख तो भाव के सयोग से होता है। अपरिचितो की मृत्यु पर कोई विशेष दुःख नही होता, क्योकि उनसे कोई भाव का सम्बध नही रहा। परिचितो की मृत्यु पर दुःख होता है और सगे सम्बन्धियो की मृत्यु पर उससे भी अधिक, क्योकि उनसे भाव का सम्बन्ध और गहरा रहता है।" महादेवी जी ने कहा। मैं अपना प्याला पी चुका था। मैंने उसे दूसरी बार भरने के लिए महादेवी जी के पास सरका दिया। मैंने पूछा, "पर बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी सवेदना बडी व्यापक हो जाती है। क्या उनको भी अपने पास वाले व्यक्ति की मृत्यु पर अपने दूर वाले व्यक्ति की मृत्यु से अधिक दुःख होता होगा?"

"दुःख तो उतना ही बडा होगा, जितना बडा उसे आधार मिलेगा। महात्मा गाँधी तो प्राणी मात्र के दुःख से ही दुःखी होने वाले व्यक्ति हैं, पर उनके भी जब महादेव देसाई की मृत्यु हुई तो आँसू आ गये। वहाँ भाव का विस्तृत आधार था। कस्तूर बा की मृत्यु पर उनके आँसू आ गये। वे उनकी जीवन सगिनी थी। सदैव उनके साथ रही थी। कितनी अनुभूतियो के सस्मरण उनके साथ जुडे थे। जब युग का इतना महान व्यक्ति भी इस अन्तर मे नही बच पाया, तो हमारी क्या गणना। अन्तर चाहे कितना सूक्ष्म क्यो न हो, पर रहता अवश्य है।" फिर थोडी देर रुककर बोली, 'गुप्त

जी को अपने भाई की मृत्यु पर दुःख हुआ। वे उनके प्रेस का काम सम्भालते थे, पेपर का, पुस्तकों का समस्त प्रबन्ध करते थे, उन पर भरोसा करके गुप्त जी निश्चिन्त थे। वह व्यक्ति चला गया फिर कभी न आने के लिये। वे उनके भाई थे। उनकी मृत्यु के बराबर दुःख गुप्तजी को मुन्शी जी की मृत्यु पर हुआ। जब मुन्शी अजमेरी दफनाये जा चुके, तो गुप्त जी गंगा जल, फूल, और गंगा रज लेकर कब्र पर पहुँचे। उनकी कब्र पर मिट्टी बिछायी, गंगाजल छिड़का, मन्त्र पढ़े और फूल चढ़ा कर अपने घर चले आये। गुप्त जी को अपने सगे भाई की मृत्यु जैसा ही दुःख हुआ। बाहर से इस पर बहुत से विश्वास नहीं करेंगे। पर यह बात ठीक ही है, क्योंकि गुप्त जी के भाई तथा अजमेरी जी अन्तर की एक गहराई में उतर गये थे।'

"प्रसाद जी की मृत्यु पर भी गुप्त जी को बहुत दुःख हुआ था।"

"हाँ, हुआ तो था, पर प्रसाद जी से तो केवल इतना ही सम्बन्ध था कि जब गुप्त जी काशी जाते थे तो उनके यहाँ ठहरते थे, पर अजमेरी जी उसी चिरगाँव के रहने वाले थे। दिन रात का साथ था। हिन्दू मुस्लिम संगठन में दोनों ने मिल कर काम किया था। ऐसी स्थिति में परिचित और सम्बन्धी में अन्तर नहीं रह जाता", महादेवी जी ने कहा।

"आप ने ऐसे भी तो एक दो व्यक्तियों की मृत्यु देखी होगी जो बहुत दिनों तक आपके साथ रहे होंगे, जिन्होंने आपके साथ मिल कर काम किया होगा?'

"हाँ, क्यों नहीं। दुःख तो होता ही है पर मेरे साथ अन्तर बहुत सूक्ष्म है। किसी भी व्यक्ति की मृत्यु पर जो परिचित है उससे कम दुःख नहीं होता।" फिर कुछ क्षण चाय में बिता कर बोलीं, "मेरे साथ कुछ ऐसा हो गया है कि मेरे चारों ओर के व्यक्ति मिल जाते हैं तो अच्छा लगता है। बहुत दिनों तक उनमें से कोई व्यक्ति नहीं मिलता तो विशेष बुरा नहीं लगता। मेरे भाई हैं। पहले थोड़े दिनों में ही ऐसा लगने लगता था कि बहुत दिन हो गए। अब दो दो, तीन-तीन वर्ष बीत जाते हैं, पर मन में कोई ऐसी बात नहीं उठती। अपने चारों ओर के व्यक्तियों में कोई बहुत पास है, कोई बहुत दूर, ऐसा भी अनुभव नहीं करती, पर इतनी बात है कि एक सीमा से मैं किसी को आगे नहीं बढ़ने देती।" अब तक मैं दूसरा प्याला और प्लेट की मिठाई साफ कर चुका था। मैं मनमें ही सोचने लगा कि महादेवी जी को अब किसी का मोह नहीं रहा। अब वे निर्लिप्त अवस्था को प्राप्त हो गई हैं। वे अपने चारों ओर के व्यक्तियों से स्नेह, वात्सल्य और दुलार के बहुत ही मीठे सम्बन्ध रखती हैं, पर उस मिठास का वे स्वयं अनुभव नहीं करतीं। ये सब सम्बन्ध उनके व्यक्तित्व के साथ ऐसे ही लगे हुए हैं जैसे एक विशाल कमलदल पर सैकड़ों छोटे बड़े जल-बिन्दु हैं।

सीतारमन को मेरी ओर सरकाते हुये महादेवी जी ने कहा, "इस गाओ।"

"मैं तो इसमे से आधा लूंगा ?" मैंने कहा। और प्लेट उनकी ओर बढ़ा दी।

प्लेट मे से सीताफल उठाकर वे उसे तोड़ने का उपक्रम करने लगीं। हाथ लगते ही वह टूटने लगा कि तुरन्त उन्होने उसे प्लेट मे छोड़ दिया और बोलीं "भाई, यह काम मुझसे न होगा। नारियल भी मैं स्वय नही तोड़ती।" इस पर मुझे हँसी आ गई। यह बात तो ठीक है कि जगदीशचन्द्र बसु ने वृक्षो मे जीवन सिद्ध कर दिया है, पर क्या महादेवी जी को फलो मे भी जीवन का आभास होता है ? मैं जानता हूँ महादेवी जी स्वय अपने हाथ से कभी भी फूल नही तोड़तीं, पर यदि किसी दिन नौकर ड्राइग रूम के फूलदान मे रजनी गन्धा या दूसरे फूल रखना भूल जाए तो क्या वे उससे नही कहगी। कदाचित् महादेवी जी इन फूलो के मामले मे बौद्धो के नियम का पालन करती हैं जिसके अन्तर्गत बौद्ध लोग भिक्षा मे मिला मांस खा लिया करते थे, पर बलि करने का उनके बीच घोर निषेध था।

मैंने सीताफल के दो टुकड़े कर आधा उन्हे दे दिया। बोली, "मैं इतना नही खाऊँगी।" मैंने थोड़ा सा खाते हुये कहा, "बहुत मीठा है। मैंने पहले ही कहा था न, आप खाकर तो देखिए।"

"मैं बहुत मीठा नहीं खाती।"

"पर यह ऐसा मीठा नही जैसी यह बर्फी जिसके एक टुकड़े मे ही मन ऊब जाता है।"

"इसमे तो धरती का माधुर्य है न, और इसमे चीनी का ?" हँस कर उन्होने कहा। मैं सीताफल खाता रहा। फिर मैंने दूसरी बात छेड़ी। कहा, "देखिए अपने पेड़ पर यह सीताफल बिल्कुल पक गया था। वह टूट कर नीचे गिर जाता, वहीं जड़ मे पड़ा-पड़ा सड़ जाता या कुछ और होता। प्रकृति का विधान तो कुछ और ही था, पर मनुष्य ने उसमे हस्तक्षेप कर उसे अपने लिए उपयोगी बना लिया। आप बतलाइए प्रकृति के विधान मे मनुष्य को हस्तक्षेप करना चाहिए या नही ?"

"नही करना चाहिए।"

"मान लीजिए एक फूल है। वह ऐसी जगह खिला है जहाँ उस कोई देख नही सकता। यो फूल को देख कर मन मे आह्लाद होता ही है। तो वास्तव मे वहाँ उस फूल का कोई उपयोग नही। वहाँ खिला है, खिल कर मुरझा जायेगा। न कोई उस का खिलना देखेगा और न मुरझाना। उसे वहाँ से तोड़ कर यदि अपने कमरे के फूलदान म लगा दिया जाये तो वहाँ उसकी अधिक उपयोगिता है। बहुत से लोग उसे देख कर आह्लादित होगे। अपने छोटे से जीवन मे वह बहुतो को सुख दे जायगा।"

"पर यह कैसे पता कि जहाँ वह खिला है वहाँ उसे कोई न देखेगा ? यदि ऐसा है तो फिर तुमने ही कैसे देख लिया ?"

"नहीं, मान लो एक फूल इस 'ससद् भवन' के कोने के झुरमुट मे खिला है। वहाँ आपकी तो दृष्टि पड गई, पर हर एक तो उधर नही जाता।"

"यह बात तो ठीक है, पर मनुष्य उपयोगिता की वजह से ही यह सब कुछ नही करता। सुन्दर वस्तुओ पर अधिकार प्राप्त करने की उसमे एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है, उसी के वशीभूत होकर वह यह काम करता है।"

"अच्छा, फूलो की बात तो छोडिए। मान लीजिए एक भयावह वन है जिसमे शेर चीते रहते हैं। उसे काट कर एक सुन्दर बस्ती बसाई जा सकती है। तो उसे काट ही डालना चाहिए और काट ही डालते हैं। यह तो मैं मानता हूँ कि उस वन का अब भी प्रकृति की सृष्टि मे एक सौंदर्य है और फिर उस बस्ती की अपनी एक अलग सुन्दरता होगी। पर फिर भी उस वन को काटने मे कुछ बुरा नही लगता, एक फूल को तोडने मे चाहे कुछ बुरा लगे भी।"

"भाई, जैसे जीवो की सृष्टि मे चेतना का सबसे अधिक विकसित रूप मनुष्य है, उसी प्रकार वनस्पति की सृष्टि मे चेतना का सबसे अधिक विकसित रूप फूल है। छोटे छोटे सैकडो जीवो को मनुष्य प्रतिदिन मार देता है, पर मनुष्य क्यो नही मारा जाता। ऐसे ही पत्थर का टुकडा है बिल्कुल जड है। उसके टुकडे-टुकडे करने मे कुछ भी दर्द नही, पर एक पुष्प है उसके तोडने मे मुझे तो ऐसा ही लगता है जैसे किसी के प्राण ले लिये," महादेवी जी ने कहा। यह बात यही समाप्त हो गई। सीताफल समाप्त हो गया था। जब मैं होस्टिल मे रहा करता था तो वहाँ सीताफल के बीसियो पेड थे और जीवन मे सैकडो सीताफल खाये भी होगे पर इतने मीठे बहुत कम।

अब मैं महादेवी जी के साथ 'ससद्' के बाह्य भाग मे घूमने चला। ससद् के द्वार वाली बेल पर जिसमे उस दिन एक फूल उगा था, आज सैकडो फूल थे। जहाँ पहले ऊबड खाबड जमीन थी, वहाँ अब चारो ओर समतल क्यारियाँ बनी थी, चलने के लिए बीच-बीच मे पटरियाँ। तीन महीने मे ही यहाँ रहकर महादेवी जी ने इस स्थान का रूप बदल दिया है। ससद् भवन के सामने वाला मैदान वृत्ताकार है।

इसके नीचे उतर कर दूसरा समतल आरम्भ होता है, जिनमे वर्गाकार खेत से बनाये गये हैं। पटरियो के दोनो ओर फूलो के वृक्ष हैं। मैदान के बीचो बीच सामने नीचे वाले स्तर से ऊपर आने के लिए पैडियाँ बनाई गई। पैडियो के सामने नीचे वाले स्तर पर Lawn रहेगा।

Lawn के दोनो ओर वर्गाकार क्षेत्र हैं। उनमे कुछ सुन्दर चीजें बो दी जायगी। Lawn के किनारे-किनारे Hedge उगाई जायेगी।

Lawn से ससद् के सामने वाले भाग मे आने के लिए पैडियाँ लगी है। पैडियों के ऊपर पहुँचने पर दोनो ओर दो नाम के पेड हैं। वे ऐसे लगते हैं जैसे अपनी शाखाओं से प्राकृतिक द्वार सा बना रहे हो। महादेवी जी ने यह सब हिस्सा दिखलाया। मैंने कहा कि "इन नीम के पेडो की शाखायें छँटवा कर यहाँ लोहे का वृत्ताकार द्वार लगवा

कर ऊपर लता चढ़वा दीजियेगा, तब बहुत अच्छा लगेगा।"

'हां, यह भी ठीक रहेगा," फिर आगे चलकर बताने लगी।

"ये दो वट-वृक्ष हैं।" दो बड की छोटी कलमों की ओर जिनमें से पत्ते निकल रहे थे, इंगित करते हुए महादेवी जी ने कहा, "जब ये बड़े हो जायेंगे तो दोनों की *विशाल छाया के नीचे बैठने मे बहुत अच्छा लगा करेगा।"*

फिर एक तीसरे पेड़ की ओर संकेत कर बोलीं "यह कदम्ब है।" कदम्ब ! मेरे मन में एक अज्ञात उल्लास सा हुआ। वही तो कदम्ब यमुना के किनारे जिस पर बैठकर श्रीकृष्ण वंशी बजाया करते थे। यह कदम्ब गंगा के किनारे होगा। इसकी छाया मे काव्य-गोष्ठियाँ हुआ करेंगी। तब क्या वे दिन लौटे हुए से नहीं लगेंगे? हम चलते रहे। मैं अपने जूते अन्दर ही छोड़ आया था। महादेवी जी भी नंगे पाँव आगे-आगे चल रही थीं। चलती चलती वे सहसा पीछे मुड़ीं और बोलीं, "तुम जूते पहन आओ।" मैंने कहा, "नहीं मुझे तो ऐसी ओस से भीगी हुई घास पर नंगे पाँव चलना अच्छा लगता है। और किसी पुस्तक में भी पढ़ा था कि इस प्रकार चलने से आँखों की ज्योति बढ़ती है।" इस प्रकार कहता हुआ मैं उनके साथ-साथ आगे बढ़ता रहा। आगे एक कोने म लगे हुए पौधे की ओर संकेत कर उन्होंने कहा, 'देखो इसमें भी *फूल खिल आये।" इसमें उस पौधे के पत्तों के जुड़े हुए से फूल ही थे। ये हलके लाल* गुच्छों मे आते है। यह फूल वृक्ष मैंने देखा तो पहले भी था, पर नाम नहीं जानता इसलिये मैंने पूछा, "इसका क्या नाम है ?"

"इसे वेगन वेलिया (Vagon Vallia) कहते हैं। पर हमने इसका हिन्दुस्तानी नाम 'बेगम वेलिया' कर दिया है।" अंग्रेजी नाम का हिन्दुस्तानी परिवर्तन इससे सुन्दर नहीं हो सकता था। आगे बढ़ एक पेड़ की ओर संकेत कर बोलीं, "यह सहजन है। कितना फूला हुआ है ?"

इस प्रकार सहजन, नीम नीबू सीताफल के पेड़ों के नीचे से होते हुए हम फिर पूर्वीय पार्श्वभाग मे पहुँच गये। वहाँ एक गूलर का पेड़ है। उस पर गूलर पके हुए थे। उन्हे देखते रहे। नीचे एक अमरूद की बगिया में एक बुढ़िया बैठी नारियल पी रही थी। महादेवी जी उससे बातें करती रहीं। महादेवी जी प्रत्येक व्यक्ति को बहुत जल्दी पहचान कर उसके स्तर पर उतर कर बातें करती हैं, यही कारण है कि उन्हे रसूलाबाद के गरीब मजदूर, घोसी, कहार और मल्लाह सभी जानते हैं।

फिर हम वहाँ से लौटे। रास्ते म एक बेरी का पेड़ पड़ा। पेड़ छोटा सा ही था, पर वहाँ वह अच्छा न लगता था। उसे देख कर कहने लगीं, "सभी कहते हैं इसे कटवा दीजियेगा, पर इसे कैसे कटवा दूँ ?" जैसे उसे कटवा देने में उनका मन दुखता हो, इस प्रकार उन्होंने कहा। मैं कुछ नहीं बोला। आगे एक वर्गाकार क्यारी के कोने मे एक वृक्ष सूख गया था। मैंने उसकी ओर संकेत कर कहा, 'यह पेड़ सूख गया है।'

"हाँ, इसे अपनी जगह से हटा कर यहाँ लगा दिया था।" फिर कुछ क्षण रुक कर चलती-चलती कहती गई, "मनुष्य को यदि अपनी जगह से हटा दिया जाये तो उसकी भी यही दशा होती होगी ?" यह बात जैसे वह अपने से ही पूछ रही हो। "हाँ, ऐसी ही दशा होती होगी।" जैसे उत्तर भी स्वयं दे दिया।

फिर हम पश्चिमीय पार्श्व की ओर गये। वहाँ कुछ क्यारियों में गोभी और टमाटर लगे थे। पर अभी तक उनमें फल नहीं आया था। और कुछ में फूल के बीज बोये गये थे, वे अंकुरों में फूट निकले थे। पौधे हो जाने पर वे वहाँ से उठा कर पंक्तियों में लगा दिए जायेंगे।

फिर हम अन्दर भवन में लौट आये। रास्ते में महादेवी जी यही कहती रही, "ये माली कुछ काम नहीं करते। करते हैं तो ठीक से नहीं करते। अब मैं कहीं से Gardening पर कुछ पुस्तकें मँगा कर पढ़ूँगी।"

महादेवी जी Gardening के विषय में बहुत कुछ जानती हैं, पर अपने ज्ञान को पुस्तकों द्वारा पूर्ण करना चाहती हैं। उनकी इस बात में ऐसा लगता था कि महादेवी जी ने खूब पढ़ा है और सभी विषयों पर।

अन्दर आकर गट्टी के लिए वे नौकर को रुपये देने लगी। तभी मैंने पुस्तकों के 37 रु० 6 आ० 6 पा० दे दिए। कमीशन की बात पर पत्र की बात उठी। बोलीं, "मुझे तो पत्र नहीं मिला।" मैंने कहा "मैंने 15 प्रतिशत कमीशन दे दिया है।" "तुम तो अधिक दे रहे हैं। बेचारे के साथ अन्याय हो गया।"

"अन्जाने में हुआ है, इसलिये अन्याय नहीं।" मैंने कहा।

"अबकी बार जब और पुस्तकें लेगा तो जितना दे रहे हैं उससे भी अधिक कमीशन देंगे।" फिर बोली, "पता नहीं क्यों मैथिलीशरण जी का भी सादा पत्र कोई नहीं मिलता। केवल रजिस्टर्ड पत्र मिलते हैं।"

"मानव जी कह रहे थे कि मैंने एक रजिस्टर्ड पत्र भेजा है। पता नहीं वह आप को मिला या नहीं। वे मेरे साथ ही आते पर उस पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा में ही रुक गये।"

"हाँ, वह पत्र तो मिला था, पर इधर मलेरिया पीछा नहीं छोड़ता। मैं उत्तर नहीं दे सकी। अब तुम कब जाओगे ?"

"मैं 18 नवम्बर को फिर घर जाऊँगा।"

"तो लौटती बार उनको अपने साथ लेते आना।"

"जरूर लेता आऊँगा।"

मैं अब घर चलने लगा तो बोली, "घर क्या करोगे ? आज तो छुट्टी है कुछ काम तो नहीं करना।"

"नही, काम तो कुछ नही।" मैंने कहा।

"तो फिर यही रुक जाओ। यही खाना खा लेना, जैसा भी मेरे यहाँ बनता है।"

"तो फिर अब मैं नहा आऊं। मुझे तौलिया दे दीजियेगा।"

"पता नही बिना कोर की कोई धोती है या नही।"

"मैं कोरदार ही पहन के नहा लूंगा। मैं तो घर पर भी कभी-कभी अम्मा की या भाभी की धोती पहन कर नहा लेता हूँ।"

"नही रे, घाट वाले हंसेंगे कि देखो इस लडके ने औरतो की धोती पहन रक्खी है। अच्छा तुम जरा इधर घूमो। मैं आई।" थोडी देर मे वे अन्दर से लौटी। बोलीं, "वह बाहर तौलिया और धोती रक्खी है।" बाहर एक स्वच्छ तौलिया तथा एक स्वच्छ मर्दानी धोती का आधा टुकडा तो नही था, पर था बिना कोर टुकडा, रक्खा था। उसे लेकर मैं नहाने चला गया। वहाँ घाट पर सभी पूछने लगे, "गुरु जी के यहाँ आये होगे ?" मैंने कहा, 'हाँ, भाई।"

नहाने के बाद मैं लौटा। अन्दर आकर एक शीशी मे से तेल डाल लिया। तेल सुगन्धित था। इतनी देर मे महादेवी जी आई। बाल बिखरे देखकर बोली, "कन्घा चाहिए।" इतना कह कर अन्दर गई और थोडी देर मे कहीं से ढूंढ कर एक छोटा सा कन्घा लाई। वैसे तो मैंने कह दिया था कि मैं हाथ से ही ठीक कर लूंगा, पर उन्होने कहा, "कन्घा तो है, पर शीशा तो कोई नही।" मैंने कहा, "आप मुझे दीजिये मैं ठीक कर लूंगा।" जब मैंने बाल ऊपर को कर लिए तो बोली, "क्या मांग वांग भी निकलेगी ?"

"मैं निकाल लूंगा"

"बिना शीशे मे देखे ही ?"

"मैं अन्दाज से निकाल लूंगा।"

"अच्छा देखें कैसे निकालते हो ?"

मैंने हाथ मे टटोल कर मांग निकाली कि महादेवी जी तो एक दम बोल पडी, "अरे! टेढी है यह तो। ले तू खुद देख ले! एक टूटा हुआ शीशा पडा था, उसे लाती हूँ, देखती हूँ, मिलता भी है या नही।" इतना कह कर अन्दर चली गई। थोडी देर बाद लौटी पर शीशा नही मिला। बोली, "शीशा नही मिला।"

"बिल्कुल ठीक तो निकल आई।"

"तुम्हे कैसे पता ?'

"मैंने हाथ स जो देख लिया है।" मैंने हंस कर कहा।

"चलो सब ठीक है जी। कोई स्वयंवर मे थोडे ही जाना है।

"हमारे यहाँ तो कोई शादी ही नही करता। आत्माराम कहता है मैं नही करूँगा। देखूँ चार-पाँच साल बब तक नही करता।"

"शादी की बात तो अभी मेरे मन मे भी नही और यदि कभी हुई भी तो आप के बिना होगी नहीं। हमारे यहाँ तो महिलायें बारात मे जाती ही है। आप चलेंगी तो शादी होगी, नही तो नही।"

"हाँ, चलूँगी, क्यों नही चलूँगी ?"

थोडी देर के लिए घरेलू वातावरण आ उपस्थित हुआ। मैं एक क्षण के लिए इसी प्रसन्नता मे विभोर हो गया कि यदि कभी मेरा विवाह हुआ और उसम महादेवी जी चली, और आप तो होंगे ही, तो कितना अच्छा लगेगा ! सचमुच, बहुत अच्छा !

फिर हम बैठ कर इधर-उधर की बातें करने लगे। महादेवी जी पजाब की Refugee स्त्रियो के लिए कहने लगी,

"हमारे यहाँ से कुछ लोग उनके कैम्प मे गये थे। वहाँ कुछ स्त्रियाँ शिकायत करने लगी कि हमे यहाँ toilet नही मिलता, cream और lipstick कुछ भी नही। अब इन पजाब की स्त्रियों को देखिये कि इनका सब कुछ जाता रहा, पर cream और lipstick का मोह अब भी नही छूटा। ऐसी स्त्रियाँ पजाब के सघर्ष के समय क्या कर सकती थी ? भला अब ये लोग यू पी मे आ गए हैं। देखो, यहाँ कैसा वातावरण उत्पन्न करते हैं।

'इलाहाबाद मे 'मीराबाई' चित्र चल रहा है। आपने देखा ?" मैंने पूछा।

"नही।"

"अब दूसरा चित्र 'मीरा' आ रहा है। उसे देखियेगा। उसकी बहुत प्रशसा सुनने मे आ रही है।"

"क्या देखूँ, मीरा का रोल किसी ऐसी नाचने वाली को दे दिया होगा जो मीरा के बारे मे कुछ भी नही जानती होगी।"

"हाँ, यह तो आपकी बात ठीक है। इन Professional Actresses से तो केवल अभिनय की ही आशा की जा सकती है। उसमे उनका शरीर ही काम करता है, पर यदि मन भी साथ हो और प्राणो मे भी वैसा ही अनुभव करें, तो वहाँ अभिनय के अतिरिक्त भी कुछ और बात आ जायेगी। 'मीरा' मे सुश्री शुभलक्ष्मी ने मीरा का पार्ट किया है। वे मदरास के एक सम्भ्रात घराने की महिला कलाकार है और इनकी लड़की ने बालक मीरा का अभिनय किया है। श्री अमृतलाल ने संवाद लिखे हैं। देखिये कदाचित् मीरा के भावों की हत्या न हुई हो।" मैंने कहा।

"हाँ, जब आयेगा तो देखूँगी।"

इस बीच पाडे जी आ गए थे। फिर हम सबने खाना खाया। थोडी देर आराम किया। 2॥ बज गए थे। मैं घर को चलने लगा। बाहर दरवाजे पर आकर एक

गुलाब को देखने लगा। मैंने कहा, "इस पर बीज तो आता है पर इसकी लगती कलम ही है।"

"इसका बीज किसी काम नहीं आता। वह उग नहीं सकता," पाडे जी ने कहा। मैंने पूछा, "तो सबसे पहले गुलाब कैसे उगा होगा?"

'फारस मे उगा था।"

"नही बीज तो इसका था नहीं, तो सबसे पहला गुलाब कहाँ से आया होगा? इसकी कलम ली गई होगी शायद।" मैंने आगे कहा, "इस फूल की उत्पत्ति किसी एक फूल को दूसरे से cross करके की गई होगी। यह कारण है कि इसकी कलम लगती है, बीज नहीं बोया जाता। रूस मे जब गेहूँ की कमी पड गई तो सोचा गेहूँ को बोने के लिए हर साल बीज की जरूरत न पडे, इसलिए गेहूँ के पौधे को खुदरो घास से cross कर दिया। इससे इस प्रकार के गेहूँ का Invention हुआ कि उसे एक बार वो दिया, कट जाने पर घास की तरह उसकी जडो में से फिर उग आया।" फिर क्षण भर रुककर मैंने कहा, "इधर पटरी के दोनो ओर गुलाब लगाइये बड़ा अच्छा लगेगा।"

"यह अपने यहाँ का फूल नही, इसलिए अधिक प्रसन्नता नही होती" महादेवी जी ने कहा।

महादेवी जी मे इतनी भारतीयता है पर यदि कोई चीज विदेश की है और वह अच्छी है तो उसे अपने देश की वस्तुओ के बराबर ही स्थान देना चाहिए। इतनी उदारता भी होना ही चाहिए। वह उनमे है, यह मैं जानता हूँ। इसके बाद मैंने विदा ली।

20 वर्ष के जीवन मे इस दिन का अलग स्थान है।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

47

30 ए, वेली रोड
प्रयाग
28 / 11 /47
प्रभात

आदरणीय 'मानव' जी,

परसों दोपहर मैं यहाँ सकुशल आ गया। तभी से यहाँ कमरे का एकाकीपन बहुत खल रहा है। ऐसा लगता है, जैसे जीवन मे केवल सूनापन ही शेष रह गया हो।

कल प्रभात मे आठ बजे 'साहित्यकार संसद्' गया था। वहाँ महादेवी जी से भेंट हुई। जिस समय मैं पहुँचा, वे कुछ पत्र देख रही थीं और उनका उत्तर लिख रही

थी। उनके श्वेत परिधान से परिवेष्ठित शरीर पर कासनी रंग का ऊनी शालू बहुत ही अच्छा लग रहा था। उनके हाथ से ही ऊपर को किये हुए गहरे काले अस्त व्यस्त बाल तथा घुटने मोड कर बैठने की मुद्रा से सचमुच ऐसा लगता था जैसे किसी मन्दिर में कोई परम साधिका बैठी हो। गंगा प्रसाद जी पाडे भी वहीं विराजमान थे।

प्रणाम करने के बाद मैं एक ओर जाकर बैठ गया। महादेवी जी आज अधिक बोल नहीं सकती थी क्योंकि सर्दी की वजह से उनकी आवाज बैठ गई थी। कुशलता पूछने के उपरान्त उन्होने पूछा,

'तुमने कैसे जाना कि मैं यहाँ हूँ ?"

'मैंने मन मे सोच लिया था कि आप अवश्य यहाँ होंगी" मैंने कहा। इस पर वे हल्का हँस दीं।

चाय पीतें पीते कन्वोकेशन की बात आई। मैंने कहा, "12 दिसम्बर को हमारा कन्वोकेशन है और 13 को पंडित जवाहर लाल जी का Special कन्वोकेशन होगा।"

"अब सभी यूनिवर्सिटीज उन्हें डिग्री दे रही हैं। यहाँ तो जब एक बात चल पडी तो फिर सभी वैसा करने लगते हैं। भला वे इन डिग्रियों का क्या करेंगे ?"

"उनको डिग्री देकर यह तो स्वयं गौरवान्वित होने की बात है," मैंने कहा।

"इस देश ने साहित्यिकों का सम्मान करना नही सीखा। रामचन्द्र शुक्ल को किसी ने डिग्री नहीं दी, जयशंकर प्रसाद को किसी ने डाक्ट्रेट से अभिभूषित नही किया और "

"साहित्यिको को सम्मान देने का समय भी आयगा, पर अभी नही," मैंने कहा और चाय पीने लगा।

पाडे जी अपने घर जाने लगे। पांडे जी की किसी बात पर महादेवी जी ने कहा, "भाई! जो परमात्मा पर विश्वास नही करता, वह किसी आत्मा पर भी विश्वास नही रख सकता। और यदि वह किसी आत्मा पर विश्वास रखता है तो उसे परमात्मा पर भी विश्वास रखना चाहिए।" महादेवी जी की यह बात मुझे बहुत ही अच्छी लगी। यह एक ऐसा विषय है जिस पर बडा ही मतभेद है। यदि कोई आत्मा का अस्तित्व मानता है और परमात्मा का नही तो यह तो बिल्कुल ऐसे ही है जैसे धूप का अस्तित्व मानना और सूर्य का न मानना। आप बतलाइये यह बात कहाँ तक ठीक है ?

हम बाहर आये। पाडे जी को विदा कर मैं महादेवी जी के साथ लौट आया। 9 बज गये थे। 9॥ बजे महादेवी जी को महिला विद्यापीठ जाना था। उनसे बातचीत करने पर पता लगा कि निराला जी डलमऊ अपने पुत्र महोदय के पास हैं। उन्होंने महादेवी जी को पत्र द्वारा सूचना दी थी। महादेवी जी उन्हें राची भेजने का प्रबन्ध कर रही हैं। इधर महादेवी जी 12 नवम्बर को देहली गई थीं और 20 को

लौटी थी। मैंने जब कहा कि 15 को तो 'मानव' जी भी देहली मे थे, मैथिलीशरण गुप्त पर उनकी Talk थी, तो कहने लगी, "नगेन्द्र से तो मिली थी, पर उसने तो नही बतलाया।"

महादेवी जी देहली मे मौलाना आजाद से मिली। जुबिली पर उनके प्रयाग आने की सम्भावना है। बाबू राजेन्द्र प्रसाद से भी मिली। उन्होने 'ससद्' के उद्घाटन की बात स्वीकार कर ली है। उद्घाटन 'बसन्त पचमी' के दिन होगा। जैनेन्द्र कुमार जी से भी वे मिली थी।

महादेवी जी पाँच छह दिन मे कलकत्ते जा रही है। वहाँ से पन्द्रह बीस दिन मे लौटेंगी। यह सब दौड धूप वे 'ससद्' के काम के लिये ही कर रही हैं। 'लोकायन' का उद्घाटन शायद जुबली के अवसर पर होगा।

घूमते-घूमते हम एक जगह पैडियो पर बैठ गये। मैंने सामने एक डेरा पडा देखा। पूछा, "आप यहाँ Refugee camp मे गई थी ?"

"अभी तो नही। अब तभी जाऊँगी जब दो चार घटे समय उन्हे दे सकूँ। केवल तमाशा देखने जाना तो उनका अपमान करना है।"

"पर यहाँ तो सुबह शाम Refugee camps मे तमाशबीनो की भीड लगी रहती है।"

"भाई, इस देश मे तमाशा देखने वाले ही अधिक हैं। कोई मर रहा हो तो लोग तमाशा देखने जाते हैं, कोई घायल हो गया हो तो लोग तमाशा देखने जाते हैं, कोई भूखो मर रहा हो तो लोग तमाशा देखने जाते हैं।" महादेवी जी ने उदास होकर कहा।

"आपके यहाँ से शरणार्थियो के लिए कुछ रुपया तो जाता रहा होगा ?"

"हाँ, पहले तो बगाल के शरणार्थियो के लिए रुपया भेज दिया गया था, पर अब तो दोनो जगह की एक-सी ही समस्या है। इसलिए अब यही दे रहे हैं।" महादेवी जी ने कहा।

महादेवी जी उठकर अन्दर जाने लगी, क्योकि 9॥ बजने वाले थे। मैंने कहा, "सगम मे आपकी कविता निकली थी, चित्र का print तो उन्होने बिल्कुल बिगाड दिया।"

'ये लोग छापना जानते ही नहीं। पहले तो उन्होने उसमे पेपर कौन सा लगाया है। फिर उसके पीछे Advertisement दे दिया। Block ठीक से आया नही", महादेवी जी कहकर अन्दर चलने लगीं।

"मैंने उन्हें प्रणाम कर विदा ली।"

आज उनका गला पडा हुआ था। आवाज बैठी हुई थी। ऐसा लगता था जैसे मन भी बैठा हुआ हो। कहा नहीं जा सकता क्यो ?

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

48

30 ए, वेली रोड
प्रयाग
7/1/48

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका पत्र 3/1/48 को मिल गया था। मेरे पिछले दो वर्ष एक हलके संघर्ष के वर्ष रहे हैं। इस संघर्ष से मुझे थोडा सुख भी मिला है और कुछ शारीरिक कष्ट भी। पर इन वर्षों मे मुझे ऐसा कुछ नही मिला, जिससे प्राणो की भूख मिटती। मुझे ऐसा लगता है कि प्रेम प्राणो की मांग है और यदि यह पूरी नही हो पाती तो प्राण-सरोज मुरझा कर सूखने लगता है। उसे खिलाने के लिए किसी के अधरो की मुस्कान चाहिए।

महादेवी जी आ गई हैं। कल मैंने उन्हें सिविल लाइन से लौटते समय तांगे मे रसूलाबाद जाते हुये देखा था। कल मैं उनसे मिलने जाऊंगा।

मुझे तो आप मन से सदैव स्वस्थ लगे। हो सकता है यह मेरी अपनी तीव्रतम अस्वस्थता के कारण हो। उकता जाने का सम्बन्ध मनुष्य के व्यक्तित्व से है। यदि किसी मनुष्य का व्यक्तित्व महान् है, तो आप जितने उसके सम्पर्क मे आयेंगे, उतना ही आकर्षण बढता जाएगा, ऐसा मेरा विश्वास है। यह बात मैं अनुभव स ही कह रहा हूँ। महादेवी जी के विषय मे भी यह सत्य है और आपके साथ तो है ही।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

49

30 ए, वेली रोड
प्रयाग
16/1/48

आदरणीय 'मानव' जी

12/1 का आपका पत्र मिला। आप लखनऊ आ गये। अच्छी ही बात है। मुझे इस बार भी डर लग रहा था कि कदाचित् आप अवसर को टाल दें। मैं सोचता हूँ कि एक व्यक्ति को बहुत दिनों तक एक स्थान मे नही रहना चाहिए और कलाकार को तो रहना ही नही चाहिए।

जीवन मे अधिकतर बातें मन के अनुकूल नही होती, पर कुछ दिनो बाद प्रतिकूलता ही जीवन बन जाती है। यही जीवन का क्रम है और ससार मे जीवित रहने के लिये मनुष्य को उसे स्वीकार करना पडता है।

नगर आपको सुन्दर लगा है। यदि ऐसा है तो यह आपके जीवन मे सौंदर्य के नवीन वातायन खोलेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

जीवन चाहे छोटा हो, पर सुन्दर होना चाहिये। इस सुन्दरता की वृद्धि के लिये आदि काल से मनुष्य प्रयत्नशील रहा है और मेरी धारणा है कि कलाओ की उत्पत्ति के पीछे भी मनुष्य की यही प्रवृति रही है।

समझ लीजिये ये चार वर्ष एक छोटा सा दुस्वप्न था, समझ लीजिये इस थोडे समय के लिये आप सो गये थे, समझ लीजिये कि प्रभात से पहले यह रजनी का अन्तिम याम था। जीवन को चार वर्ष पीछे लौटा दीजियेगा।

आपने रस की बात लिखी है। रस की बात सोच कर मेरा मन उदास हो जाता है। आप यह तो कहेंगे कि मैं बडा ही निराशावादी हूँ, पर मुझे तो ऐसा लगने लगा है कि ससार में रस कही भी नही। अपने प्राणो के सार से हमे रस की सृष्टि करनी पडती है।

मैं एक बार लखनऊ आऊँगा अवश्य।

रमेश जी की कहानियाँ मैं भेज दूँगा, पर बहुत सी तो इधर-उधर छपने गई हैं। पता नही उनकी प्रतिलिपि डा० साहब के पास है या नही। मैं उनसे भेजने को लिखूँगा। यदि जल्दी ही प्रकाशन की बात हो तो मैं जल्दी करूँ?

डा० रमेश के रुपये मैंने खर्च नही किये। उसी समय अपने एक मित्र के पास जमा कर दिये थे। सोचा था और रुपये आने पर अधिक रुपये एक साथ भेजूँगा, तो अच्छा लगेगा। पर आप कहते हैं तो कल ही भेज दूँगा। आपके रुपयो की ओर से तो अपने पराये का भाव उठ गया है इसलिये खर्च हो जाते हैं। इस सप्ताह मे मैंने सबसे अधिक चित्र देखे हैं—सिंदूर, मिलन, मुलाकात, वीर कुणाल, देवदासी और Rainbow Island 'राहुल' जी ने अपने पत्र मे आपको क्या लिखा है?

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

50

30 ए, वेली रोड
प्रयाग
22/1/48

आदरणीय 'मानव' जी,

आप का 20/1 का पत्र कल सन्ध्या को मिल गया था।

कल यहाँ हलकी-हलकी वर्षा हुई है। हलके सफेद बादलों से घिरा आकाश अच्छा ही लगता है। सन्ध्यायें तो यहाँ की भी सुन्दर होती है। गगा के उस पार गुलाबी

बादलो में छिपा हुआ सूर्यास्त यहाँ भी अच्छा होता है। पर यहाँ की सध्यायें सूनी हैं। मुझे तो ढाई वर्ष मे यहाँ ऐसा ही लगा है कि इलाहाबाद मे रूप की कमी है ।

प्रकृति और नारी दोनो सुन्दर हैं। कभी-कभी ऐसा लगता है जैसे नारी प्रकृति का चेतन स्वरूप है और प्रकृति नारी का विराट रूप । दोनों में ही महान् आकर्षण है।

झुकने या समझौते मे विश्वास न करना साहस की बात है, पर सदैव नही। कभी-कभी प्रतिकूल परिस्थितियों के सामने झुकना पड जाता है। तब तो विवशता ही जीवन हो जाती है। जीवन तो सुख दुःख, हर्ष-शोक इत्यादि के पलो की एक Whole unity है। यदि आप कुछ सुख के पलों को ही जीवन समझते हैं तो आपकी बात ठीक है, पर ऐसे पल जीवन मे कितने आते हैं ?

'रुपया ध्येय नहीं केवल साधन मात्र है' यह तो ठीक है, पर आजकल के युग में जीवित रहने के लिये यह एक आवश्यक वस्तु है। जीवित रहने के लिये ही हमे कभी कभी मन के प्रतिकूल काम करने पड़ते हैं। ऐसे काम किसे अच्छे लगते हैं, पर अपने ध्येय के लिये साधन जुटाने के लिये हमे मन के प्रतिकूल काम भी करने पड़ते हैं। यदि हमें अपना ध्येय प्रिय है, तो साधन की प्राप्ति के लिये हमे जीवन को धनुष की तरह मोड ही देना चाहिये।

'इसके लिये उपयुक्त पात्र' की बात आपने बहुत ही सुन्दर कही है, पर मैं यह सोच कर उदास हो जाता हूँ कि इस विश्व में ऐसे भी कितने ही अभागे होंगे जिनके प्राणों का अगाध रस प्राणो मे ही सूख जाता होगा। मैं भी एक ऐसा ही अभागा हूँ।

मुझे आज आपकी वही बात याद आती है कि 'मनुष्य जब जो चाहता है वह उसे नहीं मिलता। मिलता है तब जब उसकी कामना नही रह जाती।' 'मजरी' के प्रथमाक मे मेरी एक मुन्शी की अनुवादित कहानी निकली है। उसके अत में, कलाकारो का परिचय है। मेरे परिचय मे सम्पादक ने लिखा है, "आप गुजराती के सफल अनुवादक हैं।" पढ कर मन मे ऐसा आया कि इसे फाड कर फेक दूँ। मैं कभी भी यह नहीं चाहता था कि मुझे लोग इस तरह से जानें। अब अगले किसी अक मे लीलावती मुन्शी या मुन्शी के अनुवाद के साथ मेरा फोटो भी निकलेगा, पर मैं मन से यह भी नहीं चाहता था कि किसी अनुवाद के साथ मुझे अपने फोटो के प्रकाशन का अवसर मिले। आज चार पाँच पत्रिकायें हैं जो मुझसे अनुवाद माँगती है, पर मैं जो चाहता हूँ, वह नही माँगती। मुझे इतना विश्वास अवश्य है कि एक दिन मेरी चाही हुई चीज भी ली जायगी, पर तब जब उसके प्रकाशन या विज्ञापन के लिये कोई उत्साह न रह जायेगा। भाग्य की यह विडम्बना सभी जगह है।

बाल-साहित्य की अपनी दो अनुवादित पुस्तकें मैंने भेजी हैं। स्वीकार कीजियेगा। शनिवार के प्रभात मे मैं स्टेशन पर आपको लेने आऊँगा। महादेवी जी यहीं हैं।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

51

30 ए, वेली रोड

प्रयाग

1/2/48

आदरणीय 'मानव' जी,

पत्र तो आपका परसों मिल गया था, पर परसों सध्या से आज तक कुछ भी नही हो सकता है। वैसे तो कोई किसी के लिये रुक नही सकता, पर ऐसा लगता है जैसे कुछ घटो के लिये गाधी जी की जीवन-यात्रा की समाप्ति के साथ साथ विश्व का जीवन रुक गया हो।

परसो सध्या को जैसे ही सूरज डूबा मैं घूमने निकल गया था। सवा छह बजे होगे। एक बगाली महोदय अपने बगले से निकले, तेजी से बढे, मेरे पास आकर रुक गये और बोले Gandhi ji is dead! Gandhi ji is shot dead! इस पर मेरे मुँह से 'ए' शब्द निकला। आँखें फाड कर मैंने उनकी ओर देखा, पर तब तक वे आगे बढ गये। मैं घर की ओर लौट पडा। देखते ही देखते चौराहे पर सैकडो आदमी जमा हो गये, सभी एक दूसरे से पूछ रहे थे, क्या यह सच है? सच है क्या यह? जैसे किसी को किसी पर विश्वास न हो।

थोडी देर बाद ही यूनिवर्सिटी यूनियन की मीटिंग मे मैं गया। सब काष्ठ की प्रतिमा से बैठे थे। इतनी देर मे ही अमृत बाजार पत्रिका का पैम्फलेट आ गया। एक व्यक्ति ने उसे सामने दीवार पर लगा दिया। उसमे मोटे-मोटे अक्षरो मे छपा था, Gandhi ji is no more! उस समय ऐसा लगा जैसे स्वप्न टूट गया हो और जो कुछ स्वप्न मे था वही सत्य दिखाई दे रहा हो। मेरा सर नीचे झुक गया और आँखो से आँसू लुढक पडे। उस निस्तब्धता में लोगो के सुबकने के स्वर आ रहे थे। सभी रो रहे थे। किसी को कुछ भी कहते न बनता था।

तब से अब तक प्रत्येक पल, सामूहिक तथा व्यक्तिगत शोक, वेदना, चिंतन, प्रार्थना और गांधी जी की चर्चा मे ही बीता है। सोचते-सोचते ही रात को बारह बजे के आस-पास नीद आ गई। फिर ऐसा स्वप्न देखा है कि शात और गम्भीर गाधी जी प्रार्थना मे हाथ जोडे बढे आ रहे हैं और हत्यारे ने सामने आकर गोली मार दी है। उसी समय मेरी आँख खुल गई।

हम लोगो ने अपने जीवन मे सबसे महान् सुख और प्रसन्नता का दिवस देखा—15 अगस्त, और सबसे महान् सामूहिक शोक और वेदना का दिन भी देखा—31 जनवरी। आने वाली पीढ़ियाँ शताब्दियों तक एसे दिन नही देख सकेंगी।

किसी भी युग की सबसे बड़ी ट्रेजेडी रही है कि उस युग के महापुरुष को उस युग ने ही नहीं पहचाना।

मुझे ऐसा लगता है कि जैसे मनुष्यता की एक के ऊपर एक सीढियाँ हो। उनमें सबसे ऊपर महात्मा जी पहुँच गए थे और सबस नीचे था उनका हत्यारा, और समस्त विश्व मानवता इन्हीं दो छोरों के मध्य मे है। गाधी जी की हत्या मे इन्ही दो छोरो का सघर्ष हुआ है। Good और Evil का सघर्ष हुआ है, पूरी मानवता को चुनौती दी गई है।

अब से कुछ महीने पहले एक दिन सध्या की छाया मे महादेवी जी से बात करते मैंने कहा था, "कलकत्ते मे एक आदमी ने गाधी जी पर लाठी से वार किया। मुझे तो ऐसा लगता है कि गाधी जी को और कोई नही मारेगा कोई हिन्दू ही मार डालेगा।" परसो सध्या को उन्ह एक हिन्दू ने ही मार डाला। यह जाति इतना गिर गई है! कल से अपने को हिन्दू कहत हुए लज्जा आती है।

आज प्रभात काल में मैं साहित्यकार ससद् महादेवी जी से मिलने गया था। उनके बैठने वाले कमरे की कालीन, तकिये, चादनी सभी चीजें हटा दी गई थी। एक शोक का सा प्रत्यक्ष वातावरण छाया हुआ था। महादेवी जी आई। आज उनकी श्वेत धोती की किनारी गहरी काली थी। उन्होने अपना कासनी सालू ओढ रखा था। चेहरे से ऐसा लगता था जैसे महादेवी जी इन दो ही दिनो मे उम्र मे पाँच वर्ष बढ़ गई हा। वे आकर बैठ गई। पाँच मिनट तक हम बिल्कुल निस्तब्ध ही बैठे रहे। फिर मैंने साहस कर पूछा,

"कल आप यही रही या सगम गई थी!"

"नही तीन बजे तक तो मैं वही (महिला विद्यापीठ मे) रही, पर फिर लडकियाँ तो सगम चली गई। मैं यहाँ आ गई। भीड मे तो शोक व्यक्त नही होता। चार बजे मैं नाव मे बैठ कर गगा के पार चली गई थी। सध्या समय तक वही बैठी रही" दबी दबी हुई आवाज म जैसे कोई बीमार आदमी बाल रहा हो, महादेवी जी ने कहा।

'आपको परसो सध्या को ही पता लग गया होगा?"

"मैं धीरेन्द्र जी के यहाँ उनकी लडकी के विवाह मे गई थी। वही पता लगा। उसी समय मैं चली आई। घर पर आकर रोये धोये, पर इस सबसे क्या होता है," एक गम्भीर विश्वास छोडते हुए उन्होने कहा।

/

"हाँ, भीड की निस्तब्धता मे केवल सुबकने के ही स्वर सुनाई दे रहे थे। सभी रो रहे थे। सबसे बडा दुःख इस बात का है कि जिस समय उनकी ससार को आवश्यकता थी, तभी वे हमारे बीच नही रहे।"

"पर फिर भाई, ऐसे महान् व्यक्ति का अन्त क्या होता ? यह तो एक महान् अन्त है, एक विशाल अन्त। सध्या का समय था, प्रार्थना मे जा रहे थे ध्यान-मग्न, उपवास से और भी पवित्र हो गये थे, और जनता-जनार्दन सामने थी। वैसे तो उनको मारना बहुत सहज था, सबसे सहज, और उनके मारने वाले को तो कदाचित् अपने प्राण भी न देने पडते, वह तो कहीं इधर-उधर घुस कर भी मार सकता था, पर उनका अन्त ठीक ही स्थान पर और ठीक ही समय पर हुआ है। यह तो एक महान् व्यक्ति का महान् अन्त है। कुछ दिन बीमार रहकर मृत्यु होती, तब भी वह बात नही थी, उपवास मे अन्त होता, तो संसार यही कहता कि देशवासियो ने बूढे की बात नही मानी और बूढे ने अपने प्राण दे दिये।"

"पर मुझसे तो उस हत्यारे की कल्पना भी नहीं होती। क्या कोई मनुष्य इतना भी गिर सकता है ? और यह कैसी बात है कि उनको इसी देश के एक हिन्दू ने मार डाला ?"

"यह तो कुछ दिन से लगने लगा था कि उन्हें कोई मुसलमान तो मारेगा नहीं, पर ऐसा लगता था कि हो सकता है कोई शरणार्थी हिन्दू मार दे। यदि कोई शरणार्थी मार देता तो कुछ थोडा स्वाभाविक सा भी था, पर अब तो सभी के लिये लज्जा की बात है।"

"हाँ, महात्मा जी और उनका हत्यारा, महानता और लघुता की दो सीमायें थी, दुनिया यही कहेगी। पर इस व्यक्ति ने देश को दुनिया की दृष्टि मे बहुत गिरा दिया है, और इसने उस व्यक्ति पर प्रहार किया जो ससार मे किसी का भी शत्रु न था।"

"हाँ, यह प्रतिक्रियावादी शक्तियो ने चुनौती दी है और यदि इन्हे ठीक से न दबाया गया तो ये सिर उठायेंगी," महादेवी जी ने गम्भीर होकर कहा।

"कल आपने साढे आठ बजे जवाहरलाल जी तथा पटेल के भाषण सुने थे क्या ?"

"नही, मैंने कुछ नहीं सुना। उस समय कुछ भी कहने सुनने का मन न था," उदास स्वर मे महादेवी जी बोली।

"जवाहरलाल का तो गला बिल्कुल रुँध गया। वे भाषण तो दे रहे थे, पर शब्द निकलने कठिन हो रहे थे। वे तो बिल्कुल रो रहे थे। पर पटेल वास्तव मे लौह पुरुष (Iron man) हैं। वे बोल रहे थे। उनके शब्दो मे आन्तरिक व्यथा तो थी, पर उनका न तो गला रुँधा था और न वाणी ही थरथराई थी। ऐसा लगता है पटेल के जीवन मे आँसुओ के लिये कोई अवकाश नहीं" महादेवी जी चुपचाप कुछ सोचती रहीं और फिर बोली, "दुःख तो सभी को हुआ है।"

"कल ही रात मे दस बजे तक दुनिया के बड़े-बड़े आदमियो के comments आ गये थे। जार्ज बर्नार्डशा ने कहा है, it shows how dangerous it is to be too good शा की बात सबसे मौलिक (original) और सबसे practical है। जितने भी comments आये हैं उनमे सबसे बुरी बात जिन्ना ने कही है। उन्होने तीन जगह हिन्दू शब्द का प्रयोग किया है जैसे उनका और किसी से कोई सम्बन्ध ही न हो।"

"वह कभी भी अपनी परिधि से बाहर नही देख सकता," महादेवी जी ने कहा।

"मृत्यु के बाद तो किसी से कितना ही सैद्धान्तिक विरोध क्यो न रहा हो, सब भुला दिया जाता है और अपने विरोधी की कुछ अच्छी बात कहने के लिये मन अपने आप उमडता है, पर जिन्ना के comments से ऐसा लगता है जैसे उसका एक-एक शब्द बहुत देर तक सोच कर लिखा गया हो।"

इतने मे रामदास चाय ले आया। दो दिन से महादेवी जी ने न तो कुछ खाया है और न सोयी हैं। 31 को मैने भी उपवास रखा था अब कुछ खाना था। मैंने फिर बात छेडी। मैंने कहा,

"अभी देश मे साहित्यिको के comments नही आये।"

"साहित्यिक तो अभी रो ही रहा होगा। रोना रुकने पर ही कुछ कहेगा और वह भी एक दो शब्दो मे नही, कुछ बडी बात ही कहेगा।" महादेवी जी की यह बात साहित्यिको की ओर से थी पर मुझे ऐसा लगा जैसे वे अपनी बात कह रही हो। महादेवी जी गाधी जी की मृत्यु पर कोई बडी चीज लिखेंगी ऐसा मेरा अनुमान है।

महादेवी जी ने दोनों प्यालो में चाय बना दी थी। मैंने अपना प्याला उठा लिया। चारों ओर वातावरण मे एक गम्भीर उदासी छायी हुई थी। महादेवी जी अधिक गम्भीर होकर बोलीं,

"उनके लिये कोई कमेन्ट (comment) भी क्या दे सकता है। जहाँ से वे अपना काम छोड़ गये हैं, कोई वही से उसे आरम्भ करने की बात कहे, जो उनका काम अधूरा रह गया है उसे पूरा करे, यही सबसे बडा comment होगा।" फिर कुछ क्षण रुक कर बोली, "मनुष्य को व्यक्तिगत सम्बन्धो के कारण अधिक दुख होता है। विश्व की एक भारी क्षति हुई है। यह तो दुख की बात है ही। बापू आधी रात मे उठकर भी पत्रा का उत्तर देते थे। हम तो पत्रो का उत्तर भी नही दे पाते," महादेवी जी और भी उदास हो गई।

"आपका तो उनसे पत्र-व्यवहार होगा ?" मैंने पूछा।

'हाँ, मैंने उन्हे जितनी बार भी पत्र लिखा है, उन्होंने तुरन्त ही उसका उत्तर दिया है। अभी मैं देहली गयी तो उनसे मिली थी। देखकर कहने लगे, 'हाँ, मैं जानता हूँ तुम बहुत तूफान करती रहती हो।' इतने मे डा० महमूद आ गये। उनको

बापू जी ने समय दे रखा था और मैं तो बिना नियत किये हुए ही पहुँच गई थी। मैं उठ खड़ी हुई तो बोले, 'अरे, तुम तो चल दीं।'

'अब आप डा० साहब से बातचीत करेंगे न ?'

'अच्छा, अभी तो तुम रहोगी। इन्हें तो जाना है। फिर कभी आ जाना,' फिर मैं इतनी घिरी रही कि उनसे मिलना नहीं हुआ और यदि मैं जाती तो वे भाषा का प्रश्न लेकर उलझ पड़ते और उनके सामने मैं तर्क तो कर नहीं सकती थी।" महादेवी जी के नेत्र आँसुओं से भर गये। उन्होंने अपनी आँखें बन्द कीं और अश्रुबिन्दु नीचे ढुलक पड़े। पलकें बिल्कुल भीग गईं। मैं अपलक उनकी ओर देख रहा था। अपने आँसुओं की ओर से मेरा ध्यान हटाने के लिये बोलीं, "अच्छा, तुम चाय पियो।" मैंने आँखें नीचे झुका लीं और प्याला ओठों से लगा लिया। चाय के दो घूँट पीकर मैंने जैसे ही अपनी आँखें ऊपर उठायीं तो एक हलके, छोटे सफेद रूमाल से उन्होंने अपने आँसू पोंछ लिये थे।

उन्होंने भी थोड़ी चाय पी। मैंने कुछ खाया भी। कुछ मिनटों की निस्तब्धता के उपरान्त मैंने कहा, "शोक और वेदना के अवसर पर गीता से सचमुच बहुत बल मिलता है। महात्मा जी की मृत्यु के बाद से रेडियो में गीता का पाठ आ रहा था और गांधी जी की प्रिय 'रामधुन' पाठ करने वाले की वाणी में एक व्यथापूर्ण कम्पन था, पर फिर भी उसका एक-एक शब्द स्पष्ट था। ऐसे शोक के अवसर पर गीता से महान् बल मिलता है।"

"इसके लिये हम उसके लेखक के ही ऋणी हैं। कौन जानता है युद्ध में यह सब कुछ कृष्ण ने कहा ही होगा। तब से उसमें न जाने क्या-क्या जोड़ा गया है। उसकी भाषा भी तब से पाँच सौ वर्ष बाद की लगती है।"

"हाँ, मेरी भी ऐसी धारणा है कि कृष्ण और अर्जुन का तो केवल उन्होंने आश्रय लिया है, पर बात व्यास जी ने अपने मन की ही कही है। साहित्यिक तो प्राचीन कथाओं के आधार लेकर अपने ही विचार और दृष्टिकोण सामने रखता है। कौन जानता है कि उर्मिला ने लक्ष्मण से वही बातें कही होंगी जो गुप्त जी ने उसके मुख से कहलवायी हैं। यह तो कलाकार की अपनी कल्पना है जो सच सी लगती है।' फिर मैंने कहा, "कल रेडियो से कबीर की साखी भी हो रही थी। ऐसे समय पर यह सब कुछ अच्छा लगता है।"

"हाँ, मृत्यु का Conception जैसे कबीर की साखियों में मिलता है, वैसा कहीं नहीं मिलता। वहीं कहार, डोली और चार जनों की बात कही है।"

"कबीर ने मृत्यु को भयावह रूप में नहीं देखा, उसके प्रिय रूप की कल्पना की है।"

महादेवी उठकर अन्दर चली गई । उनका रूमाल वहीं रह गया था। मैंने उसे अपने हाथ में उठा लिया और देखा, रूमाल का मध्य भाग पूरी तरह आँसुओं से भीग गया था। वे लौटकर आई । मैंने पूछा, "आज तो ससद मे मजदूरों का काम बन्द रहेगा ?"

"हाँ अब तो वसन्त-पचमी पर भी कुछ न हो सकेगा। जब मन की स्थिति ठीक होगी तभी कुछ होगा। अभी तो मन पर एक पत्थर-सा रखा हुआ है।" अभी तक महादेवी जी ने, मुझे ऐसा लगता है, कुछ लिखा नहीं। कुछ लिख चुकने पर ही उनका मन हल्का होगा।

फिर आपके विषय मे पूछने लगीं, "मानव जी का कोई पत्र आया था क्या ? पता नहीं उनका यहाँ कैसा लगा ?"

"बहुत ही अच्छा लगा। पत्र आया था। लिखा है, वसन्त पचमी रविवार को ही है न ? तब तो आ सकूँगा। पर अब तो आने की बात ही नहीं उठती।"

"हाँ, मैंने जिनको पत्र लिख दिए थे, उन्हें अभी 'ना' के पत्र लिखूँगी।"

"तीन फरवरी को 7 बजकर 47 मिनट पर 'मानव जी लखनऊ रेडियो से बोलेंगे। विषय है 'लेखक और पाठक'। सरकारी नौकरी में तो बिना आज्ञा के न कुछ लिख सकते हैं न कुछ कह सकते हैं। अभी तो उन्हें सहज ही म आज्ञा मिल जाती है। पर जिस दिन सघर्ष आ खड़ा हुआ उसी दिन वे यह नौकरी भी छोड़ देंगे, मुझे भय लगता है।" और फिर मैंने कहा, "इस व्यक्ति को जीवन से अधिक सिद्धान्त प्रिय हैं।" कुछ देर चुप रहकर बोली, "अब की बार तो वे इलाहाबाद दूसरी बार आए थे ?"

"नहीं तीसरी बार।"

"अब तो पास आ गए हैं। छुट्टियों मे यहीं चले आया करें।" "पर आने-जाने मे रुपया भी तो बहुत खर्च हो जाता है।" अपने आप ही बोलीं।

"नहीं रुपये पैसे की बात उनके साथ नहीं उठती। उनका तो ऐसा मन है कि यदि उनके पास हजारों रुपए हों तो वे उन्हें थोड़ी ही देर म बराबर कर दें।"

"साहित्यिक कलाकार तो ऐसा होता ही है" गम्भीर होकर महादेवी जी ने कहा। फिर आपके विषय मे बहुत सी बातें हुई । आपके अपनी माता जी स कैसे सम्बन्ध है? अपनी पत्नी से कैसे ? अपने मित्रों से कैसे ? अपने शिष्यों से कैसे ? इन पर मैंने कुछ थोड़ा-सा प्रकाश डाला। महादेवी जी आपकी बहुत प्रशसा कर रही थीं। कह रही थीं, "सभी व्यक्ति अपने को चारों ओर से छिपा कर रखते हैं, पर इस व्यक्ति मे यह बात नहीं।"

बातचीत के प्रसग मे आत्म-दमन मे ही उत्तम कला का सृजन होता है, इस पर बात छिड़ गई थी। कहने लगीं, 'विवाह तो केवल वासना के आधार पर ही है। कोई

थी। पर आज बीसवीं सदी में भी एक सन्त महात्मा की इस प्रकार हत्या हो सकती है, इसकी कल्पना करना भी कठिन पड़ता था। अब कल्पना सत्य हो गई है तो सत्य म विश्वास भी नहीं होता और अन्तर की गहराई से एक हलकी सी ऐसी आवाज आती है कि क्या सचमुच इस महात्मा की हत्या कर दी किसी ने ? और ऐसा लगता है कि दुनिया दो हजार वर्ष मे जरा भी आगे नहीं बढ़ी।

राजनीति मे जो स्थान गांधी जी का था, वही स्थान मैं तो आज मे साहित्य में महादेवी जी का समझता हूँ। 'साहित्यकार ससद' मेरे लिये गांधी जी के 'सेवाग्राम' जैसा ही है। जैसे सेवाग्राम मे छोटे छोटे से व्यक्ति को गर्व होता होगा कि उसे बापू का सम्पर्क मिला था, ऐसे ही कभी-कभी जब मैं सोचता हूँ तो मेरा मन अमित अह्लाद से भर उठता है कि इस महान् कलाकार का सम्पर्क पाकर मेरा जीवन धन्य हो गया। मुझे महादेवी जी का सम्पर्क मिला है, इसका मूल्य मैं अभी नहीं आँक सकता, पर जिस दिन वे हमारे बीच न रहेंगी और सम्पर्क के पल फिर कभी न लौट सकेंगे, उस दिन मेरी प्रत्येक सांस कहेगी कि वे पल अमूल्य थे। अभी भारतवर्ष में साहित्य को Due place नहीं मिली। फिर भी ससद् एक दिन यदि प्रत्येक भारतीय का नहीं तो प्रत्येक साहित्यिक का तीर्थ स्थान अवश्य होगा।

पत जी के काव्य मे सयम की बात करते हुए कदाचित् महादेवी जी का सकेत उनकी बाद की रचनाओं की ओर था, 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' की ओर। 'स्वर्ण किरण' को पढकर मुझे भी ऐसा लगा है कि इस रचना मे सयम भी है तथा भाव-पक्ष की अपेक्षा दर्शन-पक्ष अधिक है।

हमारी रशन टीचर मिस केम्प (P M Kemph) ने रशन पढाना आरम्भ कर दिया है। बहुत अच्छा पढाती हैं। मैं तो आशा करता हूँ कि डेढ़ वर्ष मे भाषा के मार्ग पर वे डाल देंगी। फिर ज्ञान विस्तृत करना परिश्रम की बात है। इस महिला की अवस्था चालीस वर्ष के लगभग होगी। ये अविवाहित हैं। स्वभाव की बहुत कोमल है और Sense of humour इनमें बहुत अधिक है। भारतीय स्त्रियों मे Sense of humour नहीं के बराबर ही होता है। यूरोपियन नारी की यह एक विशेषता है। जीवन मे किसी स्त्री से पढने की मेरी बड़ी इच्छा थी। अब इनसे पढना हो गया है। पढाने म ये काफी परिश्रम करती हैं। जब रशन शब्द मुझसे नही बुल पाते तो क्लास के बाद अपने आफिस म बुलाकर बोलना सिखाती है। मैं एक दिन इन्हें महादेवी जी से मिलाना चाहता हूँ।

'ससद्' का उद्घाटन तो वसन्त पचमी के दिन होगा नहीं। महात्मा जी के निधन शोक के कारण स्थगित कर दिया गया है। फिर भी आप आइयेगा।

हमारी परीक्षायें 3 मई के लिये स्थगित कर दी गई हैं। मैं एक दो दिन के लिए लखनऊ आना चाहता हूँ। एसेम्बली का सेशन कब से आरम्भ होगा।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
15 / 2 / 48

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका 10/2 का पत्र मिला। 12 कि प्रभात म यहाँ महात्मा जी को अन्तिम श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए आस पास से तथा दूर दूर से अपार जन-समूह उमड पडा था। मुरादाबाद तथा लखन ऊ से मेरे एक दो परिचित भी आये थे। बादे स सुश्री शकुन्तला सिरोठिया भी वही बहिन आई थी। उस दिन सुवह को आपकी भी प्रतीक्षा की, पर मैं जानता था आप आयेंगे नही, क्योकि आपको भीड अच्छी नही लगती।

12 ता को उपाकाल से ही यहाँ आकाश मे हल्के-हल्के श्वेत बादल छा गये थे। जैसे स्वर्ग मे देवनागण इस सत का स्वागत इन श्वेत पुष्पो के पाँवडे बिछा कर कर रहे हो। जिस मार्ग पर उनकी अस्थियों का जुलूस जाने वाला था, उस पाँच मील लम्बे मार्ग के दोनो ओर जनता आ खडी हुई थी। जब रथ मार्ग स गुजरा, ता सभी ने दानो ओर से पुष्प वर्षा की। फिर जनता सगम की ओर उमड पडी। अनेको व्यक्ति घुटनो-घुटनो पानी मे दूर तक चले गए। मैं भी पानी मे दूर तक चला गया, क्योकि मुझे महात्मा जी की अस्थि ले जाने वाली नौका का स्नैप लेना था। मैं पानी के बीच मे खडी हुई एक नौका पर चढ गया। इतने मे उसी पानी मे अपने कपडे सँभाले कुछ महिलायें आई। इनमे से कुछ बहुत सुन्दर थी और एक दो तो असाधारण। वे आई और उनमे से एक ने मुझे हाथ बढा कर ऊपर लेने के लिए कहा। मैं जरा झिझका पहले, पर फिर एक दूसरी लडकी ने हाथ बढा दिया। वे सभी मेरा हाथ पकड कर ऊपर चढ गई। नौका के दूसरे किनारे पर जाकर अस्थि ले जाने वाली नौका देखने लगी। मै भी उनके पीछे जा खडा हुआ। दूर गगा-यमुना की धारा मे जाती हुई उस श्वेत नौका को, जब वह आँखो से ओझल होने लगी तो, उन सभी ने आँखें बन्द कर हाथ जोड लिये। मेरे भी हाथ अपने आप जुड गये। सब ने मन ही मन श्रद्धाजलि अर्पित की और एक ने व्यथा से टूटे स्वरो मे कहा, 'बापू जी अमर थई गयाँ" (बापू जी अमर हो गये)। मैंने इनसे थोडो सी बातचीत की। ये गुजराती महिलायें बम्बई स महात्मा जी को अपनी अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करने आयी थी। अच्छा, नाव पर यदि मेरी जगह आप होते और वे इसी प्रकार सहज भाव से अपने हाथ बढा कर पकडने के लिए कहती, तो आप क्या करते ? आप ता नारी को स्पर्श देते नही। मैंने वल्लभभाई पटेल को पहली बार देखा। एक ओर खादी के कुर्ते पर गले मे एक चद्दर डाले बैठे थे, गम्भीर, शात और कुछ उदास, बिल्कुल बिना हिले-जुले। इनका चमकदार विशाल भाल है, सिर सपाट तथा गर्दन मोटी है, मूँछे दाढी तो ये रखते ही नही, रग इनका गेहुँआ है। इनकी उम्र 78 वर्ष है, पर मुश्किल से

60 वर्ष के लगते हैं। इनकी मुख की गम्भीरता भयानक है। ये कदाचित् ही हंसते हैं। अपने विरोधी को अपने व्यक्तित्व से ही सहमा देने वाला व्यक्ति है यह। सचमुच ये लौह पुरुष है।

परसों मैंने 'कल्पना' देखी। बहुत दिनों से इसका शोर सुन रक्खा था। इलाहाबाद में आज इसका पहला ही दिन था। इसे देखकर मुझे ऐसा लगा, जैसे इसके पात्र नृत्य में ही अभिनय करते हों। इसके पात्र जो कुछ मुंह से कहते हैं उसे इस प्रकार नहीं कहते जैसे हम जीवन में देखते हैं, पर उसके साथ मुंह के शब्दों, शरीर के अंगों की एक Rythm सी होती है। समाज, संस्कृत, राष्ट्रीयता सभी पर इसमें प्रकाश डाला है और सभी के दोषों पर व्यंग्य किए हैं। कथा सूत्र पूरी तरह समझ में नहीं आता। अलग-अलग बहुत सी बातें हैं पर वे सब एक कथा में किस प्रकार पिरोयी है, यह पता नहीं लगता। जीवन में, घटनायें तो Haphazard way में होती हैं, पर कलाकार अपनी कृति में उन्हें एक क्रम दे देता है। इस प्रकार का क्रम मुझे इसमें नहीं दिखाई दिया। ऐसा लगता है कि उदय शंकर को अपने जीवन की घटनाओं के प्रति इतना मोह है कि वे सभी कुछ दे देना चाहते हैं। एक दो बंगाली गाने भी हैं। वे मुझे अच्छे लगे। पर बाकी गाने तो कविताएं हैं। मुझे अच्छे तो नहीं लगे। इसमें संदेह नहीं कि नृत्यकलाविदों के लिए यह एक महान् कलाकृति हो सकती है, पर जो नृत्य की ए बी सी भी नहीं जानते उनके लिए तो यह समझ के बाहर की वस्तु है।

अपनी रतन अध्यापिका से मेरा अभी पूरा परिचय नहीं हुआ। अब मैं प्रयत्न करूंगा। जब आप आयेंगे, तो आपका परिचय मैं उनसे जरूर कराऊंगा। इसी सेशन में Zumidari Abolition Bill एसम्बली में पेश होगा। जिन दिनों इस पर बहस हो, उन्हीं दिनों मैं एसम्बली देखना चाहता हूँ। प्रबन्ध कर दें।

डाक्टर रमेश आये थे। आपकी बहुत प्रशंसा कर रहे थे। वे कल चले गये हैं। मैंने एक दिन उनसे बात-बात में आपका हाल में बनाया हुआ प्लॉट उन्हें सुना दिया। उसी प्लॉट को लेकर उन्होंने एक कहानी 'लेखक' शीर्षक से लिखी है। अपनी इधर की लिखी हुई नई कहानियों में वे उसे अपनी सर्व-प्रिय कहानी बता रहे थे। पर कह रहे थे यह कहानी 'मानव' जी की है और बिना उनकी आज्ञा के प्रकाश में नहीं लाऊंगा। मैंने भी वह कहानी सुनी है। अच्छी लिखी है, पर मेरे मतानुसार अभी उसमें (Climax) वैसा नहीं आया, जैसा आ सकता था। वे उसे फिर ठीक कर रहे हैं।

आप मुरादाबाद कब जायेंगे? होली के अवसर पर यहाँ आइयेगा?

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
2/3/48

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका पहुँच का कार्ड ता० 27.2 की सन्ध्या को ही मिल गया था। आपने इस पत्र की प्रतीक्षा करवा दी थी। पत्र न मिलने पर मेरे मन में आपके अस्वस्थ होने की आशंका उठी थी। जिस समय मैंने आपको विदा किया था तभी मुझे लग रहा था कि आप के शरीर के (Tissues) अन्दर से विश्राम के लिए आकुल हैं, पर आप उन्हें अपने मन के कठोर संयम से बाँधे हुए थे। इससे यही लगता है कि जो प्रकृति की माँग है वह पूरी होनी चाहिए नहीं तो वह अपनी पूर्ति का कोई दूसरा मार्ग खोज लेती है। जब तक मेरा यह पत्र मिलेगा, आशा है आप स्वस्थ हो चुकेंगे।

आपने अपनी अस्वस्थता में भी अपने पत्र के अनुपात के अनुसार कदाचित् यह एक काफी लम्बा पत्र लिखा है। इससे पता लगता है कि लिखने को कितना था! इस सब के पीछे एक महान् शक्ति काम कर रही है जो अस्वस्थ दशा में भी आपको काम करने के लिए प्रेरित करती है। बीमारी में पत्र लिखने में तो कष्ट ही होता है प्रिय-जनों के पत्र मिलने पर शान्ति मिलती है और उनमें प्रिय जनों की समीपता में सुख मिलता है। दिन भर तो आपको कमरे में अकेले रहना पड़ता होगा?

यहाँ 28/2 को श्रीमती सुभद्राकुमारी जी के फूल आये थे। दस बजे सुबह उस दिन 'संसद' की ओर से साहित्यिकों का एक समूह 'संगम' गया था। महादेवी जी भी संगम' पैदल ही गई थीं और अस्थि विसर्जन क्रिया के उपरान्त चार बजे सभी लौट आये थे। मैं तो इस सब में सम्मिलित नहीं हो सका, पर मुझे इस बात का पाड़े जी से पता लग गया था। उसी दिन 7॥ बजे, मैं महादेवी जी से मिलने गया था। भक्तिन ने अन्दर पूछकर बताया, "अब तो मैं लखनऊ जाने की तैयारी कर रही हूँ, लौटकर आने पर ही बात होगी।" मैं समझता हूँ महादेवी जी उसी दिन लखनऊ के लिये रवाना हो गई थीं और अभी वहीं हैं भी।

मेरे महादेवी जी के साथ आज भी तो बात ही नहीं उठती। मैं अभी उस परिधि से दूर तक नहीं हूँ।

आशा है अब तक आप की भेंट महादेवी जी से हो भी गई होगी। जब वे लखनऊ से लौट आयेंगी, तो मैं उनसे मिलूँगा और आपकी बात उनसे कहूँगा। एक बार महादेवी जी ने भी इसी आशय की बात कही थी। उन्होंने कहा था कि 'हमारा तो मानव जी से पुराने ढंग से ही पत्र व्यवहार होगा।"

आज मैंने अपनी रवान टीचर को महादेवी जी की 'दीपशिखा' दी। एक बार हाथ में लेने पर उन्हें उसे छोड़ने को ही मन नहीं कर रहा था। वे सभी चित्र देखती

गईं। कविता तो वे समझती नहीं, क्योंकि हिन्दी नहीं जानती, पर चित्रों की भाषा समझने वाला हृदय उन्हें प्राप्त है। चित्र उन्हें बहुत पसन्द आये। एक दो कविताओं का Central Idea भी मैंने उन्हें बताया था। आज समय कम था। किसी दिन निश्चिन्तता से बातचीत होगी। हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासों तथा कहानी संग्रहों की सूची भी मैंने उन्हे दे दी है। इस सूची में महादेवी जी के 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखायें' दोनों हैं। मिस कॅप इस सूची को यूगोस्लाव गवर्नमेंट की Information Magazine में भेजेंगी। कुछ का इसमें से अनुवाद भी होगा।

हिन्दी भाषा के ज्ञान में मिस कॅप संतोषजनक प्रगति कर रही हैं। इनको ट ठ ढ भ घ. ध के बोलने में कठिनाई होती है। यह शायद इसीलिये है कि रशन भाषा में ह की ध्वनि नहीं है। सबसे अधिक कठिनाई उन्हें ट की ध्वनि में होती है। इस ध्वनि के अभ्यास में व थक जाती हैं। थोड़ी हँसी भी रहती है, उस समय जब बार-बार प्रयास करने पर भी वे नहीं बोल पाती। यदि ऐसे ही चलता रहा तो वे बच्चों की हिन्दी की पुस्तकें दो तीन महीने में ही समझने लगेंगी।

आपके गीत कब से रेडियो पर सुनने को मिल सकेंगे।

सादर
शिवचन्द्र

55

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
6 / 3 / 48

आदरणीय 'मानव' जी,

कल सध्या को मैं महादेवी जी के यहाँ गया था। भक्तिन से पता चला कि उनकी तबियत खराब है। हल्का सा ज्वर आ गया है। मैं एक सहज-सा उल्लास लिये गया था, यह सुनकर कुछ उदास हो गया। महादेवी जी से मिलने की आशा तो बिल्कुल जाती रही थी, पर फिर भी भेंट हो ही गई।

रोग-शैय्या से उठकर, वे धीरे-धीरे कमरे में आईं। सोफे पर बैठते ही, मैंने तो केवल उनके स्वास्थ्य की बात ही पूछी थी कि उसका बहुत सक्षिप्त सा उत्तर देकर कहने लगीं, "मैं मानव जी से बहुत नाराज हूँ। एक तो वे स्टेशन पर नहीं आये, दूसरे मैंने उन्हे दो बार फोन कराया, पर वहाँ से दोनों बार यही उत्तर मिला कि काउ सिलर्स रेजीडेंस में इस नाम का कोई व्यक्ति नहीं रहता।"

सुन कर मुझे थोड़ी हँसी आई। मैंने कहा, "यहाँ से जाने के बाद ही से वे बीमार हैं। फिर भी वे स्टेशन गये थे। आप मिली नहीं।"

"नही भाई, यदि गये होंगे तो वे ठीक समय पर नही पहुँचे होगे। मैंने स्टेशन पर इधर-उधर देखा भी था और फिर बाहर आने पर मुझे दोबारा भी अन्दर जानना पड़ा, क्योंकि कुली ने एक कन्डी छोड़ दी थी और उसी समय विद्यावती कोकिल भी मिली। 'मानव' जी को कुछ देर हो गई होगी। ट्रेन तो बिल्कुल ठीक समय पर पहुँच गई थी। पर फिर सम्पूर्णानन्द जी की कार आ गई। मैं जल्दी ही चली गई।"

'फोन से भी उनका पता नही लगा?"

"हाँ, पहले तो मैंने सम्पूर्णानन्द जी के यहाँ से फोन कराया था। फिर दूसरे दिन मुझे टडन जी के यहाँ रहना पड़ा। वहाँ उनके पी० ए० ने फोन से मालूम किया। रेजीडेंस से पता चला कि यहाँ इस नाम के कोई व्यक्ति नही रहते। भले ही स्टेशन पर न आयें हो, पर मैं तो घर जाती और चकित कर देती। कोई काम ही कराना होता, तो मैं उन्ही से कराती। आखिर अपने से छोटे काम करते ही हैं।" जरा हँसकर उन्होने कहा। आज वे हँस तो रही थी, पर हँसी अन्तर से आ नही रही थी। आज वे अस्वस्थ थीं, अत बातचीत का स्वर भी कुछ धीमा और भारी था।

महादेवी जी ने आपको फोन करने के लिए कहा तो अवश्य होगा, पर वे स्वय तो फोन पर वातचीत करती नही, इसलियें उनकी ओर से जिसने यह काम किया होगा वह इस व्यर्थ के काम मे क्यो Interest लेने लगा?

मैंने कहा, "पर उनका तो 27 नम्बर है।"

"नम्बर तो मुझे याद नही और उनके श्वसुर का नाम भी मुझे नही पता था। मैं समझती हूँ वहाँ इसीलिये इनका पता नही लगा क्योंकि कमरा तो इनके श्वसुर के नाम पर ही Allot होगा।"

"यह भी खूब रहा, जब वे स्टेशन पर आपको खोजने गये तो आप नही मिली और जब आपने फोन पर उन्हे खोजा तो वे नही मिले।"

"हाँ, हुआ तो ऐसा ही। हम तो 'मानव' जी से अभी तक बहुत नाराज थे। पर अब नही हैं। आज ही उन्हे पत्र लिख देना।" महादेवी जी ने कहा।

मैंने उनसे रेडियो पर अपने गीतो को दे देने की बात कही थी। यह भी कहा था कि Selection या तो आप ही कर दीजियेगा और यदि आपको मानव जी पर विश्वास हो तो वे कर देंगे। और अब तो 'मानव' जी वहाँ है ही, इसलियें आपके गीतो की Tuning मे भावो की हत्या का भी कोई भय न रहेगा। यह उत्तरदायित्व वे ले लेंगे। सुनकर पल भर रुकी। फिर बोली,

"भाई, उन पर विश्वास क्यो नही है, और मैं तो स्वय Selection कर भी नहीं सकती। वे ही कर देंगे।"

"प्रारम्भ मे पचास गीत जायेंगे और वे भारतवर्ष के सभी स्टेशनो से Broadcast होगे।"

"मानव जी ठीक छाँट देंगे। यह काम स्वयं ठीक से हो भी नहीं सकता। अपने लिखे हुए में से स्वयं छाँटना यह कुछ स्वाभाविक सा भी नहीं लगता है।"

इस पर मैंने हँस कर कहा, "आपके 'आधुनिक कवि' पर ही 'मानव' जी कह रहे थे कि 'क्या गीत छाँटे हैं?' और जब आपके 100 गीतों के अंग्रेजी में अनुवाद होने की बात थी, तब भी यह अधिकार वह अपने लिये ही चाहते थे।" फिर दो पल रुककर मैंने कहा, "जब आपके गीतों में इतना कोमल मधुर संगीत है तो उसका परिचय जनता को होना ही चाहिए। हमारी रशन टीचर अभी हिन्दी न के बराबर ही समझती हैं, पर मैंने आज आपकी एक कविता 'आँसुओं के देश में' सुनाई तो सुन कर कहने लगी कि It has a good deal of music इसी बात के सिलसिले में मैंने उनसे आपका 'महा संगीत' वाला Suggestion बताया और उसकी योजना स्पष्ट की। सुनकर उन्हें अन्तर में तो बहुत अच्छा लगा, पर आन्तरिक उल्लास की रेखाओं को हल्की गम्भीर स्मिति में दबाते हुए बोली,

"हमारे सामने यह होगा नहीं और हम करने भी नहीं देंगे।" उनके कहने से मैं इतना ही कह सकता हूँ कि यदि किसी दिन आपका संसद में रहना हुआ और आपने निश्चित रूप से अपने हाथों इस योजना का भार सँभाला, तो महादेवी जी 'ना' नहीं कर सकेंगी। पर 'रवीन्द्र संगीत' के समान 'महा संगीत' की सृष्टि सम्भवतः अभी दूर की बात है। आज तो मुझे इसलिए विजय का गर्व और उल्लास है कि रेडियो वाले कह-कह कर थक गये और महादेवी जी ने स्वीकृति नहीं दी, पर आपके थोड़े से प्रयास से ही उनके गीत जनता को Air पर सुनने को मिल सकेंगे।

अच्छा तो अब आप Contract Form भिजवा दीजियेगा। महादेवी जी मौलाना आजाद से मिलने एक दो दिन में दिल्ली जाने वाली हैं। यदि वे न गईं, तो मैं शीघ्र भेज दूँगा।

आज बात करते-करते महादेवी जी कह रही थीं, "हमारे साथ तो कुछ ऐसा है कि यह कुछ पता ही नहीं लगता कि किसी के साथ कितना सम्बन्ध है। किसी से दस मिनट की बातचीत में भी उसे वैसा ही लगता है, और एक घन्टे की बातचीत में भी। एक-दो दिन का सम्बन्ध हुआ तो बहुत ही हो गया, कुछ और अधिक दिन हो गये तो उससे भी अधिक। Formality की प्राचीर हमसे नहीं खींची जाती।"

"Formality न रखते हुए सब सम्बन्धों को यथास्थान बनाये रखना भी तो बड़ा कठिन है," मैंने कहा।

"भाई, हमको तो ऐसा कुछ लगता नहीं। हाँ एक सीमा है उससे आगे तो किसी को बढ़ने नहीं देते।"

"पर आपके साथ तो बात यह है कि एक आदमी जो आपके साथ बहुत दिन

रहा है और फिर वह कही चला जाये और बहुत दिनो तक न मिले, तो वह आपको याद तो आता नही ?'

'नही, याद क्यो नही आता ! बहुत दिन हो जाते हैं तो कभी-कभी उसके बारे मे जानना चाहते ही हैं।"

महादेवी जी के मस्तिष्क मे कालिदास के ऋतुसहार तथा मेघदूत के अनुवाद करने की योजना है। पर कह रही थी, 'कही-कही बीच में ऐसे स्थल आये है कि आज का पाठक उन्हे अश्लील कहेगा, क्योकि सस्कृत का कवि जहाँ शृ गारिक हुआ है तो फिर घोर शृ गारिक ही हो गया है और उन स्थलो पर पहुँच कर तो हमारी बुद्धि भी कु ठित हो जाती है। तब अनुवाद कैसे हो ? बुद्धि उन्हे ग्रहण ही नही कर पाती। सोचती हूँ उन्हे छोड दूँगी।"

"उन स्थलो का Sublimation कर दीजियेगा और या फिर Twist कर दीजियेगा," मैंने कहा।

"Sublimation तो उनका हो नही सकता, और कुछ करूँगी। कालिदास की यह बात कुछ समझ मे नही आती कि 'कुमारसम्भव' प्रारम्भ से ही इतना सुन्दर काव्य है पर अन्त मे जाकर घोर शृ गार और वह भी शिव और पार्वती का। कालिदास एक तो स्वय शैव थे, इससे भी उन्हे ऐसा नही करना था फिर दूसरे शिव पार्वती तो जगत के माता पिता है।'

"इससे ऐसा लगता है कि कालिदास मन से शृ गारी थे। उन्हे कही उसको अभिव्यक्त करने का स्थल न मिला होगा। वहाँ खोज लिया। दूसरे ऐसा लगता है लिखते समय कालिदास ने उनमे देवत्व की भावना स्थापित नही की। मनुष्यो की तरह ही देखा होगा।"

बात करने मे महादेवी जी कुछ कष्ट सा अनुभव कर रही थी, अत मैं उठ बैठा और विदा ली। चलती बार फिर बोली, "मुझे तो 'मानव' जी पर गुस्सा आ रहा था, पर अब उन्हे पत्र लिख देना कि हम उनसे नाराज नही हैं।"

आपका पत्र भी अभी मिला है। आप अस्वस्थ हैं फिर भी काम पर जाते हैं। यह ठीक नही। और फिर वह काम मन के अनुकूल भी तो नही। इससे तो स्वास्थ्य के निरन्तर गिरते जाने की ही सम्भावना है। आपको यह काम छोडना ही पडेगा। मुझे ऐसा लगता है कि मनोनुकूल काम मे शक्ति का क्षय नही होता वल्कि और शक्ति मिलती है। किसी भी काम के लिए शरीर तो सबमे पहला साधन है। आप उसका तिरस्कार कर काम न कीजिए। आपकी अस्वस्थता की बात सुनकर कल कांति त्रिपाठी भी बहुत दुखी हो रही थी और मैं सोचता हूँ मेरे उठकर चले आने पर उन्होने आपको पत्र लिखा होगा।

मेरा तो अपना ऐसा अनुभव है कि रोग से मुक्त होने पर नवीन और सुन्दर विचार अवश्य उठते हैं। रोग से मुक्त होने पर जब हम उठते हैं तो मन और जीवन कुछ हल्का-हल्का सा लगता है और ऐसा लगता है जैसे हम एक नवीन और ताजी शक्ति लेकर उठे हो। मैं पाँच साल से बीमार नेही हुआ और एक डेढ साल से मेरे जीवन मे कोई बडी सुख की या दुख की घटना भी नहीं हुई। अब मैं जीवन की और शरीर की इस समरसता से सचमुच बिल्कुल ऊब गया हूँ।

आपने अपनी बीमारी की हालत मे यह दूसरा पत्र लिखा है यह पत्र मुझे सबमे अच्छा लग रहा है। पता नहीं क्यो आपके अधिकतर पत्रों मे मुझे ऐसा लगा है कि आपके भाव उमड कर तो अंकित हुए हैं, पर समय की कहूँ, सयम की कहूँ, या नियन्त्रण की, कि हल्की सी झिलमिली आ गई है, पर इन दोनो पत्रो मे ऐसा लगता है कि ऐसी बात यहाँ कुछ नहीं। ये सीधे ही मन से आये हैं। ये दोनो पत्र और पत्रों की अपेक्षा अधिक मधुर हैं, अधिक कोमल। इससे मुझे लगता है बीमारी में व्यक्ति अधिक कोमल, अधिक मधुर हो जाता होगा।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

56

30 ए, वेली रोड
इलाहाबाद
11/3/48

आदरणीय 'मानव' जी,

पत्र लिखे हुए, मैं समझता हूँ कुछ अधिक दिन तो मुझे नहीं हुए पर आज लगता है, जैसे बहुत दिन हो गए हो।

6/3 की रात को डा रमेश आ गये थे। 7/3 को उनके साथ सध्या समय महादेवी जी से भेंट हुई। आज महादेवी जी पहले से अधिक स्वस्थ थी। राजनीति पर बातचीत छिड गई। कहने लगी, "आज कोई किसी भी नौकरी के लिए जाये, उससे यह पूछा जाता है कि आप जेल गये हैं या नहीं? आया कि जेल जाने का और उस काम का किसी भी तरह कोई कार्य कारण सम्बन्ध नहीं होता। वैसे तो अब भी जो पार्टी Power में आती है, तभी वह अपने व्यक्तियों को ऊपर खीचती है, पर किसी की शक्ति का जहाँ सर्वोत्तम उपयोग हो सके, वहाँ हो तो अच्छा रहता है। यह तो जेल जाने की बात रही। फिर वे पूछने हैं आप खद्दर पहनते हैं? अब कदाचित् वे आगे बढें तो ऐसा भी पूछने लगेंगे कि आप क्या खाते हैं? वैसे यह माना खद्दर पहनना अच्छा है, पर हम क्या पहनते है और क्या खाते

हैं, यह बताना स्वयं इतनी छोटी बात है कि कोई भी आत्म-सम्मान वाला व्यक्ति बताना पसन्द नही करेगा।" यह तो आप जानते ही हैं कि जब महादेवी जी बोलती हैं तो धारा-प्रवाह बोलती हैं और अपनी बात पूरी सुना देने से पहले 'हाँ' 'हूँ' के अतिरिक्त दूसरे को और कुछ बोलने का अवकाश नही देती। एम० एल० ए० लोगो की चर्चा करते हुए उन्होने कहा, "ये लोग खद्दर खद्दर तथा और दूसरे सिद्धान्तो के लिए चिल्लाते ता हैं पर बहुत से एम एल ए एस है कि बाहर तो वे अवश्य खद्दर पहनते हैं, पर घरो मे वे ही रेशमी वस्त्र तथा विदेशी साड़ियाँ चलती हैं। उनकी पत्नियाँ लिपस्टिक तथा पौउडर का प्रयोग अब अधिक साहस से करने लगी हैं। उनके यहाँ कोई मिलने जाये तो उसको अब पहले से भी अधिक कठिनाइयाँ होने लगी हैं। इतनी बात अब और आगे बढ़ी है कि पहले किसी सिपाही को या अर्दली को चपत मारने जैसा छोटा काम नही करते थे, पर अब यह भी होने लगा है।"

"हाँ, एसेम्बली मे किसी ने कहा तो था कि अलीगढ मे जिस Minister ने सिपाही को चपत मारा, वास्तव मे देखा जाये तो वह चपत महात्मा गाँधी के मुँह पर मारा गया था' मैंने कहा।

"हाँ!"

इसके बाद एक छोटी सी घटना हो गई। एक व्यक्ति जिसके पैरों मे जूता नही था, सिर पर टोपी नही थी, कपडे फटे थे, वहाँ आया। गिड़गिडा कर कहने लगा, "दो दिन से भूखा हूँ, मुझे कुछ काम चाहिए।" मैं बाहर उठकर गया मैंने धीरे से पूछा, क्या काम कर सकते हो? बोला, "बाबू! रोटी बना सकता हूँ।" महादेवी जी ने उसे ऊपर बुला लिया। उसकी याचनापूर्ण दृष्टि को महादेवी जी सहन नही कर सकी। चुपचाप अन्दर गई। कुछ मुट्ठी मे लायीं और उसके फैलाये हाथ पर खोल दी। कदाचित् चाँदी का एक रुपया उन्होने इसे दे दिया था। अपने सोफे पर बैठते हुए एक ठंडी लम्बी साँस भर कर बोली, "इतने म पता नहीं इसका पेट भर जायगा या नही?"

'हाँ, इस समय तो भर ही जायेगा," मैंने कहा।

रुपया लकर वह धीरे-धीरे चला गया। क्या वह जानता था कि यह रुपया उसे कितने बडे हाथो से मिला है?

पर इस घटना से ऐसा लगता है कि इस दुनिया मे सभी के आँखो के आँसू नही पोछे जा सकते। यदि कोई अपने जीवन को दूसरे के आँसू पोछने मे ही लगा दे तो इस प्रकार एक क्या सहस्त्रों जीवन आँसुओ मे डूब जायेंगे, पर ससार के आँसू नही पुछ सकत।

फिर हम चले आये।

× × ×

आजकल डा० रमेश "अजान की आवाज" एक छोटा उपन्यास लिख रहे हैं। उन्होंने मुझे उसका कथानक सुनाया था। कथानक मे बहुत जान है। पूरे उपन्यास मे उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि नारी के जीवन में शरीर का सम्बन्ध ही सब कुछ नहीं, उसके मन, प्राण और जीवन का सम्बन्ध शरीर के सम्बन्ध से बहुत ऊँचा है। यदि कोई नारी पूर्ण मन और प्राणों से किसी व्यक्ति को अपने को देना चाहती है तो वह इसीलिए त्याज्य नहीं कि वह पहले किसी को शरीर दे चुकी है। मैंने उनसे कहा कि भाई, इसका समर्पण इस प्रकार कर दो To the abducted women उन्हें यह काफी पसन्द आया है। इसके पूरे हो जाने पर इसके प्रकाशन के लिए कुछ प्रबन्ध करना होगा।

× × ×

मिस कॅप से अब कभी-कभी काफी बातचीत हो जाती है। हिन्दी मे उनके पढने की गति पहले से बढ गई है। उच्चारण भी पहले से ठीक हो गया है। हाँ, मैंने उनको यह सुझाया था कि आप यहाँ प्रयाग मे हैं तो यहाँ के बडे-बडे कलाकारो से मिल लीजिये और उनका एक-एक इन्टरव्यू अपनी Slovin भाषा मे लिखकर अपने देश के पत्रो मे भेजिये और इसमे मैं आपको आवश्यक सहायता करूँगा। उन्हे यह सुझाव पसन्द आया। यदि हो सका तो उनकी Series का आरम्भ श्रीमती महादेवी जी से ही होगा।

एक दिन मैं उन्हे महादेवी जी की रहस्यवादी प्रणयानुभूति के विषय मे कुछ बतला रहा था तो वे बोलीं, "अंग्रेजी मे सबसे बडा रहस्यवादी कवि William Blake है।" उन्होंने उसके Works का संग्रह मुझे पढने को दिया है। कहीं-कहीं Blake अपनी ही कविता के साथ Illustrations भी है। मैंने Blake की कवितायें पढीं। पढ कर मुझे तो ऐसा लगा कि उनका रहस्यवाद का Conception वह नहीं जो हमारे यहाँ है। उनके यहाँ प्रकृति की ओर थोडा सा भी Devotional attitude रहस्यवाद के अन्तर्गत आ जाता है कदाचित्।

एक दिन मुझसे वे पूछने लगीं, "तुम क्या करोगे रशन पढ कर।" मैंने कहा, 'मेरी हार्दिक इच्छा रूस जाने की है। क्या आप मेरी इस ओर कुछ सहायता कर सकती हैं?" बोलीं "आप हमारे देश चलिये। वहाँ मैं इतना कर सकती हूँ कि जब तक आप वहाँ रहेंगे आप Yugoslav Govt के अतिथि बन कर रह सकेंगे।" अब वे भी मुझे Russian भाषा जल्दी जल्दी पढाना चाहती है। उन्होंने मुझे घर पर आगे पढने के लिए एक पुस्तक दी है। उसे मैं पढ रहा हूँ।

आज सन्ध्या को महादेवी जी से फिर भेंट हुई थी। आज वे प्रसन्न थीं। ऐसा लगता था जैसे अब वे पूर्णतया स्वस्थ हो गई हों। एक दो दिन मे वे देहली जाने

वानी है। प्रान्तीय गवर्नमेंट ने मसद् को कुछ देने का वचन तो दे दिया है, पर क्या और कैसे दिया जायगा और कब, यह कुछ नही कहा जा सकता।

'पत' जी ने समद् और लोकायन के मिलाने की बात फिर उठायी है, पर महादेवी जी कह रही थी कि भाई, हमारी और उनकी योजना मेल नही खाती। वहाँ लोकायन मे तो एक रगमच रहेगा, एक सगीत सिखाने वाला रहेगा, एक नृत्य सिखाने वाला रहेगा अभिनय हुआ करेगा, दिन-रात लडके लडकियो का रिहर्सल चला करेगा, हम तो ऐसी जगह थोडी-सी देर भी नही ठहर सकते। हमारे यहाँ जिस दिन ऐसा होने लगा कि उसी दिन हम तो अपना विस्तर उठाकर चल देंगे। इस दृष्टि से तो हम पुरातनवादी है। यहाँ प्रयाग मे इतने सगीत सम्मेलन होते हैं, हम वहाँ कभी नही जाते। यदि किसी को हमे महान् दड देना हो तो वह हमे ऐसी जगह बिठा दे। कही किसी पूजा के से वातावरण मे शान्त सगीत हो रहा हो, तो कुछ अच्छा भी लगता है। 'पत' जी तो उदयशकर के कला-केन्द्र मे रह चुके हैं। उनमे तो यह सब निभ जाता है, पर हमसे नही हो सकता। मैथिलीशरण जी गुप्त है। वे तो कह रहे थे कि ससद् वाले मन्दिर पर एक टीन डलवा दीजियेगा। मैं तो जब आया करूँगा तब यहीं रहा करूँगा। अभिनय और रगमच की बात सुनकर वह भी चुप रह गये। हमारे तो साथी भी हमारी ही तरह पुरातनवादी हैं।

इसी बीच रघुवश जी तथा बेलजियम के हिन्दी रिसर्च स्कालर श्रीयुत कैमिल बुल्के आ गये और थोडी ही देर बाद प० इलाचन्द्र जी जोशी भी। थोडी ही देर पहले महादेवी जी मुझे एक पत्र लेकर श्री बुल्के के पास भेज रही थी, पर आज वे दो महीने बाद स्वय ही खिंच आये। आज दोपहर मे वे उनके पास पत्र भेजने की सोच रही थी। व्यक्ति के सच्चे सकल्प मे अवश्य ही बल होता है। आप तो सकल्प की शक्ति मे विश्वास भी रखते है। महादेवी जी कोई Positive विश्वास तो नही रखती, पर उनकी बहुत सी बातों से ऐसा पता अवश्य लगता है कि उनके सकल्पो मे बल है।

श्री बुल्के पश्चिमी यूरोप की लगभग सभी भाषायें जानते है। Latin और Greek का उन्हें विशेष ज्ञान है। भारतवर्ष मे वे बहुत वर्षों से है। Missionary के रूप मे काम करते हैं। हिन्दी मे उन्होने इलाहाबाद युनिवर्सिटी से एम० ए० किया है। जर्मनी मे दो वर्ष दर्शन शास्त्र का अध्ययन किया है। फ्रेंच Prose और जर्मन *Poetry* की वे बहुत प्रशसा कर रहे थे। वे कह रहे थे कि Germans मित्र बहुत अच्छे होते हैं। इस पर मैंने उनसे पूछा कि यह बात तो Contradictory है कि जब वे मित्र बहुत अच्छे होते हैं तो वे इतने निष्ठुर क्यों होते हैं। इस पर वे बोले, "सचमुच वे मित्र बहुत अच्छे होते हैं, पर वे अपने राष्ट्र की तुच्छता सहन नही कर पाते। जहाँ उनकी राष्ट्रीय भावना को चोट पहुँचती है, वहीं वे निष्ठुर हो जाते हैं।

उनका देश सबसे अच्छा है, उनका देश महान् है, यही उन्हें अच्छा लगता है। एक बार एक जर्मन से मेरी बातचीत हुई। उसने पूछा, 'आप कहाँ के रहने वाले हैं ?' मैंने कहा, 'मेरा तो एक छोटा सा देश है—बेलजियम ।' तो वह गर्वपूर्ण स्वर में बोला, 'हाँ, हम समझते हैं।' "

इस प्रकार आठ साढ़े आठ बजे तक हम बैठे रहे। चाय पी और महादेवी जी के विशेष आग्रह से श्री बुल्के को एक परांवठा भी खाना पड़ा।

श्री बुल्के कह रहे थे कि यहाँ के व्यक्ति जब एक जगह मिल जाते हैं तो और जगह की तो बात छोड़िये Library में भी जोर-जोर से बातें करते हैं। मैं एक कान से तो कम सुनता ही हूँ, तब तो ऐसा लगता है अच्छा होता दूसरे कान से भी कुछ कम सुनता होता। इसके लिये वे कलकत्ते की Royal Asiatic Society की प्रशंसा कर रहे थे कि वहाँ के शांत वातावरण में बैठना बहुत अच्छा लगता है। महादेवी जी भी कह रही थीं कि 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' में जाकर तो हमें भी प्रसन्नता हुई।

हम लगभग दो घंटे बैठे रहे। मैं श्री बुल्के को नाम से तो जानता ही था, पर वैसे कभी परिचय नहीं हुआ था। उन दो घंटों में भी परिचय की बात बिल्कुल नहीं उठी। वास्तव में देखा जाये तो परिचय की बात बड़ी ही महत्वपूर्ण है। विदेशों में यह प्रतिदिन की सभ्यता का अंग समझा जाता है, पर भारतवर्ष में ऐसा बिल्कुल नहीं। मैंने श्री बुल्के के साथ एक टेबिल पर बैठकर चाय पी तथा खाया पर हमारा एक दूसरे से परिचय नहीं हुआ। महादेवी जी के यहाँ से लौटने पर जब एक चौराहा आया और हम बिदा लेने लगे तो श्री बुल्के ने चुपके से मुझसे कान में पूछा, "आप का क्या परिचय है ?" मैंने अपना परिचय दिया। अपना पता 2 एडमौंस्टन रोड बताते हुये श्री बुल्के ने हम लोगों से विदा ली।

....

आपने अपने स्वास्थ्य के विषय में कुछ नहीं लिखा, पर पत्र से ऐसा लगता है कि अभी आप अस्वस्थ्य ही चल रहे हैं। परसों मैं लखनऊ आ ही रहा था, पर कदाचित् अब आना नहीं होगा। परीक्षाओं के बाद ही आऊँगा। कल बँधा-बधाया बिस्तर खुल गया। परीक्षा का भय मेरे मन में बैठ गया है।

मैं तो स्वयं इस बात में विश्वास करता हूँ कि आदान-प्रदान की सफलता-असफलता दूसरे पक्ष की स्वीकृति तथा अस्वीकृति पर ही निर्भर है। पर महादेवी जी अपनी ओर के आदान में दूसरे पक्ष की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं समझतीं। जब ऐसी बात है तो फिर महादेवी जी के आदान-प्रदान किसी भी व्यक्ति के साथ बिना उसके जाने हुए भी चल सकते हैं।

विदेशों की अपेक्षा भारतीय समाज बहुत Rigid, है। यह समाज व्यक्ति को इतना बाँध देना चाहता है कि उसके व्यक्तिगत पलों पर भी उसका अक्षुण्ण अधिकार

हो। यही कारण है कि अपना समाज दो व्यक्तियो के सूक्ष्म सम्बन्धो पर भी अपनी मुद्रा लगा देने के पक्ष मे है।

आपने चर्या कम कर दी है। किस लिये ?

सश्रद्धा
शिवचन्द्र

57

30 ए, वेली रोड
इलाहाबाद
13/3/48
रात्रि

आदरणीय 'मानव' जी,

इस समय मन बहुत भरा-भरा है, बहुत डूबा-डूबा सुख मे, उल्लास मे, गर्व मे। जीवन की समरसता म सुख की लहरें सी उठ खड़ी हुई हैं और उन्ही पर पैरता हुआ मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। सोचता हूँ क्या लिखूं और कैसे लिखूं। वैसे तो महादेवी जी से मैं भी बीसियो बार मिला हूँ, दूसरो का मिलना भी देखा है, पर आज की भेंट का पूरा वातावरण मुझमे व्यक्त नही हो सकेगा। एसा मुझे विश्वास भी है और भय भी।

जिस दिन मिस पी० एम० केप से मेरी बातचीत भी नही हुई थी, उस दिन मैंने आपको लिखा था कि एक दिन मैं उन्हे श्रीमती महादेवी वर्मा से मिलाना चाहता हूँ। पर यह सुख का दिन इतनी जल्दी आ जाएगा इसकी मैंने स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी। यह मैं जानता हूँ कि इस दिन को लाने मे आपकी बडी भारी अव्यक्त प्रेरणा रही है। मेरे आपके सम्बन्ध ऐसे हैं कि यदि मैं शब्दो मे अपना आभार व्यक्त करूं तो अच्छा न लगेगा। मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ उसके लिए शब्द नही मिलत। मैं समझता हूँ, मौनता ही उसके लिए उपयुक्त अभिव्यक्ति है। मैं अभी महादेवी जी के यहाँ से सुश्री केंप को उनके निवास स्थान पर पहुँचा कर लौटा हूँ।

सध्या के बीत जाने पर जिस समय हलका-हलका अँधेरा हो चला था, उस समय हम उनके ड्राइग रूम मे पहुँच गए थे। आज वहाँ आत्माराम भी थे।

कमरे मे जैसे ही हमने प्रवेश किया, महादेवी जी ने सोफे से उठ कर सुश्री केम्प का स्वागत आगे बढकर किया। हम सामने वाले बडे सोफे पर बैठ गए। बैठते ही मैंने सुश्री केम्प से अग्रेजी मे कहा।

"श्रीमती वर्मा ने भारतवर्ष की धरती पर अग्रेजी न बोलने की प्रतिज्ञा ले ली है, पर यदि कभी वे किसी दूसरे देश गई तो उसी देश की भाषा मे बोलना चाहेगी आशा है आपको इसमे कोई आपत्ति न होगी।" '

इसके बाद सुश्री केम्प अपनी टूटी-फूटी हिन्दी मे जो समय के अनुसार तो बहुत अच्छी थी बोलने लगीं। उन्हें यह जानकर प्रसन्नता ही हुई।

महादेवी जी की बातो को मैं उनसे अंग्रेजी मे Interpret कर रहा था। मैं महादेवी जी का Interpreter था यह कहते हुए तो मुझे भय लगता है, क्योंकि महादेवी जी को Interpret करना बहुत कठिन है। इसके बाद मैंने आत्माराम जी का Introduction कराया। परिचय के बाद महादेवी जी ने सुश्री केम्प से पूछा,

"आपको यहाँ इलाहाबाद मे कैसा लगा ?"

"अच्छा लगा," हिन्दी मे ही जवाब देते हुए सुश्री केम्प ने कहा।

"आप तो हिन्दी बोल लेती हैं। आप जल्दी ही हिन्दी सीख लीजियेगा।"

"ऊँ हूँ"

"मैं भी रूसन भाषा सीखना चाहती हूँ।" मेरी ओर को संकेत करके बोली, "मुझे तो यह सिखायेगा, पर पहले यह तुमसे सीख तो ले।"

"अच्छा।"

"दो ही ऐसे देश हैं जहाँ मैं जाना चाहती हूँ—रूस और चाइना।"

"रूस मैं समझी, पर चाइना क्या ?" हिन्दी मे सुश्री केम्प ने कहा। मैं स्वयं को उनका हिन्दी का गुरु कहते हुए भी लजाता हूँ। पर वे ठीक से हिन्दी समझ रही थी और बोल भी रही थी, यह अप्रत्याशित ही था। बोल वे रही थीं और प्रसन्नता मुझे हो रही थी।

"चाइना की बडी पुरानी संस्कृति है।"

"पर चीन तो एक बहुत बड़ा देश है। आप उसके किस भाग में जायेंगी, और वहाँ तो Dialects भी बहुत हैं ?" मिस केम्प ने अँग्रेजी मे कहा।

"जहाँ तक हो सकेगा सभी जगह। भारतवर्ष भी तो बहुत बडा देश है और यहाँ भी तो बहुत सी Dialects हैं," महादेवी जी बोली। यह बात यहीं समाप्त हो गई। धर्म पर बात चल पडी। किसी ने उनसे पूछा, "आपका क्या धर्म है ?"

"कोई नही।"

"तो आप इसमें विश्वास करती हैं कि धर्म अफ्यून है ?" आत्माराम जी ने पूछा।

"बिल्कुल ऐसे नहीं पर कुछ ऐसे ही। धर्म अफ्यून है पर यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक के साथ यह हो ही।"

"तो आप दर्शन से क्या समझती हैं ?"

"Common man को ठीक से समझना ही दर्शन है।"

"हाँ, Common man को Feelings के Sum total में ही तो दर्शन का निर्माण होता है," महादेवी जी ने कहा।

"क्या आप समझती हैं कि परिवार Abolish हो जाना चाहिए ?" आत्माराम जी ने पूछा।

"हाँ, यदि परिवार समाज को दबाता है (Suppresses) तो इसे समाप्त कर देना चाहिए।"

"प्रत्येक घर का अलग-अलग किचिन हो, और सब सामान जुटायें यह सब ठीक नहीं। इसमें बड़ा भारी समय का Waste होता है।"

"किचिन सिस्टम नहीं होना चाहिए," आत्माराम जी ने कहा। इस पर वे बोलीं, "हाँ बात तो ठीक है, पर यदि ऐसा प्रबन्ध हो सके। सिद्धान्त बना देना आसान है, पर उनके प्रयोग बहुत कठिन हैं।"

"मैडम आपकी Hobby क्या है ?"

"कोई नहीं ?" उन्होंने सखेद में उत्तर दिया।

"अरे भाई, इतनी दूर से यहाँ आई हैं यह क्या कम Hobby है," महादेवी जी ने कहा।

"नहीं मैं किसी Hobby में विश्वास नहीं रखती। जब कोई प्रतिदिन की बात हो जाती है तो वह भी भार ही लगने लगती है," सुश्री बेरम ने कहा।

"इनको पढ़ने की Hobby है। ये Eastern Europe की सभी Slovin भाषायें जानती हैं। इसके साथ अंग्रेजी और फ्रेंच बोल सकती हैं। ग्रीक और लेटिन का अच्छा ज्ञान है और जर्मन भी जानती हैं," मैंने कहा।

"जानती तो सभी हैं। पूछना तो यह है कि क्या नहीं जानती ?" महादेवी जी ने कहा। मैंने महादेवी जी के हास्य को उन्हें समझाया, समझ कर हँसते हुए बोलीं, "सचमुच, मैं कुछ भी नहीं जानती।"

"पर रशन भाषा तो संस्कृत से कुछ मिलती है ? मिलती है या नहीं ?" महादेवी जी ने पूछा।

"हाँ बहुत जगह मिलती है। संस्कृत की तरह लगभग सभी क्रियायें अन्त में त् में समाप्त होती हैं जैसे भवति, भवत, भवन्ति। उत्तम पुरुष में जैसे संस्कृत में क्रियाओं में म् हो जाता है, जैसे भवामि भवाव भवाम: ऐसे ही रशन में उत्तम पुरुष के साथ क्रियाओं में म् अन्त में आ जाता है। बहुत से शब्द भी मिलते-जुलते हैं जैसे द्वार के लिए डोर दिन के लिए दोन, दान के लिए Dan इत्यादि। मैंने कहा।

"तब तो हमें जल्दी ही आ जानी चाहिए," महादेवी जी ने कहा।

"आप तो सस्कृत जानती है। सस्कृत से तो कठिन यह नही। इसकी लिपि तो अंग्रेजी जैसी ही है। भाषा कुछ अग्रेजी से कठिन है" मैंने कहा और फिर सुश्री कैंप की ओर मुडते हुए बोला, "महादेवी वर्मा ने अपनी एम० ए० डिग्री सस्कृत मे ली हैं और प्राकृत पर भी आपका अच्छा अधिकार है। वैसे गुजराती और बंगला भी जानती है और हिन्दी की तो आप कवयित्री हैं ही।"

"हूँ, अच्छा।"

"महिला विद्यापीठ की प्रिंसिपल हैं।"

"यह क्या है ?' मिस कैंप ने पूछा।

"यह महिलाओ के लिए यूनिवर्सिटी की तरह ही शिक्षा सस्था है। जब हमने अपना एम ए सस्कृत मे पास किया था ता हमने सस्कृत भी अग्रेजी के माध्यम से पढी थी। जब हम एम. ए पढ कर बाहर आये, तो मन मे ऐसा था कि एक ऐसी सस्था हो जो हिन्दी के माध्यम से शिक्षा दे। उस समय तो अग्रेजी के विरोध मे हिन्दी की बात कहना बहुत बुरा समझा जाता था। तभी से इस सस्था मे हिन्दी माध्यम द्वारा शिक्षा दी जा रही है," महादेवी जी ने कहा।

"इसमे कहाँ तक शिक्षा दी जाती है।"

"एम ए तक।"

"क्या-क्या विषय हैं ?"

"साहित्य, इतिहास, दर्शन, तथा सगीत, चित्रकला इत्यादि।"

' आपका Text Books मिल गई ?"

"हाँ कुछ तो मिल गई, कुछ हमने लिखी तथा दूसरो से लिखवायी।"

"आप यहाँ कितने वर्षो से हैं ?" मिस कैंप ने पूछा। महादेवी जी के बजाय मैंने उत्तर देते हुए कहा, "चौदह वर्ष से।"

"और यह शिक्षा सस्था कब से है ?"

बाइस वर्ष, "महादेवी जी ने उत्तर दिया।

"यह तो बहुत अच्छा है। इसके विषय मे मुझे बिल्कुल पता नही था। इस विषय मे मैं और भी जानना पसन्द करूँगी।"

' क्यो नही,"

"इसमे कितने विद्यार्थी हैं ?'

"चार सौ। पर सभी परीक्षायें अखिल भारतीय है और प्रतिवर्ष 1500 के लगभग लडकियाँ इसमे बैठती हैं।"

"इसमे लडके नही पढते ?"

"नही। उत्तरी भारत मे स्त्रियो की यह सबसे पहली यूनिवर्सिटी होगी, इसका यूनिवर्सिटी-एक्ट बन रहा है," मैंने कहा।

"वास्तव मे यह है तो अब भी यूनिवर्सिटी ही, पर नाम से अभी यूनिवर्सिटी नहीं है," आत्माराम जी ने कहा।

इसके बाद महादेवी जी ने उनसे चाय के लिए पूछा।

"चाय तो पियोगी न ?"

'ऊँ, हूँ' हिन्दी मे ही सकोच के साथ उत्तर देते हुए उन्होने कहा। महादेवी जी चाय के लिए अन्दर जाने लगी। मैं उठ कर उनके पास गया और बतलाया कि सुश्री केम्प बिना चीनी और बिना दूध की चाय पीती हैं।

इस बीच जितनी देर मे महादेवी जी अन्दर से लौटी मैंने सुश्री केम्प को उनके कमरे के चित्र दिखलाये।

1. यह बङ्गाल के अकाल चित्र है। इसमे दिखाया है कि अन्नपूर्णा और शस्य श्यामला भूमि के निवासी भोजन की कमी के कारण अस्थि-पजरो म परिणत हो गये हैं।

2. यह दीप शिखा है। इसमें उन्होने अपने को दीप शिखा की तरह Devotional mood मे व्यक्त किया है।

3. यह उषा का चित्र है। रात विदा ले रही है, उषा जा रही है। आप इसके Colouring को कैसा पसन्द करती हैं ?

"It is very fine and delicate." उन्होने कहा।

4 यह कादबिनी है। इन्द्रधनुषी इसके परिधान हैं और विद्युत इसने अपने प्राणो मे छिपा रखी है।

5 यह हिमालय है—शात और महान् हिमालय।

इसके बाद महादेवी जी आ गई। कुछ मिनटो बाद आत्माराम जी आए। उनके हाथ मे दीपशिखा के सभी Original चित्र थे। उन्होने उन्हे सामने वाली मेज पर रख दिया। इन सब चित्रों को वे इससे पहले दीपशिखा मे देख चुकी थी। पर इस समय उन्होने फिर सबको एक-एक कर देखा। उन छपे हुये चित्रो से ये Original इतने अधिक सुन्दर हैं कि 'दीपशिखा' मे देख लेने के उपरान्त भी उन्हे देखना नया सा ही लगता है। मैंने उन्हे प्रत्येक चित्र का थोडा-थोडा भाव बतलाया।

"घिर गई घटा अधीर" चित्र पर वे पूछने लगी, "यह क्या है ? यह घटा कैसे है !"

"ये सभी चित्र Symbolic हैं। हमारे यहाँ घटा स्त्रीलिङ्ग है। इसमे इसीलिए घटा को श्याम परिधानो से युक्त नारी चित्रित किया है।"

"पर इस पर लिखी कविता से इसका क्या सम्बन्ध है ?"

"प्रत्येक कविता की किसी एक विशेष पंक्ति को लिया गया है और उसे चित्र मे Illustrate किया गया है," महादेवी जी ने कहा।

फिर उन्होंने सभी चित्र देखे। उन्हें सबसे अच्छा चित्र 'सब बुझे दीपक जला लूं' लगा। और जो चित्र उन्हें अच्छे लगे वे ये हैं :

1 तुम्हारी बीन ही मे बज रहे हैं बेसुरे सब तार।

2 रे, तू धूल भरा ही आया।

3. धूप सा तन दीप सी मैं। इस चित्र मे नारी की मुद्रा उन्हें बहुत पसन्द आई। मैंने कहा, "यह भारतीय नृत्य की एक मुद्रा है।"

'अच्छा!" उत्सुकतापूर्वक उन्होंने कहा, जैसे भारतीय नृत्य के विषय मे *जानने की इच्छा उनके मन मे जगी हो।*

चौथा चित्र उन्हे वह पसन्द आया जिसमे एक स्त्री वीणा पर अँगुली रखे उसके तार मिला रही है।

पाँचवा चित्र जो बहुत अच्छा लगा वह था जिसमे नेत्रों मे केवल आंसू उमडे हुये हैं, बह नहीं। उन्हे देखकर कहने लगी, "Such a calm face and tears"

6 *जिस चित्र मे हाथ मृणाल तंतुओ तथा काँटो से बँधे हुये हैं, यह बहुत पसन्द* आया। यह चित्र आपको भी बहुत पसन्द है न?

फिर इतने मे चाय आ गई। हम लोग चाय पीने लगे। मैंने मिठाई और नमकीन की ओर सकेत करते हुये कहा,

"आप इन चीजो के नाम जानती है न?"

"नही।"

"इसे दालमोठ कहते हैं। आप दाल तो जानती है न?"

"हाँ,"

"बस उसी के आगे मोठ और लगा दीजियेगा—दाल मोठ।"

"और यह पेठा है। हमारे यहाँ एक वेजिटेबिल पैदा होता है, उसी से यह मिठाई बनाई जाती है। इसमे बहुत रस है, आपको यह बहुत पसन्द आयेगी।"

"*नागर तुम को सब कुछ बहुत जल्दी सिखा देगा*" महादेवी जी ने हँसकर कहा।

"यह तो जानती हूँ कि ये मुझसे अच्छा पढाते हैं," मिस केम्प ने कहा।

चाय पीने के उपरान्त, मैंने कमरे मे रखी हुई मूर्तियो को बताते हुए कहा, "ये भगवान कृष्ण हैं। ये महात्मा बुद्ध हैं। ये महात्मा गाँधी हैं।" कोने की ओर मुडते हुए मैंने कहा, "ये रवीन्द्रनाथ टैगोर हैं, ये प जवाहरलाल नेहरू। ये हिन्दी के महाकवि प्रसाद हैं। ये देवी सरस्वती हैं।" ऊपर दीवार मे लकडी के stand पर

रखी हुई प्रतिमा की ओर सकेत करते हुए मैंने कहा, "वे ईसा मसीह हैं।" यह देखकर उन्होंने तुरन्त महादेवी जी से प्रश्न किया।

"तो आप Theosophist हैं ?"

"नहीं"

"तो फिर ? इन सबसे तो यही पता लगता है।"

"नहीं, केवल इतना ही कि कोई एक ऐसा विशेष धर्म नहीं जो मुझे अच्छा लगता हो," महादेवी जी ने कहा।

"ठीक ऐसा ही मैं भी समझती हूँ।"

"आदमी को केवल अच्छा होना चाहिए, मैं तो इसी को धर्म समझती हूँ। यदि एक अच्छा आदमी हमेशा अच्छा रहता है तो मैं उसे धार्मिक समझती हूँ" महादेवी ने कहा।

"बिल्कुल ठीक।" जैसे महादेवी जी ने मिस केम्प के मन की बात कह दी हो।

इतने मे भक्तिन चाय देने आई। मैंने उसकी ओर सकेत करते हुए बताया, "यह महादेवी जी की सबसे पुरानी परिचारिका है। श्रीमती वर्मा ने अपने 'अतीत के चलचित्रो' मे इसका Pen sketch दिया है। एक बार एक हिन्दी के बड़े प्रसिद्ध कवि श्रीमती वर्मा से मिलने आए थे। उन्होने इससे कहा कि श्रीमती वर्मा ने तो भक्तिन, तुझे अमर कर दिया। इस पर इसने सहज भाव से उत्तर दिया, तभी तो मैं नही मारती।"

"बहुत सुन्दर जवाब। बहुत सुन्दर जवाब।" हँसते हुए सुश्री केम्प ने कहा।

"जवाब तो वह हमेशा ही सुन्दर देती है।" इस बीच भक्तिन कुछ कह रही थी। मैंने महादेवी जी स पूछा, भक्तिन क्या कह रही हैं तो उन्होने बताया कि वह कह रही है, "इनकी चाय मे तो कुछ भी खर्च नही होता, न चीनी न दूध।"

"हां, हां," कहकर मिस केम्प को बहुत हँसी आई।

"स्मृति की रेखाओ मे इसका मिसेज वर्मा द्वारा खीचा हुआ रेखा-चित्र भी है। इन दोनो पुस्तको मे महादेवी जी के सस्मरण है।"

"क्या बचपन के ?"

"पूरे जीवन के हैं। उम्र की कोई ऐसी सीमा नही। मैं आपको वह पुस्तक दिखाऊँगा," मैंने कहा।

"आपको कविता अच्छी लगती है।"

"हां, बहुत अच्छी लगती है।"

"केवल अच्छी ही नही लगती, बल्कि आप तो लिखती भी है," मैंने कहा।

"अच्छा, तब तो बहुत अच्छी बात है।'

"पर मैं पाँच साल मे एक कविता लिखती हूँ।"

"पर आप तभी तो लिखती हैं जब आपका मन इतना उमड आता है कि आपक ऐसा लगने लगता है कि अब बिना लिखे नही रहा जा सकता।"

"हूँ।" सुश्री केम्प ने कहा।

"तब तो लिखा ही जाता है और तब अच्छा भी लिख जाता है और जल्दी लिख भी लिया जाता है," महादेवी जी ने कहा और फिर अपने चित्रो के लि बताया कि इन चित्रो में कोई भी ऐसा चित्र नही जिसमें बीस मिनट स अधिक ल हो। इसके बाद उठकर अन्दर गईं।

मुझसे इस बीच सुश्री केम्प कहने लगी, 'हमको बहुत देर तो नही हो गई। तो यहीं भूल गई कितना समय बीत गया और श्रीमती वर्मा के बैठने की कितन सीमा, मैं यह भी नही जानती।'

"नही, आप चिन्ता न कीजिये। वे बहुत बैठने वाली हैं और उन्हे तो आप साथ अच्छा ही लग रहा है।'

'यह तो मेरा सौभाग्य है" उन्होने कहा। इतने मे महादेवी जी आ गईं। ह तीन चार मिनट ही और बैठे कि मिस केम्प विदा लेने के लिये उठीं। महादेवी ने उनकी ओर बढ कर उन्हे अपनी 'यामा' और 'अतीत के चलचित्र' भेंट किये। सुश केम्प गद्गद् हो गईं। अपलक और प्रसन्न मुग्ध नेत्रो मे केवल उनकी ओर देखती गईं। उनके मुँह से एक भी शब्द नही निकला, जैसे, अनुभूति निश्चल हो गई हो

मैंने उन्हें छोटी वाली पुस्तक का नाम बतलाया यह 'अतीत के चलचित्र' है और बडी की ओर सकेत करते हुये कहा, "इसका नाम आप स्वय पढिये।" उन्हो पढा "या मा" और फिर जैसे वे आत्म-विमुग्ध अवस्था से आत्म-चेतना क अवस्था मे आई हो, इस प्रकार बोलीं—

"Mrs Verma I will say that it is by accident that the be poem in our literature is Yama, written by Igniyatovitch"

"आपके यहाँ 'यामा' का क्या अर्थ है," मैंने पूछा।

"The dark pit"

"और हमारे यहाँ इसका क्या अर्थ है!" मैंने पूछा। मैंने उन्हें इसका अर्थ क दिन पहले बताया था। वे जैसे भूल गई हों, ऐसे उन्होने माथे पर अगुली रखी। ए क्षण भर को कमरे मे शाति रही और फिर उनके मुँह से एकदम एक शब्द निकल Night सब के मुखो पर प्रसन्नता की स्मिति की रेखायें दौड गईं और मेरा मु उल्लास और गर्व से खिल उठा। हम कमरे के बाहर निकले। महादेवी जी ने मुझ पूछा "कैसे जाओगे?"

"सिविल लाइन्स से तांगा ले लेंगे," मैंने कहा।

"नहीं, मैं यहीं मँगाये देती हूँ न।" मैंने यह बात सुश्री कैंप से कही और उनको अन्दर चलने के लिये कहा। वे अन्दर जाकर बेंत वाली कुर्सी पर बैठ गईं। अब उन्होंने सामने दीवार के Paintings पर दृष्टि डाली और पूछा। आत्माराम जी ने बतलाया, "यह बुद्ध निर्वाण है। यहाँ राजकुमार बुद्ध अपनी पत्नी और अपने नवजात शिशु के अन्तिम दर्शन कर रहे हैं।" "और ऊपर!" महादेवी जी ने बतलाया, "ये सब लोग भगवान बुद्ध के जन्म-दिवस का उत्सव मना रहे हैं।"

मिस कैंप ने अपना चमकदार लाल फ्रेम का चश्मा निकाला। उसे लगा कर पास आकर देखा। बोली, "बहुत अच्छा है। बड़ा परिश्रम करना पड़ा होगा।"

हरी साड़ी में सुनहरे बालों वाला उनका श्वेत मुख बहुत अच्छा लग रहा था और उस पर लाल फ्रेम का चश्मा उनके मुख के गाम्भीर्य तथा सौंदर्य को भी बढ़ा रहा था।

चित्र में केले के पेड़ की ओर संकेत करते हुए आत्माराम जी ने कहा, "आप इस वृक्ष को जानती हैं?"

"हाँ, यह केले का पेड़ है।"

"यह हमारे यहाँ बड़ा auspicious समझा जाता है।"

"अच्छा! हमारे यहाँ नहीं होता।"

"आपको कैसा लगता है?"

"मुझे बहुत अच्छा लगता है। एक बार मैंने इसे वेलग्रेड में खरीदा था। एक रुपये में एक मिला था। और इसे खरीदना Luxury समझा जाता था। मैं केवल तीन ही खरीद सकी।" वे इसी से सम्बन्धित कोई बात सुना रही थीं कि इतने में बिजली का Fuse उड़ गया और कमरे में घोर अन्धकार छा गया। आज तो वैसे भी अन्धेरी रात थी। महादेवी जी उसी अंधकार में अन्दर चली गईं। मैंने उन्हें जाते नहीं देखा, पर थोड़ी देर बाद वे एक हाथ में Candle लिये तथा दूसरे हाथ से उसकी लौ को हवा से बचाते हुए अन्धकार को चीरती हुई धीरे-धीरे अन्दर आईं और उन्होंने अपनी जलती हुई मोमबत्ती भगवान बुद्ध के चरणों में रख दी। इतने में ताँगे वाला ताँगा ले आया था। हम कमरे से बाहर निकले। कमरे से बाहर निकलते ही अत्यन्त भावपूर्ण ढंग से सुश्री कैंप ने कहा If I forget every thing, I would never forget this candle flame मैं सोचता हूँ उस समय इससे सुन्दर Remark कदाचित् ही कोई हो सकता था। बाहर तक महादेवी जी आईं। सुश्री कैंप ताँगे में बैठ गईं। महादेवी जी ने पूछा,

"अच्छा अब कब आओगी?"

"जब आप आने को कहेंगी।"

your patience with an old lady like me Don't you feel boring with me—an old lady ?"

"नहीं, नहीं, आप कैसी बात कर रहीं है ! मैं तो इसे अपना सौभाग्य समझता हूँ कि मैं आप के सम्पर्क मे आया। आप को लगता है कि मुझे कष्ट हुआ है, पर मैं तो आपको अपने यहाँ के कलाकारों और उनकी कला से परिचय कराना अपना नैतिक कर्तव्य और गौरवपूर्ण अधिकार समझता हूँ।"

"But Mr Nagar, will you tell me what you intend to do after your study "

"अध्ययन के उपरान्त मैं विदेशो मे भ्रमण करना चाहता हूँ। रूस के विषय मे पढ़कर मुझे ऐसा लगा है कि यह सबसे रहस्यपूर्ण देश है। इसलिये सर्व प्रथम मैं वहीं का भ्रमण करना चाहता हूँ और फिर मैं वहाँ के निवासियो, उनकी कला और उनकी संस्कृति के विषय मे कुछ लिखना चाहता हूँ।"

"But in what language will you write—in Gujrati, in Hindi or in English ?'

"मैं हिन्दी मे लिखूँगा।

"Mr Nagar what is your age ?"

"इक्कीस वर्ष।"

"Considering your age you have written a lot, from which year are you writing ?"

'मैंने सोलह वर्ष की उम्र से लिखना आरम्भ किया था।"

"You have flowered earlier "

सुश्री कॅप ने मुस्कराते हुए कहा और फिर श्रीमती वर्मा की उम्र पूछी।

"वे इस होली पर (24 मार्च 1948 का) 41 वर्ष की हो जायेंगी। पर क्या मैं आपकी उम्र जान सकता हूँ ?"

'I am about 39"

"आप की जन्मतिथि क्या है ?'

"2nd August, 1909"

अब घर आ गया था। हम ताँगे से उतरे। सुश्री कम्प अपने बैग मे से रुपया निकाल कर देन लगी। मैंने कहा, "मुझे देने दीजिए।"

"No you are my student"

"इस हिसाब से आप भी तो मेरी विद्यार्थिनी हैं। चलिए किसी को भी नहीं

हँसी मे ही कही थी पर वह सत्य ही हो गई। ताँगे वाले ने किसी से भी नही लिया। वह कहने लगा, "मैं कुछ भी नही लूँगा, उन्होने मना कर दिया है।" ताँगा चल दिया। एक क्षण के लिये मैं उदास सा हो गया। यह वही श्वेत घोड़े वाला ताँगा था, जिसमे महादेवी जी हमेशा ही बैठती हैं। पर आज इसका हाँकने वाला वह सफेद दाढी वाला बूढा न था। मैंने देखा उसके विना उस सफेद घोडे की शोभा आधी रह गई थी।

मैं अन्दर कमरे मे गया। प्रकाश मे "यामा" और "अतीत के चलचित्र" मैंने उनके सामने रख दिये। उन्होने यामा का प्रथम पृष्ठ उलटा। उसके भीतर लिखा था—प्रिय बहिन, सुश्री पी० एम० केम्प को, सस्नेह, महादेवी वर्मा। मैंने उन्हें बतलाया कि इसमे लिखा है

To my dear sister Miss P M Kemp

With love

Mahadevi Verma

"Indeed she is very sweet She has got a very sweet and clear voice I feel I would have spoken Russian as she speaks Hindi"

"वे सदैव ही ऐसी धारा-प्रवाह और स्पष्ट हिन्दी बोलती हैं।"

"ये देसाका मेक्जिमोविच कौन हैं ?" मैंने पूछा।

"She is the greatest living poetess of my country She is my friend I will show Mahadevi Verma's book to her."

"अवश्य दिखलाइये, यामा तो आपके पास है ही, और जब आप युगोस्लेविया जाने लगें तो 'दीपशिखा' मुझसे ले लीजिये।"

'Yes, I will like it"

फिर उन्होने डा० हसन से अपने वहाँ जाने की बात कही। डाक्टर हसन ने पूछा, "मैं तो उन्हे जानता नही, पर वे आप को कैसी लगी ?"

"She is lovely"

"What do you mean by lovely ?" asked Dr Hasan

"She is lovely, not beautiful"

इस पर जरा मुस्कराते हुये डा० हसन ने पूछा,

"But what is the difference between lovely and beautiful."

"She is not fashionable, she is simple Lovely, I mean to say she has got a lovely soft serene and intelligent face"

महादेवी जी के लिये एक विदेशी के मुँह से इतने सुन्दर Tributes सुनकर किस हिन्दी भाषा भाषी को प्रसन्नता नही होगी ? आज मुझे प्रसिद्ध जापानी कवि डा.

नागूची की बात याद आ रही है जिसने महादेवी जी से मिलने के उपरान्त किसी व्यक्ति के पूछने पर कि वे आपको कैसी लगीं, कहा था, "She is like the river Ganges"

इस नागूची के Remark में प्राच्य दार्शनिकता तथा आध्यात्मिकता है सुश्री केम्प के Remark में पाश्चात्य भौतिकता के दर्शन होते हैं। यदि इन दोनों Remarks को एक जगह मिला दिया जाए, तो मैं समझता हूँ थोड़े ही में महादेवी जी के बाह्य और आन्तरिक दोनों व्यक्तित्व आ जायेंगे।

उसी समय सुश्री केम्प ने 'यामा' में 'अपनी बात' की दो पंक्तियाँ पढ़ीं, "यामा में मेरे अन्तर्जगत के चार यामों का छायाचित्र है। ये याम दिन के हैं या रात के यह बताना मेरे लिए यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।" मैंने उन्हें इसका अर्थ समझाया। उसी समय घड़ी ने 9 बजाये। मैंने घर के लिए विदा ली।

घर पर आते ही मैं पत्र लिखने बैठ गया था और इस समय रात के तीन बजने वाले हैं।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

58

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
16/3/48

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका 14/3 का पत्र मिला।

धीरे-धीरे बहुत सी घटनाओं से मेरा भी यह विश्वास कुछ दृढ़ सा होता जा रहा है कि आत्म बल की और संकल्प बल की शक्ति महान् है। 21 ता० रविवार की संध्या को महादेवी जी ने सुश्री केम्प को नौका बिहार के लिये निमन्त्रित कर रखा है। मेरे मन में यह बात उठी थी कि उस संध्या को आप भी हमारे साथ होते तो कितना अच्छा लगता। अब तो आप होंगे ही।'होंगे न ?

सुश्री केम्प आज रात को कलकत्ता जा रही हैं। वे वहाँ से रविवार को ही लौटेंगी। यदि किसी विशेष कारण वश वे न लौट सकी तो तार से सूचना देने को कहा है। पर आप अवश्य आइए।

कलकत्ते से उन्होंने मेरे लिए एक अच्छी-सी रशन डिक्शनरी तथा एक ग्रामर लाने के लिये कहा है। कितनी अच्छी हैं वे।

आज मैंने उनसे उनके यहाँ की महान् कवयित्री सुश्री देसाका मेबिजमोविच का चित्र माँगा। कहने लगीं, "दिखाऊँगी, पर इस समय तो यह समझ लो कि वे खूब-

रंग तो नहीं है, पर बिल्कुल श्रीमती वर्मा जैसी हैं। उनका चेहरा बिल्कुल श्रीमती मां से मिलता है और रंग सुमने।"

"क्या सभी महान् लेखिका श्रीमती वर्मा जैसी ही हैं?" मैंने हँसकर पूछा।

"क्यों।"

"मैंने पर्ल एस बक का चित्र देखा है। उनका चेहरा भी श्रीमती वर्मा से काफी मिलता है।"

"हाँ, चेहरा कुछ मिलता तो है पर Pearl S. Buck इनसे कुछ मोटी अधिक ," सुश्री बेग्स ने कहा।

इसके बाद मैंने उनसे पूछा, 'आपके देश में यदि कोई लड़की अविवाहित रहती है तो क्या समाज उसे आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से देखता है?"

'बिल्कुल नहीं "

'पर हमारे यहाँ तो ऐसी लड़की बड़ी असाधारण समझी जाती है और लोग उसके बारे में बहुतसी अफवाहें भी उड़ा देते हैं।"

"ये अफवाहें तो सभी जगह हैं।" इसके बाद उनसे भारतवर्ष में प्रचलित तथा उनके देश में प्रचलित विवाह प्रणालियों पर बातचीत हुई। इसी बीच में वे हँसकर कहने लगीं,

"क्या तुम मेरे विचार से आदर्श विवाह जानते हो?"

"मैं जानना पसन्द करूँगा।"

"मेरे विचार से किसी भी Ceremony की आवश्यकता नहीं है और न मैं यही समझती हूँ कि दोनों व्यक्ति एक घर में ही रहें। बस केवल इतना ही कि वे स्वच्छन्दता से एक दूसरे से मिल जुल सकें। किसी भी प्रकार का बन्धन तो प्रेम को कुण्ठित ही करने वाला है।"

"मैं भी बिल्कुल ऐसा ही चाहता हूँ।" मैंने कहा।

फिर मैंने अपना गीत "मुझे एक विश्वास मिला है।" का अनुवाद अंग्रेजी में सुनाया। उसका दूसरा (Stanza)

"कोई सुख मिल सका नहीं,
पर स्वप्नों का संसार मिला है,
रूप तुम्हें मिल सका नहीं,
पर मधुर स्वप्न का प्यार मिला है।
मुझे प्राण में एक अपरिचित,
पुलकन का सम्मान मिला है।

सुन कर कहने लगीं "It is a fine expression you are romantic, Nagar"

फिर उनसे कोई मिलने आ गये। यह सुन्दर बातचीत यहीं समाप्त हो गई।

.. ..

मैं लखनऊ अवश्य आता, पर यह समझ लीजिये कि मैं आ ही नहीं सका। आप आइए, मैं रविवार के प्रभात मे प्रयाग-स्टेशन पर आऊँगा।

. ...

कल मैं पूरे दिन भर और रात भर नहीं पढ सका। कल एक विशेष घटना हो गई। घटना तो सुख की है और हो सकता है कि वह इस शव से जीवन मे फिर जीवन ला दे, हो सकता है जो एक अध्याय समाप्त सा ही हो गया था और जिसके आगे अब उसमे और कुछ भी जुड़ने की सम्भावना न थी, उसका अब दूसरा अध्याय आरम्भ हो। वैसे तो इस घटना का सम्बन्ध जीवन से ही है, पर विशेपतया इसका सम्बन्ध अबसे लगभग चार साल पहले की एक घटना से है। अब तो मैं अपनी ओर से पहले किसी भी लड़की को पत्र नहीं लिखता, हाँ उत्तर दे देता हूँ। पर तब मैंने एक रात को एक पत्र कई बार लिखा और फाड़ा। फिर अन्त मे लिख ही डाला। अगले दिन मैंने एकान्त मे वह सुन्दर लिफाफा उनके सुन्दर हाथो मे दे दिया। उनकी भ्रकुटि वक्र हो गई। उन्होने अपने सुन्दर मुख को ऊपर उठाया जो क्रोध मे और भी अधिक सुन्दर लग रहा था और दोनो हाथो मे वही मेरे सामने पत्र को बिना पढ़े हुए ही उसके चार टुकडे कर दिये और बिना कुछ कहे वहाँ से चली गई। पत्र तो मैंने उन्हें इसीलिए लिख कर दिया था कि मेरी उनकी एक साल की जान-पहचान थी, बाते भी होतीं थी और इसी से मुझे ऐसा विश्वास-सा हो गया था कि वे मुझे प्रेम करती हैं। मैं तो अब भी यदि यह बात झूठी भी है, यदि यह केवल अब भी धोखा ही तो भी मैं तो उसे सच ही समझना चाहता हूँ। मुझे तो अब भी ऐसा ही विश्वास है। उसके बाद कभी कभी एक दूसरे को देख लिया करते थे। कल यूनिवर्सिटी से जब मैं कमरे मे घुसा तो उन्ही का एक लिफाफा मुझे कमरे मे पड़ा हुआ मिला। उन्होने इसमे एक आवश्यक काम के लिये लिखा था। मैंने तो उसका उत्तर भेज दिया है, पर मन यह कह रहा था कि चार साल पहले जो उन्होंने मेरा लिफाफा फाड़ दिया था उसके टुकड़े भी उसमे रख कर भेज देता। उसके टुकडे मैं घर ले लाया था और कहीं ठीक से उन्हें रख भी दिया था, इतना मुझे याद है। आपको मेरी मूर्खतापूर्ण भावुकता पर हँसी आयेगी कि एक बार उन्होंने 'देखिये हमारे बाग मे कैसे गुलाब खिलते हैं" कहकर जो गुलाब का फूल दिया था उसे मैंने अपने Pastle Colour के खाली डिब्बे मे उठा कर रख दिया था। एक बार भाई साहब आकर बोले, 'तुम्हारी अलमारी बड़ी गन्दी रहती है इसे साफ नहीं करते ?" मैंने कहा, "हो

जायेगी।" पर वे कहाँ मानने वाले थे। अगले दिन जब मैं कालिज गया तो उन्होंने अलमारी की उधेड़ बुन की। यह खोल, वह खोल। उस फूल की सूखी पत्तियाँ भी झाड़ मार कर बाहर फेंक दी। जब पता लगा तो बहुत दुःख हुआ। यह बचपन का प्रेम समझिये, क्योंकि 17 वर्ष की उम्र भी क्या? आज ऐसा लगता है कि बचपन के प्रेम मे इतनी Intensity नही होती, जितनी भावुकता, आदर्शवादिता और मूर्खता होती है।

आप मेरी इन बातों को बचपन की बातें समझते होंगे, पर आपके अतिरिक्त मेरे पास ऐसा कोई मन नही जिसमे मैं अपने मन की धरोहर रख सकूँ।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र

59

30 ए, बेली राड
इलाहाबाद
24/3/48

आदरणीय 'मानव' जी,

आप 21/3 की प्रभात मे आये थे और रात मे ही चल गये। एक नाटक सा कर चले। सोचता हूँ कभी-कभी बहुत सी घटनाओ का सौंदर्य उनके जल्दी समाप्त हो जाने मे ही है। क्या आपका उस दिन का आना और जाना भी एक ऐसी ही घटना थी? यदि वह दिन आज मे बदल जाता तो और भी अच्छा था। आज आप यहाँ होते!

परसों मिस केम्प कलकत्ते से आ गई थीं। उनसे महादेवी जी के विषय मे बात-चीत हुई। मैंने उन्हें बताया कि उनका नाम महादेवी क्यो रखा गया। मैने बताया कि उनके परिवार मे तीन पीढियो से कोई लड़की नही थी, देवी देवताओ की बडी मानता के बाद इस होली के त्यौहार (देवी की पूजा) के दिन उनका जन्म हुआ। इसलिये उनके दादा ने इनका नाम महादेवी (The great goddess) रखा। मैंने उन्हे बताया कि महादेवी जी का जन्म अंग्रेजी तिथि के अनुसार 24 मार्च को हुआ था और हिन्दी पत्र के अनुसार होली के त्यौहार पर हुआ था। उनके पिताजी अंग्रेजी तिथि पर उनका जन्म-दिन मनाते थे और उनकी माता जी हिन्दी तिथि पर। पर अब की बार बहुत वर्षों बाद दोनो तिथियाँ फिर एक ही दिन आ पड़ी है। यह accidental coincidence है। तो सुश्री केम्प ने उत्तर दिया था,

"Sometimes it is accident which makes the things beautiful It is all by accident that sometimes sky looks beautiful and sometimes not"

फिर उन्होंने महादेवी जी को उनके जन्म-दिवस पर कुछ भेंट में देने की बात छेड़ी। वे कहने लगीं,

"On such occasions in our country we present a bouquet of fresh flowers, but here we must present her something substantial. What should I present, Nagar ?"

"कोई भी चीज जिसमें आपकी भावनायें, आपके विचार, आपके देश की संस्कृति व्यक्त हो सके और साथ ही जो श्रीमती वर्मा को भी प्रिय हो।"

"Exactly so This must be this nature of any present."

आज संध्या को महादेवी जी के यहाँ जाना ही था।

छह बजे मैं सुश्री केम्प को लेने के लिये उनके निवास-स्थान पर गया, क्योंकि छह बजे ही जाना निश्चय हुआ था। सात बजे तक हम काफी पीते रहे। 7॥ बजे हम रवाना हुए और पौने आठ बजे तक हम महादेवी जी के यहाँ पहुँच गये। नौकर से पूछने पर पता लगा कि महादेवी जी डाक्टर के यहाँ गई हैं। आध घन्टे के भीतर उनके आने की भी सम्भावना थी, इसलिये, हम उनके ड्राइंग रूम में बैठ गये। मिस केम्प पूछने लगीं,

"Why has she gone to doctor ?"

"सम्भवत बीमार है।"

"Then I am very sorry" सुश्री केम्प ने कहा।

मैं भी चुप हो गया। यह दुःख की ही बात है कि महादेवी जी बीमार रहती हैं। पिछले वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष वे कम बीमार रही हैं। ईश्वर करे आगे के वर्षों में भी निरन्तर ऐसा ही क्रम रहे। पर लखनऊ के बाद में ही उनका शरीर और मन गिर सा गया है। आज के दिन डाक्टर के यहाँ जाने की बात तो सचमुच विषाद-पूर्ण ही थी।

20 मिनट तक प्रतीक्षा के उपरान्त महादेवी जी आ पहुँची। अपने सोफे पर आकर बैठ गई। आज वे बिल्कुल थकी-थकी सी लग रही थीं। इसलिये आज अधिक देर तक उन्हें बैठाना तो सचमुच अन्याय ही होता।

महादेवी जी ने सुश्री केम्प से पूछा,

"आप कलकत्ते से कब आयी ?"

"कल।" उन्होंने कहा।

"नहीं Day before yesterday यानी परसों आई," मैंने कहा।

"हाँ, परसों" अपने को ठीक करते हुए उन्होंने कहा।

उस दिन रविवार की सन्ध्या को तो आप बहुत याद आईं। वहाँ सब कवि लोग

इकट्ठे हुए थे। सब ने अपनी-अपनी कवितायें recite की। Father Bulkey ने अपनी वल्जियम भाषा मे एक कविता सुनाई। आप होती तो रशन भाषा म सुनाती।"

"I remember one epic poem in Russian I would have recited that" सुश्री कम्प ने कहा।

"अब की बार जब कभी होगा तो आप भी आयेंगी।" महादेवी जी ने कहा।

"हूँ।" हिन्दी मे ही सुश्री कॅप बोली। फिर कुछ क्षणो की शांति के उपरान्त मैंने पूछा, "क्या डाक्टर क यहाँ आप अकेली ही गई थीं ? अभी आपकी तबियत ठीक नही हुई !"

"नही, भाई, मैं दवाई वाले डाक्टर के यहाँ नही गई थी, यहाँ विद्यापीठ के जो डाक्टर हैं, वहाँ गई थी। अब तो वर्ष की समाप्ति होनी है न ? तो सब हिसाब करना रहता है और हिसाब मे मैं हमेशा स कमजोर रही हूँ। हाई स्कूल तक भी आरिथमेटिक मुझे कभी अच्छा नही लगता था। जब teacher कक्षा म black board पर सवाल करती होती थी, तो मैं कविता की एक पक्ति लिख कर दूसरी पक्ति साचती रहती थी। कभी पकड भी ली जाती थी, तो डाट ही खाने को मिलती थी, क्योकि कविता करना तो कुछ अच्छी बात नही समझी जाती। यदि किसी टीचर का पता भी लग जाये कि कक्षा का कोई विद्यार्थी कविता करता है तो उस क्लास मे हँसी का पात्र ही बनना पडता है। कभी-कभी एसा भी हाता है कि टीचर मुझे black board पर सवाल करने के लिये बुला लेती तो मैं वहाँ जाकर कुछ ऊटपटाँग करने लगती थी। Interest (ब्याज) तो हमे कभी आया ही नही, फिर compound interest (सूद दर सूद) की बात ही क्या ? गणित म हम सबसे अच्छे नही रह, पर फिर भी अपनी कक्षाओ मे प्रथम ही आते रहे।" मैं महादवी जी की पूरी बात सुश्री कॅप का interpret करता गया। सुन कर बाली,

"The same was the case with me I never felt interested in Arith. And when I became a teacher I had to teach Arith besides other subjects Then in the class, I was a bit ashamed I believed how can I well teach a subject, which I myself never knew.' सुश्री कॅप ने कहा। फिर पूछा, ' What subjects do you teach here Mrs Verma ?'

"Literature only"

"मेरे साथ कोई ऐसी बात नही, अधिकतर तो साहित्य ही रहता है, पर दर्शन, तथा तर्क शास्त्र (Logic) के क्लास भी ले लेती हूँ।"

"If you will allow me, Mrs Verma I would like to attend your lectures next year"

"पर जब आप क्लास मे होगी तो मेरी समझ मे नही आता कि मैं पढाऊँगी या हँसूगी," महादेवी जी ने कहा।

"I won't disturb you I will quitely sit on the back benches and listen to you Mrs Verma you speak so clearly and distinctly, that next year I will be able to follow you, I believe"

इस पर महादेवी जी बोली,

"हाँ, क्यो नही। आप बहुत जल्दी हिन्दी समझने लगेंगी।" इसके बाद कुछ क्षणो की निस्तब्धता के उपरान्त महादेवी जी ने सुश्री केम्प से पूछा, "चाय तो आप पियेंगी ?"

"नही, नही।" हिन्दी मे ही सुश्री केम्प ने उत्तर दिया।

"क्यो, आज तो होली का त्यौहार है और दूसरे हमारा जन्म-दिन है। आज तो विशेष रूप से हम चाय पिलानी चाहिये।" महादेवी जी ने कहा।

"हम लोग अभी चाय पीकर आ रह हैं। शायद इसीलिए मना कर रही हैं। आज इन्होने मुझे भी बहुत कुछ खिला-पिला दिया।" मैंने कहा।

"क्या खिला-पिला दिया माई ?"

"यही काफी, टोस्ट और पपीता।" मैंने कहा।

"क्या ?" सुश्री केम्प ने मेरी ओर मुड कर पूछा।
यही कि आज सध्या को आपने मुझ बहुत खिला दिया।

"In quantity it was little, Mr Nagar But no doubt I entertained you on international basis Balken coffee, English Toast and Indian Papitas"

इस पर बहुत हँस रही। महादेवी जी चाय का इन्तजाम ठीक ठाक करन के लिये अन्दर चली गई।

इस बीच सुश्री केम्प कहने लगी कि मैं तो श्रीमती वर्मा को Congratulate करना भी भूल गई। आज श्रीमती वर्मा कुछ थकी हुई सी लग रही हैं। वे बीमार भी हैं। डाक्टर के यहाँ गई थी। अब हमे अधिक देर नही बैठना चाहिये। मैंने समझाया कि वे दवाई वाले डाक्टर के यहाँ नही गई थी, तो उन्हें प्रसन्नता ही हुई। मैंने पहले भी और कितनी ही बातों म देखा है और मुझे ऐसा लगा है कि ये पश्चिम के लोग जब किसी से भी मिलने जाते है तो उसकी सुविधा का सबसे अधिक ध्यान रखते हैं। हमारे यहाँ यह बात कम पाई जाती है। आज महादेवी जी थकी हुई सी लग रही थीं।

अन्दर महादेवी जी को कुछ देर लग गई। इसके बाद तुरन्त ही शीघ्र गति से आई और बोलीं,

'माफ करना, मुझे कुछ देर हो गई। यहाँ तो इतना बडा परिवार है कि कोई न कोई आता ही रहता है और मेरे यहाँ कोई ऐसा नियम नही कि किसी समय मुझसे कोई न मिल सके। यहाँ बडी बडी दूर से विद्यार्थी आए हुए हैं। बहुत से ऐस हैं जिनका वर्ष मे एक बार ही लौटना होना है। अब उनको एक मा तो चाहिए न।"

'But whe e do these students live ?"

सुश्री कॅम्प ने पूछा।

"इनके लिए होस्टिल का प्रबन्ध है। सामने हास्टिल की वह बिल्डिग है।" मैंने सामने विद्यापीठ के छात्रावास की ओर सकेत करते हुए कहा।

"यहाँ बहुत दूर दूर से छात्रायें आ जाती हैं—आसाम स, बगाल से, मालाबार से,' महादेवी जी ने कहा।

"और मैंने एक बार आप से 'साहित्यकार ससद' के विषय म कहा था आपको याद है।" सुश्री केम्प म मैंने पूछा।

'हाँ इस सस्था के पास एक अच्छी बिल्डिग है। उसके चारो ओर काफी जमीन है और गगा तट पर यह एक रम्यस्थान पर स्थित है और आपको बडी भारी प्रसन्नता हागी यदि मैं आपसे एक रहस्य का उद्घाटन कर दूँ तो।"

"Vhat secret Mr Nagar ?"

"यही कि श्रीमती वर्मा ही इसके मूल म रही है।"

"भाई, इतना झूठ तो न बोलो", विनीत भाव से हँस कर महादेवी जी ने कहा।

"Of course, with others"

मैंने कहा, यद्यपि श्रीमती वर्मा सत्य को स्वीकार नहीं कर रही हैं, पर वास्तव मे रही हैं वे ही सदैव इस सस्था के मूल मे। इन्होंने ही इस विचार को जन्म दिया, इन्होने ही योजना बनाई और इन्होने ही दूसरे साथी साहित्यिकों के साथ मिलकर उसे कार्य रूप मे परिणत किया।"

"मैं सोचता हूँ अब मैं झूठ नही बोल रहा हूँ।" महादेवी जी की ओर मुड कर मैंने पूछा। महादेवी जी चुप हो गई और दो तीन क्षणो के उपरान्त बोली, हाँ, इतना तो ठीक है।"

फिर शिक्षा पर कोई बात सुश्री कम्प ने छेडी जहाँ तक मुझे पता लगा है सुश्री केम्प को शिक्षा सम्बन्धी बातो से विशेष प्रेम है। वे शिक्षा की विभिन्न Techniques

जानना चाहती है । किन-किन विषयो की कहाँ शिक्षा होती है, कितनी और किस तरह की कहाँ शिक्षण संस्थायें हैं और किस देश में कितने शिक्षित हैं, किस वर्ष से बच्चों की शिक्षा आरम्भ होती है आदि सब बातो के प्रति उनमे विशेष जिज्ञासा है। और धर्म सम्बन्धी बातो के प्रति उन्हे चिढ-सी है। वे Progressive हैं। Conservative लोगो से उन्हे घृणा है।

शिक्षा की बात छिडी। उन्होने बताया कि रूस मे तो एक प्रकार से शिक्षा जन्म के साथ ही आरम्भ हो जाती है।

मैंने कहा, "पर वहाँ शिक्षा की अवधि तो बहुत लम्बी है।"

"How ?"

"यही कि graduation के बाद Doctorate के लिए कितने ही वर्ष लगते है। 3 वर्ष तो Aspirant फिर 2 वर्ष Candidate और फिर 3 वर्ष Doctorate। वहाँ तो Doctorate लेना धैर्य की ही बात होगी ?"

"Every-where it is so।"

"नही, मैं समझता हूँ लन्दन मे तो Doctorate लेना बहुत आसान है। यहाँ से एम० ए० करने के उपरान्त लोग वहाँ जाते हैं और दो वर्ष मे डाक्टर होकर लौट आते हैं।"

"जाने से पहले वे एक दो वर्ष यहाँ तैयारी कर लेते हैं। खोज का कार्य तो सभी जगह परिश्रम का है," महादेवी जी ने कहा और फिर इसी विषय को आगे बढाते हुये बोली, "भारत वर्ष मे प्राचीन काल मे जो भी किसी एक विषय को पकडता था, उसी मे अपना समस्त जीवन लगा देता था, चाहे वेदान्त हो, तर्क हो, व्याकरण हो या साहित्य। पर फिर उस विषय को अन्तिम सीमा तक पहुँचा भी देता था। हमारे यहाँ जिस विषय मे हजारो वर्ष पहले मनीषी जो कह गए हैं, इतने वर्षों तक भी हम उसमे कुछ नही जोड पाए।"

"But what about science ? Has it not developed ?" सुश्री केम्प ने पूछा।

"मैं जिन मनीषियो की बात कर रही हूँ, उन्होने तो विज्ञान के अस्तित्व को ही नही माना, इसलिये उसमे जोडने घटाने की बात ही नही उठती।" अब बात छिड गई थी और सुश्री केम्प तथा महादेवी जी दोनो के बातचीत के ढग से ऐसा लग रहा था कि थोडा तर्क चलेगा, पर अन्दर किसी महिला ने महादेवी जी को बुला लिया। वे उठकर चली गई।

इतने मे लीला तथा एक और दूसरी महिला ने चाय इत्यादि ला दी। महादेवी जी अभी नही आई थी। मैंने इतनी देर सुश्री केम्प को आज के अपने भारतीय भोजन

से परिचय कराया।

"यह मीठी गु जिया है जो विशेष रूप से इसी त्योहार पर तैयार की जाती है। यह नमकीन गु जिया है, ये नमकीन सेव हैं और यह तो आप जानती ही हैं—दाल मोठ।

यह दही गु जिया है, इसमे अन्दर मेवा है, और खट्टे दही मे इसे डुबो दिया गया है।" इतने मे महादेवी जी आ गई। वे आते ही बोली, "मुझे देर हो गई। मलावार से जानकी देवी आ गई हैं।" मैंने पूछा, 'ये कौन हैं ?"

"इन्होने यही स हिन्दी मे एम० ए० किया। दस बारह साल तक मेरे साथ रही हैं। अब सतना मे हैं।' मैंने सुश्री केम्प को बतलाया।

अब हम सब लोगो ने खाना आरम्भ किया। महादेवी जी ने कवल एक प्याल चाय पी। जब सुश्री केम्प दही गु जिया खाने लगी, तो महादेवी जी ने पूछा, "य आपको कैसी लगी ?"

'It is just like a Russian dish of sour milk"

इसके बाद जानकी देवी भी आ गई। मैंने सुश्री केम्प से परिचय कराया। श्रीमत जानकी देवी का लगभग दो वर्ष का एक बच्चा भी था। उसे मैंने अपनी गोद में उठ लिया। सुश्री केम्प भी उसके कोमल हाथो को चूम कर अपने गालो से उनका स्प कर उसके साथ खेलने लगी, बातचीत करने लगी। कमरे की सभी चीजों को, मूर्तिय को, चित्रो को, वह कुतूहल भरी दृष्टि से देखता था और फिर जैसे उनका रहस समझ गया हो, इस प्रकार गर्दन हिला देता था। वह बार-बार मेरी ओर को आत था। इस पर हँसकर सुश्री केम्प ने पूछा,

"Why this baby is so"

"शायद पिछले जन्म मे हम दोनो का कुछ सम्बन्ध रहा होगा," मैंने हँसकर जवा दिया। सभी बहुत हँसते रहे। इसी हँसी के बीच हम उठकर खडे हुए। कमरा शा हो गया। बडी गम्भीरता से सुश्री केम्प उठी। उठकर महादेवी जी की ओर ब और फिर चमकते हुए कवर वाली सुन्दर अग्रेजी की मोटी पुस्तक उनकी ओर ब दी। उस पुस्तक पर बडे सुन्दर अक्षरो मे लिखा हुआ था Mother-Maxim Gork और फिर महादेवी जी के हाथो मे देते हुए बोली, "I forgot to congratula you on your birth day' और फिर एक क्षण के उपरान्त ही 'On this aus icious day I am presenting you "Mother," beaause we have somethi of mother in us" महादेवी जी ने उसे अपने हाथो मे ले लिया। उनकी उल्ल पूर्ण हँसी बिखर पडी। उन्होने अपने शीशे की टेबिल पर रखे हुए पुष्पदान मे मे कुमुद-कलियाँ उठाकर सुश्री केम्प को दी और कहा, "इन्हें आप रख लीजिये। सु होने तक ये खिल जायेंगी।" इस प्रकार सुश्री केम्प और श्रीमती वर्मा दोनो ने ही प

दूसरे को उपहार दिये। मैं थोडी सी इन उपहारो की कहानी आपको बतला दूं। Maxim Gorky सुश्री केम्प का सर्वप्रिय लेखक हैं। 65 भाषाओ मे इस लेखक की पुस्तको का अनुवाद हो चुका है। वैसे तो अंग्रेजी मे इस पुस्तक के और भी अनुवाद हैं। पर यह अनुवाद अमेरिका से अभी बडे सुन्दर ढग से प्रकाशित हुआ है। इसको उपहार में देते हुए सुश्री केम्प ने Russian भाषा मे ही सब कुछ लिखा था। सबसे पहले उन्होने रूस के प्रसिद्ध लेखक पुश्किन का एक quotation लिखा था जिसका अर्थ होता है, "*Hundred times blessed is one who has dedicated one's* life to some faith" मैं समझता हूँ महादेवी जी के लिये इस अवसर पर इससे सुन्दर बात नही कही जा सकती थी। इसके बाद उन्होने रूसन मे ही लिखा था

"To my sweet friend

Mahadevi Verma

On her birth day

24/3/48

Allahabad

महादेवी जी ने विदा के समय उन्हे कुमुदिनी की कलियाँ दी। जब सुश्री केम्प आयी थी, तो उन्होने महादेवी जी के गुलदस्ते मे रखे हुये इन फूलो के विषय मे उनसे पूछा था। उन्होंने बताया था, "ये कुमुदिनियाँ हैं, कमल की एक Variety कमल मुझे फूलो मे सबसे प्रिय है और हमारे तो देश का यह National flower सा ही है। हमारे यहाँ काव्य मे, चित्रो मे, Architectaure म सभी जगह कमल मिलता है। इस फूल का सम्बन्ध हमारी प्राचीन सभ्यता और सस्कृति से है।" तो सुश्री केम्प ने कहा था "I like it very much It has got a very delicate, lively and fine colour"

विदा के समय महादेवी जी ने वे ही दो कुमुदिनी की कलियाँ उन्हें भेंट मे दी और कहा, "प्रभात होने तक ये खिल जायेंगी।" इसस महादेवी जी का जीवन के प्रति आशावादी और उल्लासपूर्ण दृष्टिकोण प्रकट होता है। हिन्दी ससार के लिए यह सुख और सौभाग्य की ही बात है। मुझे तो ऐसा लगा कि जैसे वे कलियो के रूप मे अपनी आशाओ के विषय मे ही कह रही हो कि अभी रात है, सुबह होने तक ये खिल जायेंगी। महादेवी जी का उनके खिलने में विश्वास है। यही बहुत कुछ है। जीवन मे विश्वास से बडी और कोई शक्ति नहीं।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
5/3/48

आदरणीय 'मानव' जी

आपका 1/4 का पत्र परसों मिल गया।

आपने अपने पत्र में महादेवी जी की अंग्रेजी मे बातचीत न करने वाली नीति से मतभेद प्रकट किया है। उनकी ऐसी बातें यहीं समाप्त नहीं हो जाती। युग की आधुनिकता उन्हें अच्छी नहीं लगती पर उनकी बहुत सी बातें युग की आधुनिकता को लिए हैं। उन्हें इसी बीसवी सदी ने पैदा किया है पर वे कहती हैं "हम तो भाई पुरातनवादी हैं।" ऐसे ही Apparently उनमें बहुत से Contradictions है। पर जहाँ तक उनके आन्तरिक व्यक्तित्व की बात है, वहाँ उनमे कहीं कोई Contradiction नहीं।

उनके कुछ सिद्धान्त है। सिद्धान्त एक व्यक्ति की व्यक्तिगत-सी ही धारणा है। सिद्धान्त के विषय मे तर्क भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि सिद्धान्त एक Faith की बात है। मेरा तो ऐसा विचार है कि सिद्धान्त किसी का कितना ही ridiculous क्यो न हो, हमे उसका आदर ही करना चाहिए। सिद्धान्त को मैं व्यक्ति के प्राणो मे डूबी हुई एक पवित्र वस्तु समझता हूँ। भाषा के सम्बन्ध मे भी उनका ऐसा ही सिद्धान्त है। वे कहती हैं कि विदेशियों को हमारे देश मे आकर हमारे देश की भाषा बोलनी चाहिए और यदि हम उनके देश मे जायें तो हमे उनके देश की। यह सिद्धान्त निस्सदेह एक अच्छा स्वप्न है। वास्तविकता मे तो यह परिणत नहीं हो सकता, क्योंकि विश्व तो क्या किसी एक continent मे ही इतनी भाषायें है कि एक व्यक्ति यदि केवल भाषायें ही सीखने लगे तो अपने जीवन काल मे नहीं सीख सकता। दूसरे जब भारतवर्ष अंग्रेजो का गुलाम था तब तक तो अंग्रेजी के Boycott की बात समझ मे आती थी, पर अब नहीं।

मिस केम्प ने Mother पुस्तक जो महादेवी जी को उनके जन्म दिवस पर भेंट की है उस पर सब कुछ रशन भाषा मे ही लिखा। महादेवी जी की प्रतिक्रिया ही है यह। यदि उनके साथ कोई रशन का Interpreter होता तो, यह प्रतिक्रिया यहाँ तक बढ सकती थी कि वे रशन मे ही बात करती।

कोई भी सम्बन्ध हो, मेरा ऐसा विचार है कि abruptly अस्तित्व मे नहीं आता। भाव का धीरे-धीरे उत्कर्ष होता है। स्वाभाविक क्रिया तो यही है और इसी प्रकार पैदा हुए सम्बन्ध कुछ स्थायी भी होते हैं। महादेवी जी के साथ ऐसी बात नहीं। उनके लिए भाई बहिन सम्बन्ध ऐसे ही हैं जैसे किसी को नाम दे दिया 'राम' 'श्याम' इत्यादि। उन्होंने सैकडों आदमियों को 'भाई' कहा होगा। यह बात सच ही है कि

यह भाई शब्द अब उनके हृदय मे कोई अनुभूति नही जगाता।' पर जिनको यह संबोधन दिया जाता है उनके साथ यह बात नही। उनमे से अधिकांश तो उसमे इतने डूब जाते हैं कि कदाचित् ही निकल पाते हों। वास्तव मे बात यह है कि भारतीयों के लिए सम्बन्ध-भाव की appeal सबसे अधिक होती है, इसलिए 'भाई' 'बहिन' ये शब्द महादेवी जी के साहित्य-तन्त्र की नीति के दो अस्त्र बन गये हैं। पर जिस दिन उनकी भेंट मिस केम्प से हुई थी उस दिन वे ये भूल गई थी कि ये अस्त्र पाश्चात्य व्यक्तियों के लिये नही। उन्होने मिस केम्प को लिखा 'प्रिय बहिन' पर मिस केम्प ने तो उसे स्वीकार नही किया। उन्होंने लिखा To my sweet friend

आशा-निराशा के विषय मे मेरा दृष्टिकोण यह है कि कुछ सम्बन्ध तो केवल Diplomatic ही होते हैं। वहाँ तो दोनों ओर से अभिनय होता है। दोनो ओर से कूटनीति चलती है। जिसकी कूटनीति भी विजयिनी हो जाये। ऐसे सम्बन्धों की तो बात छोड़िए। पर कुछ सम्बन्ध भाव के सम्बन्ध होते हैं, निश्छल सम्बन्ध होते हैं। मैं उनकी बात कहता हूँ। ऐसी जगह हमे कोई भी आशा या अपेक्षा रख कर नहीं जाना चाहिये। प्रतिदान मिलेगा, यह नही सोचना चाहिये और यदि स्वय कुछ मिल जाये तो उसके प्रति अकृतज्ञ नही होना चाहिये। हमारा तो महादेवी जी से ऐसा ही सम्बन्ध है।

मैंने महादेवी जी से 'मजु लता' की बात सुनाई थी। मैंने कहा "उस लड़की की उम्र 11 वर्ष है, पर उसकी चेतना विशेष प्रबुद्ध हो गई है।" तो उन्होने पूछा "कैसे?" मैंने कहा, "उसके उत्तर बड़े विलक्षण होते हैं। उदाहरण के लिए उसके भाई के जितने भी परिचित हैं सभी को वह भाई कहती है। 'मानव' जी को भी भाई कहने लगी। एक दिन उन्होंने हँसी हँसी मे पूछा, "अच्छा मजु, तेरे इतने भाई हैं, तो फिर तू मुझे भाई बना कर क्या करेगी?" उसने तुरन्त उत्तर दिया, "वे सब तो भाई हैं ही, पर आप मेरे अलग के भाई हैं।" महादेवी जी सुन कर जरा हँसी, फिर अवाक् हो गई।

21 मार्च वाला काम कल हो गया है। इस काम मे देरी मेरी ओर से नही हुई, फिर भी ऐसा लगता है जैसे कुछ भी देने से पहले वे व्यक्ति के धैर्य की परीक्षा लेती हों। हस्ताक्षर उनके सभी स्थानो पर हो गये है। खाली जगह मैंने नही भरी। ठीक से आप ही उन्हें भर दीजियेगा।

आजकल बहुत दिनो से मेरे पास पैसा नही है। अब घर से भी नही आयगा। 40 रु० की आवश्यकता है। 11 ता० तक किसी भी तरह भेजियेगा।

सुश्री कॅप बनारस गई थी। वहाँ कोई accident हो गया है। शायद एक दिन के लिये मुझे बनारस जाना पडे।

आपका आफिस नैनीताल कब जा रहा है?

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

61

30 ए, वेली रोड
इलाहाबाद
12/4/48

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका 7/4 का पत्र मिला और रुपया भी।

हिन्दी साहित्य के लिये यह सौभाग्य की ही बात है कि अब साहित्य प्रेमी जनता को महादेवी जी के गीत air पर सुनने को मिल सकेंगे।

कान्ट्रेक्ट फार्म पर हस्ताक्षर करके जब महादेवी जी ने उन्हें मुझे दिया तो मैंने उन्हें हाथ में लेते हुए कहा, "अब तो आप भी एक रेडियो खरीद लीजियेगा।"

"हमारे गीत आ रहे हैं, इसलिये हम एक रेडियो खरीद लें, तब तो हमें धन्य है," महादेवी जी ने कहा।

"अच्छा, आप न सुनियेगा, हमारे लिये ही खरीद दीजियेगा।" मैंने हँस कर कहा।

उत्तर में बोलीं, "आप लोग कहें तो साहित्यकार संसद् में एक रेडियो खरीद लेंगे।"

चलती बार कहने लगी, "मानव जी को लिख देना कि ऐसे फार्म रेडियो विभाग से पहले भी आ चुके हैं। पर वे तो कहीं रद्दी में ही चले गये होंगे। अब की बार उन्होंने फँसा दिया है और अब तो हस्ताक्षर हो ही गये।"

मिस केम्प के बायें हाथ का Shoulder Blade का Dislocation तथा Elbow का Fracture हो गया है। वे कलकत्ता अस्पताल में हैं।

पत्र की देरी के लिये क्षमा कीजियेगा। श्री बुल्के जी का पत्र कल ही सन्ध्या को उनके यहाँ पहुँचा दिया था।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

62

30 ए, वेली रोड
इलाहाबाद
26/4/48

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका 22/4 का पत्र परसों मिल गया था।

आजकल आप अपने छोटे से परिवार के साथ सुखी और प्रसन्न हैं, यह प्रसन्नता की ही बात है। मैं तो दुःख और संघर्ष को सुख की भूमिका ही समझता हूँ। ईश्वर

करे यह सुख किसी बड़े सुख की भूमिका हो। सुख दुख की छोटी छोटी लहरों के बीच ही जीवन बुद्‌बुद अपने मार्ग पर गति से बढ़ता रहे, इसी में लगता है जीवन का सौंदर्य है, और यदि उसमें कहीं से बाहर का प्रकाश प्रतिबिंबित होकर उसे सतरंगी शोभा प्रदान कर दे तो सौभाग्य ही समझना चाहिये।

भारतवर्ष के प्राचीन मनीषी नि सदेह कलाकार तो थे पर दार्शनिक अधिक थे और साथ ही अतमुर्खी व्यक्ति भी। उन्होने अपने अन्तर मे ही सुख और सौंदर्य की खोज की, बाहर नही। वह एक दृष्टिकोण ही कहा जा सकता है। ससार मे चरम सत्य तो कुछ भी नही।

मुझे ऐसा लगता है कि कलाकार की प्रतिभा एव कला के विकास क लिये आन्तरिक सघर्ष आवश्यक है, पर उसको बाह्यय सुविधायें सब प्रकार की मिलनी चाहिये। वह सुखी होना चाहिये—सामान्य मनुष्यों की अपेक्षा अधिक सुखी।

श्री बुल्के का पता 2 एडमॉस्टन रोड इलाहाबाद है। वे 9 मई तक प्रयाग छोड देंगे।

महादेवी जी कल कहीं गई हुई थी, इसलिये उनसे भेंट नही हो सकी। आज उनके पिता जी यहाँ आये हुये है। इस बार वे उनके साथ ही रामगढ जायेंगी।

'रहस्य साधना' की प्रतियाँ नहीं रही। कम से कम दस प्रतियाँ पत्र के देखते ही भेज दीजियेगा।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

63

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
6/5/48

आदरणीय 'मानव' जी,

अभी-अभी मैंने महादेवी जी का चित्र रजिस्ट्री से भेजा है। कल सध्या को मिल सका था, इसी स देरी हो गई है। पर यह अत्यधिक प्रसन्नता की बात है कि मिल गया। सपादक को लिख दीजियेगा कि ब्लाक बन जाने पर लौटा दे।

आजकल कभी कभी बडी निराशा सी हो जाती है जैसे अपना ही जीवन भार सा हो गया हो। कभी कभी मन मे ऐसी भावना उठती है कि कोई ऐसा व्यक्ति मेरे पास होता जिससे मैं अपने मन की बात कह सकता।

आजकल मरे पास पैसा भी नहीं है। 20 रु० आपको भेजने होंगे।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
17/5/48

आदरणीय 'मानव' जी,

परसों परीक्षायें समाप्त हो गई। प्रसन्नता केवल इतनी है कि घुटन के वातावरण से बाहर साँस लेने का अवकाश मुझे मिल गया है। जिन परिस्थितियों में यह परीक्षा दी गई है, उसकी स्मृति जीवन-पट पर अंकित दुःख की रेखाओं में एक रेखा को और जोड़ने वाली है। फिर भी मैं उसे भुला देना ही चाहता हूँ।

महादेवी जी से आपकी यह भेंट छोटी ही है—ऐसी ही जैसे किसी जाते हुए यात्री से सम्भव हो सकती है, पर सुन्दर है।

आपकी बातचीत में Laconic pith होता है और वह इतनी संतुलित होती है कि उसमें से एक भी शब्द न तो निकाला जा सकता है और न जोड़ा जा सकता। महादेवी जी कुछ कहती हैं कुछ नहीं कहती जो नहीं कहती उसके लिए संकेतों से काम लेती हैं। इस उनकी बातचीत म रहस्यवादी प्रकृति कह सकते हैं। उनकी बातचीत की दूसरी विशेषता यह है कि जो वे कहती हैं उसका आशय कभी-कभी साधारण व्यक्ति की पकड़ मे नहीं आता। बातचीत मे भी उनकी अभिव्यक्ति की शैली एक प्रकार मौलिकता लिए होती है। भारतवर्ष मे तो बातचीत की कला को अभी कला ही नही मानते। यदि किसी पाश्चात्य प्रदेश में महादेवी जी होती, तो आलोचक इस कला के क्षेत्र मे जो उन्होंने अपनी शैली दी हैउसका Recognition करते और उचित मूल्याकन भी। बातचीत की कला म आप दोनो ही व्यक्ति विलक्षण हैं। मैंने आप दोनों से अलग-अलग बातचीत की है। कभी कभी मन करता है कि कला अथवा साहित्य पर दोनों की बातचीत मैं सुनता और आप दोनो को यह पता न होता कि मैं सुन रहा हूँ।

क्या स्टेशन पर पाण्डे जी से आपकी भेंट नही हुई ? वे भी तो साथ थे। उनकी कोई चर्चा आपने पत्र मे नहीं की।

मैं तीन चार जून तक लखनऊ आऊंगा।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र

65

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
24/7/48

आदरणीय 'मानव' जी,

21/7 की प्रभात मे ही मैं सकुशल पहुंच गया था। विश्वविद्यालय के खुलने के पहले दिनो म घूमने फिरने की परेशानियाँ प्रति वर्ष अनिवार्य सी हो गई हैं। ऐसा

लगता है कि इनका स्थान भी अध्ययन के कार्यक्रम का ही एक भाग है। यह जीवन भी खानाबदोशी का सा है। अप्रैल के अन्त मे अपने-अपने डेरे उखाड देने पडते हैं, जुलाई मे फिर से घर बनाना पडता है। घर बनाना सचमुच कठिन काम है।

मेरा मन गिरा गिरा सा है। कभी-कभी लगता है मैं यहाँ कहाँ आ गया जहाँ कोई भी अपना नही। चारो ओर देखने से ऐसा लगता है कि सभी इस ओर प्रयत्नशील हैं कि कोई अपना हो।

मस्तिष्क और शरीर कुछ भी काम नही कर रहे। प्राणो की विद्युत जैसे खीच ली गई है। यह एक वर्ष मैं हँस कर काटना चाहता हूँ, पर अन्तर से हँसी आती नही। सभी तरह मैं थक सा गया हूँ।

21/7 की सध्या को मैं महादेवी जी के यहाँ गया था। महादेवी जी स्वस्थ और प्रसन्न हैं। वैसे वे कहती हैं, "हमारा शरीर सच्चे अर्थों मे व्याधि मन्दिर है।" इस पर मैंने कहा, "चलिए, व्याधियो ने भी सुन्दर स्थान को अपना मन्दिर बनाया है।"

सुश्री केम्प भी आ गई हैं। अपने पाकिस्तान के अनुभव बता रही थीं। कह रही थी वहाँ के निवासियो का सास्कृतिक स्तर यहाँ के निवासियों से बहुत नीचा है, शिक्षा का प्रसार बहुत कम हो पाया है और सबसे बडा आश्चर्य मुझे यह लगा कि वहाँ dro-English और Pro-American feeling अधिक मात्रा मे विद्यमान है। फिर जब मैंने वहाँ के Natural environment की बात पूछी तो कहने लगी, "वह एक शुष्क और नीरस स्थान है, जबकि यहाँ आजकल चारो ओर हरियाली ही हरियाली दृष्टिगोचर होती है। वहाँ एक भी हरा तिनका दिखाई नही देता था।"

सश्रद्धा
शिवचन्द्र

66

30 ए, वेली रोड
इलाहाबाद
19/8/48

आदरणीय 'मानव' जी,

उस दिन 16/8 की रात को हम आपको विदा कर चुपचाप लौट आए थे। विदा की उदासी का अपना सौंदर्य है। भीड मे वह उदासी हल्की हो जाने से सौंदर्य भी हल्का हो जाता है। फिर भी जाने क्या किसी भी स्नेही को मुझे अकेले ही विदा करना अच्छा लगता है।

अगले दिन प्रभात मे मैंने सुश्री केम्प से कहा, "मेरे लखनऊ वाले कवि-मित्र 'निराधार' के लेखक कल यहाँ आये थे। तीन बजे के लगभग हम आपके यहाँ भी

गए थे, पर उस समय आप सो रही थी, अत वे लौट गये।"

"Why did you not wake me up, Nagar?"

"मैं तो चाहता था, पर मेरे मित्र ने आपको गहरी नीद मे जगाने के लिये मना कर दिया। वे कहने लगे, अगले महीने मैं फिर आऊंगा। तब मिलूंगा।"

"Mr Nagar! you would have held me by the shoulder and jostled me as to wake up"

"वे किसी दिन फिर आयेंगे।"

"Let us hope so"

"व अपनी पुस्तक 'महादेवी की रहस्य साधना' की एक प्रति आपके लिए छोड गए हैं। मै उसे आपके पास कल या परसो अवश्य पहुँचा दूंगा।"

"Oh, thanks" सुश्री केम्प ने कहा।

आज सुश्री केम्प से 'रक्षा-बन्धन' के त्योहार, इसके आशय और इसके सामाजिक महत्व पर भी कुछ बातें हुई थी। यह सुन कर उन्होने कहा था कि उनके देश मे भी इसी प्रकार का एक त्योहार होता है। यह एक सुन्दर त्योहार है। कोई स्त्री जिसे अपना भाई बना लेती है, उस भाई को उस बहिन की सदैव रक्षा करनी होती है और फिर वह उस बहिन के परिवार मे विवाह भी नही कर सकता। इस पर मैंने हँसकर कहा "मिस केम्प, पहली शर्त तो ठीक है पर दूसरी बहुत कठिन है।"

इस पर वे भी हँस दी थी और 17/8 की वह भेंट उसी हँसी के साथ-साथ समाप्त हो गई थी।

आज 19/8 को रक्षा बन्धन का त्योहार था। यहाँ मेरी एक-दो छोटी मुँह बोली बहनें हैं। उन्होने मुझे कल सध्या को ही निमन्त्रण दे दिया था। वहाँ भोजन कर, मैं सुश्री केम्प के यहाँ चला गया। सुश्री केम्प भी भोजन कर चुकी थी। उनसे साहित्यिक वार्तालाप आरम्भ हो गया। आज उन्होने एक रूसी कविताओ की पुस्तक निकाली। वहाँ के एक आधुनिक प्रसिद्ध कवि सामिनोव की कविता उन्होने मुझे समझाई और समझाने मे पहले बताया कि ये कवितायें उसी प्रकार की हैं जैसे तुम्हारे मित्र की 'निराधार' की कवितायें हैं। उस रूसी कविता के अन्दर जो सगीत, ताल और भाषा का सौंदर्य था उसे तो मैं अभी समझ नही सका, पर भाव मैं लिख रहा हूँ। इस कविता की Theme इस प्रकार है।

"एक सैनिक की पत्नी जिसने बहुत दिनो तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त किसी दूसरे स विवाह कर लिया था इस बात की सूचना एक पत्र द्वारा अपने पहले पति को जो मार्च पर लड रहा था दी। उस पत्र के पहुँचने स पहले उस सैनिक की मृत्यु हो गई और वह पत्र उसके एक दूसरे मित्र सैनिक को मिला। वह मित्र सैनिक उस पत्र का उत्तर उस महिला को देता है जिसमे वह लिखता है कि यदि यह पत्र

नके मित्र अर्थात् उस महिला के पहले पति को मिलता तो उसकी क्या दशा हुई ती ?"

फिर उन्होने एक दूसरी कविता पढ कर समझायी । इस कविता का केन्द्रीय भाव ह था, "इस विनाशकारी युद्ध मे से मैं कैसे बचकर आ सका, इसे केवल मैं और म ही जान सकते हैं और कोई नही जान सकता । दूसरे इसलिये नही जान सकते क वे प्रतीक्षा नही कर सकते थे । इसे केवल तुम्ही जान सकती हो, क्योकि तुम ानती हो प्रतीक्षा किस प्रकार की जाती है ।" इस पर मैंने सुश्री केम्प से पूछ लिया—

"इस कविता मे यह तुम कौन है ?—सैनिक की पत्नी या प्रेमिका ?"

"पत्नी ही है ?"

"मुझे ऐसा लगता है कि प्रेम-भाव की तीव्रता और गहनता जितनी प्रेमिका के प्रति होती है, उतनी पत्नी के प्रति नही । क्या मनोवैज्ञानिक आधार पर यह सत्य है ?"

"हमारे देश मे तो 90 प्रतिशत प्रेमिकायें ही पत्नी बनती हैं, और फिर पत्नियो के प्रति ही प्रेम की तीव्रता और गहनता अधिक होती है । पर तुम्हारी उम्र के अविवाहित व्यक्ति को तो यही लगेगा कि प्रेम भाव की तीव्रता और गहनता प्रेमिका के प्रति ही अधिक होती है । मनोवैज्ञानिक आधार पर दोनो ही बातें अपनी-अपनी परिस्थितियो मे सत्य हैं ।"

'पर हमारे देश मे तो ऐसा है कि 90 प्रतिशत cases मे प्रेमिकायें पत्नी नही बन पाती, इसलिये यह बात हमे तो शाश्वत सत्य सी ही लगती है कि प्रेम भाव की गहनता प्रेमिका के प्रति ही अधिक होती है ।"

'आपके यहाँ arranged विवाह होते हैं, जहाँ व्यक्ति को अपना जीवन साथी चुनने के लियें संघर्ष ही नही करना पडता । ऐसी दशा मे भाव की गहनता कैसे हो सकती है ?"

'हाँ, यह बात तो ठीक है ।"

इसके उपरान्त सुश्री केम्प की सेविका काफी ले आयी । मैंने एक प्याला काफी पी । आज की काफी काफी स्ट्राग थी । पीने पर ऐसा लगा जैसे बुद्धि के शिथिल तन्तु खिच गये हो । सामने रक्खी हुई 'यामा' मैंने उठा ली और उसमे से निम्नलिखित कविता उन्हे समझायी ·

मेरे हँसते अधर नही,
जग की आँसू लडियाँ देखो ।
मेरे गीले पलक छुओ मत,
मुर्झाई कलियाँ देखो ।

यह कविता उन्हें बहुत पसन्द आई। फिर मैंने उन्हें दूसरी कविता 'किन उपकरणों का दीपक किसका जलता है तेल' पढ़ी और नन्द कुमार जी वाला अंग्रेजी अनुवाद देने के लिये कहा। उस अनुवाद की प्रति तो आपके पास है। उसे भेज दीजियेगा।

रक्षा बन्धन की बात उठ खड़ी हुई। मैंने कहा, 'मेरी एक बड़ी बहिन है। आपकी ही उम्र की होगी। वे डाक से राखी भेजेंगी। अगर वह राखी आ गई तो आप उसे मेरे हाथ में बांध दीजियेगा।

'और यदि मैं अलग से बांध दूं तो ?"

'ता ' मैं गम्भीर हो गया और एक पल के लिए अपने को भूलकर शांत भाव में बोला।

"तो कुछ नहीं सभी प्रकार के बन्धन जो इस त्यौहार की आत्मा से जुड़े हैं मुझ पर लागू होंगे।" वातावरण गम्भीर हो गया था। कुछ पलों की निस्तब्धता के उपरान्त मैं उठ कर चला आया। अपनी छोटी-छोटी बहनों के यहाँ गया। उन्होंने राखियां बांधी। मैं फिर पांच बजे सुश्री केम्प के यहाँ गया। नन्ही नन्ही बूंदें पड़ रही थी। मैं चुपचाप जा कर बैठ गया। मैंने पूछा, "यह वर्षा आप को कैसी लगती है ?"

बोलीं "इस वर्षा के साथ एक प्रकार की उदासी melancholy जुड़ी है।"

'हाँ, है तो ऐसा ही। और प्रतिदिन सध्या के साथ भी ऐसा ही लगता है।" मैंने कहा।

मेरे हाथ में राखी बँधी देखकर पूछ बैठी, "यह राखी किन्होने बांधी है ?"

'मेरे एक मित्र की दो छोटी छोटी बहिनें हैं, उन्होंने ?"

'मेरे लिये राखी लाये हो ?"

मैंने एक सुन्दर सी राखी उनकी ओर बढ़ा दी, और साथ ही मेरा दायाँ हाथ बढ़ा का बढ़ा रह गया। उन्होंने शांत और गम्भीर भाव से वह राखी मेरे हाथ में बांध दी। मेरा शरीर सिहर उठा। रोमांच हो आया। राखी तो आज तक इस कलाई में सैंकड़ों बंधी होंगी, पर आज जैसा अनुभव कभी नहीं हुआ। मैं मुग्ध भाव से भूला सा यह सब कुछ देखता रहा। वे विद्युत गति से उठकर अन्दर गई और एक प्लेट में कुछ Cake और Pastries ले आयीं, मैंने उन्हें खाया। एक प्रकार की अवर्णनीय प्रसन्नता का मन ने अनुभव किया, और साथ साथ ऐसा भी लगा जैसे एक महान् उत्तरदायित्व मुझे चारों ओर से बांध रहा हो, एवं कर्तव्य की भावना ने मुझे अभिभूत कर दिया हो। बहुत दिन हुए मैंने 'सिकन्दर' सिनेमा देखा था। उसमें एक जगह कथोपकथन में आया था 'यह वह राखी है जो फारस ने हिन्दुस्तान के हाथों में बांधी है।' यही वाक्य मस्तिष्क में विद्युत की भांति कौंध गया और उसके आगे प्राणों में ऐसा लगा जैसे कल्पना ने उजले अक्षरों में लिख दिया हो, "यह वह राखी है जो युगोस्लाविया ने " फिर और आगे सोचने लगा। कभी कभी बड़े

आधार पर ऐसी ही घटनायें होती हैं और कभी-कभी देश का इतिहास भी बदल देती हैं। छोटे आधार पर क्या यह भी एक इसी प्रकार की घटना नही थी ?"

कुछ ही पलो के भीतर ये सब भाव आये और अपने चिन्ह छोडते चले गये। मैं अब एक विशेष स्थिति से जगा। मुझे अब form का ध्यान आया। मैंने थोडे से फल उनकी ओर बढा दिये और गद्‌गद्‌ वाणी से केवल इतना ही निकला, "इन्हे आप रख लीजियेगा।"

कुछ पल हम निस्तब्ध बैठे रहे। इसके उपरान्त सुश्री केम्प बोली 'When I will inform my mother that I have adopted a brother here she will be very much pleased"

"आप की माता जी कहाँ है ?" मैंने पूछा।

'She is in America"

'आपकी माता जी हैं, यह बहुत सुन्दर बात है। कभी यदि मिल सका तो मैं उनके दर्शन करूँगा।"

"आपके पिता जी भी जीवित हैं ?'

'हाँ।'

'सुश्री केम्प, वैसे तो कहने को बहुत से सम्बन्ध होते हैं, पर मेरे साथ सम्बन्धो की बात बडी अजीब सी है। आपको चाहे वह अजीब न भी लगे, पर देशवाले तो उस सुनकर मुझे घृणा भी कर सकते है ?'

'इस विषय म क्या तुम्हारे कोई अजीब विश्वास हैं ?'

'केवल बात इतनी है कि मैं रक्त के सम्बन्धा का नही मानता। किसी भी सम्बन्ध क प्राण उसके निर्वाह मे निहित होते हैं। दो व्यक्तियो के बीच मे चाहे व किसी देश, जाति अथवा उम्र के हो वास्तविक सम्बन्ध तो केवल उतना ही होता है जितना वे दोनो एक दूसरे क लिये अनुभव करते हैं।"

'बात तो ऐसी ही है।" सुश्री केम्प ने कहा और फिर आगे बोली "सम्बन्धो के प्रति मेरी माता जी का सदैव ही बडा उदार दृष्टिकोण रहा है। मेरे मित्रो को देखकर वे सदा ही प्रसन्न होती थी।'

यह बात यही रह गई। मैंने बाहर देखा आकाश मे हल्के श्वेत और सुरमई बादल घिरे हुए थे और नन्ही नन्ही फुहारें पड रही थी। मैंने टूटी फूटी रूसी भाषा म कहा, "देखिए कितना सुहावना मौसम है। चलिये कही बाहर घूमने चलें।" सुनकर हँस पडी। बोली, 'कहाँ चलना चाहिए ?"

'चलिये गगा किनारे चलें।"

सुश्री केम्प जल्दी ही तैयार हो गई। आज उन्होने नीला चमकदार फूलो वाला रेशमी घुटनों तक का फ्राक पहना। यह वस्त्र एक नये फैशन का था बिल्कुल वैसा

नही जैसा कि अग्रेज महिलायें पहनती हैं वलिक कुछ थोडा Sleeping gown से मिलता जुलता। इसका रग कुछ ऐसा था जो हल्के मेघो से भरी हुई सध्या की छाया मे आंखो को विशेप सुन्दर लगता था।

हमने एक सफेद घोडे वाला तागा लिया और साहित्यकार ससद की ओर चल दिए। ससद का रास्ता मेरे कमरे के सामने से ही निकलता है। मैं दो मिनट के लिए वहाँ रुका। अन्दर आकर एक प्रति 'महादेवी की रहस्य साधना' की ली और तागे मे बैठ कर सुश्री केम्प को उसे दे दिया। "यही वह पुस्तक है जो मेरे मित्र आपके लिये छोड गये हैं। इसमे महादेवी जी की कृतियो का आलोचनात्मक अध्ययन हैं। इसका नाम है—महादेवी की रहस्य साधना।"

"इसमे उनकी कविता को criticize किया है?'

'कही कही, पर साथ ही लेखक ने उनकी कविता मे अन्तर्निहित सौंदर्य पर प्रकाश डाला है, क्योकि लेखक की राय मे आलोचक के दो कर्तव्य हैं किसी कृति मे कलाकार ने कितनी कला और सौंदर्य छिपाया है उस पर प्रकाश डालना और दूसरे कुछ त्रुटियो की ओर सकेत करना। आलाचक एक पाठक ही होता है, एक विशिष्ट पाठक। वैसे यह बात सच है कि इस पुस्तक का लेखक श्रीमती वर्मा का बहुत बडा Admirer है।'

"श्रीमती वर्मा के साथ यह बडे सौभाग्य की बात है कि उन्हें young generation से इतना सम्मान मिला है। दूसरे अधिकतर देशो म ऐसा रहा है कि young generation अपने से पीछे वाले कलाकारो का अधिक सम्मान नही कर सकी।"

"श्रीमती वर्मा के साथ यह आश्चर्यजनक सा ही है कि उन्हे young generation से बहुत सम्मान मिला है। व्यक्तिगत रूप मे इनके सैकडो भक्त हैं जो इनको श्रद्धा की द्रष्टि म देखते हैं पर Old generation मे उन्हें सम्मान नही मिला।'

"ऐसा क्यो है?"

पुरानी पीढी ब्रजभापा स्कूल स सम्बन्धित थी। कोई भी अस्तित्व जब अपनी जडें हिलता देखता है तो दूसरे विरोधी Challenge करने वाले स्कूल को सहन नही कर पाता, पर कुछ उदार हृदय ऐसे होते हैं कि विरोधी स्कूल की Genuine merits को स्वीकार भी कर लेते है। पर ब्रजभापा स्कूल के कर्णधारो को ऐसा उदार हृदय नही मिला था, इसलिए वे विरोधी स्कूल की genuine merits को भी नही पहचान सके। इसलिये सम्मान का फिर प्रश्न ही नही उठना। हमारे देश का यह एक general character ही रहा है, कि किसी भी नवीन धारा को चाहे वह कितनी ही कल्याणकारी क्यो न हो अपनाने मे हम अनुदार रहे हैं। पर फिर भी नई पीढी ने इनके काव्य मे निहित मौलिकता, कला और भाव-सौन्दर्य को पहचाना और फिर सम्मान भी दिया। यह सम्भव है नवीनमत पीढी इनको इतना आदर सम्मान न दे

सके, पर फिर भी इनके काव्य मे कुछ ऐसा है कि चिन्तनशील पाठक किसी भी देश मे और किसी भी युग मे इनका आदर करेंगे।"

इस बीच वे 'रहस्य साधना' के पन्ने पलट रही थी। उनकी दृष्टि 'सध्या की छाया मे' वाले परिच्छेद पर ठहर गई और उन्होने परिच्छेद का शीर्षक पढने का प्रयत्न किया। मैंने कहा यह है 'सध्या की छाया म।'

'सध्या की छाया मे' लेखक की महादेवी जी से प्रथम भेंट हुई थी। उसमे उन्होने लेखक के हृदय पर जो impression छोडा उसी का वर्णन इसम है।

फिर वे आपका समर्पण देखने लगी। मैंने मुस्कराकर कहा, यह उसी प्रकार का Dedication है, जैसा आपने अपनी पुस्तक Traditions and rituals of southern slaves मे दिया है। जैसे आपने नाम के initials को लेकर लिखा है To, P P. ऐसे ही इन्होने लिया है, 'सा' को।"

"यह 'सा' कौन है ?"

"इसे कोई नहीं जानता। मैं भी नही जानता। ऐसा लगता है लेखक ने जहाँ इस पुस्तक मे पाठको के लिये महादेवी जी के रहस्यवाद को सुलझाने का प्रयत्न किया है, वहाँ अपने रहस्य मे उन्हें उलझा लिया है।" इस पर थोडी हँसी रही। पर पल भर बाद ही सुश्री केम्प कुछ उदास हो गई और बोली, "मैंने अपनी पुस्तक जिसे dedicate की है वह एक मेरा सहयोगी था। उसने अपने को गोली मार ली।" इतना कह कर वे पल भर रुक गई। मैं आश्चर्य विस्फारित नेत्रो से देखता हुआ व्यथापूर्ण स्वर मे बोल उठा, "ओह, कैसे ?"

बोली "वह एक बडा प्रतिभाशाली गेरियन भूगर्भ शास्त्री Geologist था। वैज्ञानिक था। जब पिछली लडाई में जर्मनी ने हगरी को हडप लिया तो उसने अपने देश की राष्ट्रीयता को plead करते हुए कुछ लेख लिखे। गवर्नमेन्ट ने उससे अपने प्रति Loyal रहने की कसम लेनी चाही। फिर उसे जिस म्यूजियम मे वह था वहाँ से dismiss कर दिया। यह असह्य अपमान था। घर आकर उसने अपने को गोली मार ली। हमने वर्षों तक साथ साथ काम किया था। मेरा विषय Enthrography था। मैं यह पुस्तक लिख रही थी। Museum से तथा दूसरी जगहो से बहुत matter की आवश्यकता होती थी। वह उस सभी की व्यवस्था कर देता था। उसी के कारण यह पुस्तक इस रूप मे आ सकी। इस पुस्तक का Dedication उसी को है।"

वातावरण व्यथापूर्ण हो गया था। चारो ओर की निस्तब्धता, सध्या, और आकाश से आती हुई रिमझिम फुहारो ने इस उदासी को और भी घनीभूत कर दिया हो, ऐसा लगा। इसमे घोडो के पैरो का खट्खट् कठोर स्वर ऐसा लग रहा था जैसे इस उदास निस्तब्धता का हृदय चीरे डाल रहा हो। बहुत से प्रश्न आये—जीवन क्या है ? मानव क्या है ? जीवन की गहराई मे क्या है ? कुछ मिनटो तक

कोई किसी से नही बोला अब। रसूलाबाद बीत कर गंगा तट पर समाप्त होने वाली सड़क का ढाल आ गया था। इसी समय उस गम्भीर उदासी को अपनी हँसी से चीरती हुई सुश्री केम्प बोली,

"Look how beautiful looks this slope"

"हाँ, लगता है जैसे पथ अनन्त की ओर जा रहा हो।"

ताँगा रुक गया। सामने हलके हर-हर स्वर से उर्मिमयी गगा बह रही थी। दूर दूसरे किनारे को छूते हुए से क्षितिज पर से घटा उमड रही थी। बायी ओर बादलो के पीछे से सध्या अपना अरुणिम प्रकाश फेंक रही थी और कुछ बादलो के छोर स्वर्णिम तथा अरुणिम हो गये थे। और दायी ओर था 'साहित्यकार संसद' का प्राचीर।

मै और सुश्री केम्प धीरे-धीरे आगे चलने लगे और किनारे पर उस स्थान पर आकर खडे हो गये, जहाँ गगा की लहरें हमसे लगभग एक फिट की दूरी पर होगी। मैंने गगा के विशाल वक्षस्थल पर तैरती हुई विभिन्न नावो की ओर सकेत कर कहा, "ये समान ढोने की बडी नाव है, यह पालदार नाव है, ये छोटी डोगियाँ हैं, और वह दूर बालू के तट पर कुछ लोग मछली पकड रहे हैं।"

"ऊँ हूँ! और यह क्या है?" गगा तट पर एक देवालय की ओर संकेत कर उन्होने पूछा।

"यह मन्दिर है—राधाकृष्ण का मन्दिर। कृष्ण का नाम तो आपने सुना होगा?"

"ऊँ हूँ।"

"और राधा? जानती हैं राधा कौन थी।'

"नही।"

"राधा थी कृष्ण की प्रेमिका। वैसे तो कृष्ण सुन्दर थे, कलाकार थे, उनको प्रेम करने वाली बहुत थी, पर जिसे वे भी प्रेम करते थे वह थी राधा। राधा से उन्होंने विवाह नही किया था। राधा उनकी प्रेमिका थी। आदर्श प्रेम का भारतीय conception राधा-कृष्ण-प्रेम-कथा मे ही निहित है।" हम ये बातें करते-करते किनारे-किनारे दायी ओर ससद् के मार्ग पर आये। मेरे पैर अपने आप ही उस ओर मुड गये। ऊपर चढ कर हम ससद् के महादेवी जी वाले plot पर आये। सुश्री केम्प ने उस plot से लगे हुए मन्दिर की ओर संकेत कर पूछा, "यह भी मन्दिर है?"

"हाँ, यह शिव का मन्दिर है। पुजारी बैठा हुआ कथा बाँच रहा है। आज पूर्णिमा है न! यही इसकी जीविका का साधन है। गाँवो मे एक नही बहुत से आदमी इन धार्मिक तिथियो सम्बन्धी कथा कह कर अपना पेट पालते हैं।"

"यह कथा क्या है ?"

"पुराण की कोई कहानी, कि हमारे ancestors ने इस तिथि पर ऐसा किया था बस, यही।" अब हम महादेवी वाले plot के कोण पर आ खड़े हुए थे। यह तो आप भी जानते हैं कि पहले तो संसद् की भूमि का यह polt सबसे अच्छा भाग है और फिर कोना उस plot का सबसे अच्छा भाग। इस कोने पर खड़े होकर गंगा की छवि, सूर्यास्त की शोभा और चारों ओर का सब कुछ, एक अद्भुत सौंदर्य से भरा लगता है। मैंने क्षितिज की ओर संकेत कर सुश्री केम्प से रूसी भाषा में ही कहा, "कैसा सुन्दर दृश्य है।" और सुश्री केम्प ने रूसी में ही उत्तर दिया, "बहुत !"

फिर इंगलिश में कहने लगी, "यह तो प्राकृतिक सौंदर्य है, पर इतना ही सौंदर्य वहाँ भी होता है जहाँ श्रमिक मिलकर उत्पादन का कार्य करते हैं।"

"हाँ, क्यों नहीं।"

छोटी-छोटी नन्ही नन्ही बूँदें पड़ने लगीं। सामने एक boat किनारे पर आ लगी थी। मैंने पूछा, "Boating के लिए चलियेगा।"

"देखो गहरी घटा घिर रही है, और कुछ देर भी हो रही है। आज चाँदनी भी तो नहीं खिलेगी। देखो न, कितने गहरे बादल घिरे हुए हैं। फिर किसी दिन आयेंगे।" बात करते ही बूँदें घनी हो गईं। सुश्री केम्प ने अपना छाता खोल लिया और मुझ से बोली, "छाया में आ जाओ।"

"नन्हीं-नन्ही बूँदों में मुझे भीगना अच्छा लगता है।" मैंने कहा।

"लगता तो मुझे भी बहुत अच्छा है, पर यह घर के आँगन में ही हो सकता है, बाहर मुझे लोग इस तरह भीगता देख ले तो हँसे न ?" मैं हँस पड़ा। हम ऊपर संसद् भवन की ओर चल दिये। रास्ते में मैंने 'कमल जलाशय' दिखाया, फिर हम ऊपर आये। संसद् भवन के द्वार के दोनों ओर बीसियों गमले रखे थे। मैंने उनकी ओर संकेत कर कहा, "ये विभिन्न प्रकार के फूल पौधे हैं—लौंग, इलायची, पान तथा सुपारी इत्यादि के पेड़! श्रीमती वर्मा इन्हें Globe Nursery Calcutta से लाई थीं।"

"तो तुम मुझे कहाँ ले आये ?" सुश्री केम्प ने चौंक कर पूछा।

यही वह स्थान है जिसके लिए मैं कहा करता था, साहित्यकार संसद्–यह संस्था साहित्यिकों को सभी प्रकार की उचित सुविधा देने के लिए है।

"अच्छा"

इतने में निराला जी का पौरुष स्वर कान में पड़ा और द्वार की ओर संकेत कर उन्होंने कहा, "इस ओर से अन्दर आ जाइयेगा।" हम अन्दर चले गये। निराला जी

बैठने के लिए कुर्सी की व्यवस्था करने लगे, क्योंकि वे सोच रहे थे सुश्री केम्प को फर्श पर बैठने मे कठिनाई होगी और विशेष कर इसलिए कि आज उन्होने फ्राक की तरह कोई चीज पहन रखी थी। मैंने कहा, "हम नीचे ही बैठेंगे।" और सुश्री केम्प को भी इसमे कोई आपत्ति नही थी। अन्दर सुन्दर Persian carpet और काश्मीरी कालीन बिछा हुआ था, और उसी कमरे के एक भाग मे निराला जी का पलग बिछा था। हम नीचे फर्श पर बैठ गए। नौकर ने बिजली जला दी। सभी रग उस प्रकाश मे चमक उठे। निराला जी हमारे सामने बैठे थे—विशाल, स्थूलकाय महन्त की तरह, अपने भव्य व्यक्तित्व की किरणें बखेरते हुये एक शात गम्भीर, लघुकाय हिमाचल की भाँति स्थित मुद्रा मे। उनके तेजस्वी चमकीले विशाल नेत्रो की स्थिति अब भी बता रही थी कि वह कोई महान् कलाकार हैं। निराला जी प्रतीत हो रहे थे उस विशाल चट्टान की भाँति जिसने निरन्तर लहरो के थपेडो की उपेक्षा की हो, ऊपर से सदा की भाँति स्थित और अटल, चाहे वह अन्दर से चूर-चूर हो गई हो। उन्होने केवल एक अगोछा ही पहन रखा था। कदाचित् ही कभी इस ओर उनका ध्यान जाता हो। शरीर की व्यवस्था तथा प्रसाधन का भाव हो जैसे अब उनमे नही जगता। पर यह और भी आश्चर्य की बात है कि वे इस अव्यवस्था मे भी सुन्दर लगते है। मैंने सुश्री केम्प से कहा, "ये महाकवि निराला जी हैं हमारे साहित्य की विभूति।"

'जिस हिन्दी कवि का नाम मैंने सबसे पहले सुना था और जिसकी कविताओं का अग्रेजी अनुवाद मैंने सबसे पहली बार पढा उस कवि से मिलकर मुझे अतीव प्रसन्नता हुई", सुश्री केम्प ने कहा।

"हम असभ्य, असस्कृत, जगली, नगे बदन, नगे पाँव हमसे मिल कर भी किसी को प्रसन्नता हो सकती है," निराला जी बोले। मैंने निराला जी को बताया कि सुश्री केम्प हिन्दी पूर्णतया नही समझती। सुश्री केम्प को मैंने निराला जी की बात का अनुवाद कर दिया तो वे तुरन्त बोली, "No, not so It all looks beautiful" 'What is beautiful in India is the nakedness" निराला जी ने कहा। निराला जी की अब तक बातें बिल्कुल एक स्वस्थ मनुष्य की बातें थी, उस मनुष्य की जिसका मन मस्तिष्क शरीर तीनो ही स्वस्थ हैं। मैं अपने मन मे बार बार यही दोहराता रहा What is beautiful in India, is the nakedness भारत की गरीबी और गरीब जनता की अर्द्धनग्नता पर इससे सुन्दर नही कहा जा सकता था।

यह बात सब इतनी जल्दी हो गई थी कि मैं सुश्री केम्प का परिचय देना ही भूल गया था। मैंने निराला जी से कहा,

"ये मिस पी० एम० केम्प हैं। इलाहाबाद यूनीवर्सिटी में रूसी भाषा की अध्यापिका हैं। जन्म से युगोस्लाव हैं, नागरिकता से इगलिश और कर्म से भारतीय।"

निराला जी बोले, "मैं भी एक बार रूस गया था। मास्को मे वहाँ के विद्वानों

के मध्य अपनी कविता पढी थी। चार बार इगलैंड जा चुका हूँ।" इसी प्रकार निराला जी बहुत देर तक बोलते रहे। उन्होने जो कहा उसका सार इस प्रकार है।

"गीताजलि आपने पढी होगी। वह मैंने ही लिखी थी। वह मेरी Premature attempt थी। पर रवीन्द्र नाथ के नाम के नीचे छपी थी। हमारे हजारो अग्रेजी मे, बगला मे works हैं। उन सब पर नाम और फोटो जाता था रवीन्द्रनाथ टैगोर का, पर वे हैं मेरे ही।

शेली और कीट्स मे शेली का नाम भी आपने सुना होगा। शेली भारतीय नाम है। वे हमारी कवितायें हैं, जब मैं दो वर्ष का बच्चा था।

हमारी लाखो करोडो रुपए की सम्पत्ति है और करोडो रुपए का व्यापार है और इसका अधिकाश भाग विदेशो म है। इस इलाहाबाद मे हमारे आठ दस बँगले है। यह बँगला भी हमारा ही है। जहाँ महादेवी जी रहती हैं वह भी हमारा बँगला है।"

ये सब पागलपन की बातें निराला जी गम्भीर भाव से ही कर रहे थे। कोई उनके चेहरे के भावो से तथा उनके बातचीत के ढग से यह नही कह सकता था कि इस व्यक्ति के मस्तिष्क की वर्णनिधि उलट गई है, क्योकि मैंने देखा वे सुश्री केम्प से यह तक बता रहे थे कि दर्रे दानियाल मे होकर वे कैसे मास्को पहुँचे।

अपने इस पागलपन के बीच वे कभी-कभी ऊँची-ऊँची बातें भी कर जाते हैं। एक जगह जब वे रवीन्द्रनाथ, शेली और अपनी बात कर रहे थे तो बोले, "There is no difference between man and man What makes him superior or inferior is the manifestation of his genius

I have read Aristotle, Ploto, Kant and Hegel and I have the spirit of Vivekanand in me

English is foreign language I can not speak in English. I do not speak in English I fail to speak in English"

इस प्रकार पौन घण्टे तक निराला जी धारा-प्रवाह अग्रेजी बोलते रहे। सुश्री केम्प अधिकतर सुनती ही रहीं। निराला जी बोले, "मैं आपका किस तरह स्वागत करूँ। यहाँ तो इस समय कुछ है नहीं। मैं एक दिन आपको आने यहाँ निमन्त्रित करूँगा। आप बताइये किस केम्प आप अग्रेजी खाना पसन्द करेंगी या भारतीय ?"

"भारतीय।" सुश्री केम्प ने कहा।

मैंने इस समय निराला जी से कहा, "आप अपना कोई गीत सुनाइये।" निराला जी मुस्कराये—जैसे पूर्व में नव प्रभात सिहर उठा हो। निराला जी अब कम हँसते हैं और मुस्कराते भी नहीं, पर उनकी मुस्कान उनके चेहरे की निश्छल रेखाओ मे

दिव्याभा का फूल सा खिला देती है । वह मुस्कान एक पल भर की थी। लहर की तरह आकर विलीन हो गई और अपनी एक करुण छाया छोड़ गई। निराला जी ने आलाप लेकर अपने गीत के स्वर उठायें "तुमने करुणा की किरणों से........" एकदम वातावरण सजीव हो गठा। अपनी मधुर वाणी से बंधे हुयें स्वर मे निराला जी अपनी काव्य-कला को सगीत से बांधते रहे। कुछ ही क्षणों मे ऐसा लगने लगा जैसे वातावरण मे करुणा की धारा प्रवाहित हो उठी हो। हम मन्त्र-मुग्ध की तरह देखते ही रहे, सुनते रहे। गीत समाप्त हुआ जैसे जादू का रेशमी धागा टूट गया हो। आत्म-विभोर निस्तब्धता के बीच निराला जी बोले,

"Do you like Indian music ?"

"Yes, I like it very much "

"Then let me sing you an Indian song "

निराला जी ने कहा और उन्होने पक्के राग मे रामायण का वह मगलाचरण आरम्भ किया "रामचन्द्र कृपालु भज मन " पन्द्रह मिनट तक हम उनकी राग-मूर्च्छना मे डूबते उतरात रहे। फिर गीत समाप्त हुआ जैसे कि मायावी ने अपना मोह जाल खीच लिया हो। उस निस्तब्धता के बीच हम उठे, घर चलने के लिये। बाहर घोर अन्धकार था। हल्की-हल्की बूंदे पड रही थी। टार्च किसी के पास नहीं थी। मैं सुश्री केम्प का हाथ पकड कर आगे उस अन्धकार के समुद्र को पार करता हुआ चला। निराला जी कहने लगे, 'मैं आगे चलूंगा।" मैंने उन्हें बहुत समझाया, "नही आप यहीं रहिए। हम ठीक चले जायेंगे," पर वे माने नही। साथ-साथ आते रहे। सीढियाँ पार कर हम गगा तट पर आ गए। दो मिनट वहाँ हम रुके, अन्धकार वारिधि के बीच दुग्ध धवल गगा हर-हर स्वर से बही जा रही थी। वहाँ का सब कुछ ही रहस्यमय-सा लग रहा था। उस वातावरण मे विदा के समय महादेवी जी के अभाव का अनुभव हमने किया।

हम ताँगे मे बैठकर चल दिये। निराला दो पल खडे हमे देखते रहे फिर वह स्थूल-काय अर्द्धनग्न शरीर धीरे-धीरे अधकार मे खो गया।

बादलो के पीछे से आने वाली चाँद की हल्की छाया के नीचे सुनसान लम्बी रहस्यमयी-सी सडक की छाती पर घोडो के पैरों की आवाज करुण स्वर-सा जगाने लगी। चारों ओर ऐसा लगा जैसे एक प्रकार की melancholy घुल गई हो। यह बाहर की थी या अपने मन की और प्राणो की, निश्चय करना कठिन है।

सुश्री केंप निराला जी के विषय मे कहने लगी, 'He is a very handsome poet, kind hearted and hospitable But he talks sometimes all sorts of cynical things " मैंने समझाया कि निराला जी की मस्तिष्क की वर्ण-निधि में अव्यवस्था आ गई है। यह उनके मन पर हुए अमित प्रहारो का प्रभाव है। आप

मनोवैज्ञानिक आधार पर बताइये निराला जी ऐसी बातें क्यो करते हैं ? इस पर सुश्री कैंप कहने लगी, "शैली और कीट्स अपने युग मे सबसे अधिक घृणित व्यक्ति समझे जाते थे। उन्हें कोई सम्मान नही मिला। निराला जी के साथ भी कदाचित् ऐसी ही बात है, इसीलिये शैली और कीट्स की बातें करते हैं। और, रवीन्द्र नाथ टैगोर का सा सम्मान पाने की भूख कही इनके unconscious plane मे है, इसीलिये ये टैगोर की बातें करते हैं और कहते हैं कि मैंने ही सब कुछ लिखा है। धन की भी ऐसी ही भूख उनके unconscious plane मे रह गई है और साथ ही उन्होंने इतना दर्शन पढा है, उसमे उलझ जाने से कही उनके मस्तिष्क मे व्यक्तित्वो के पारस्परिक मिश्रण की बात है। इसी से वे कहते हैं शैली मैं ही था और रवीन्द्रनाथ भी मैं ही था।

There lingers in his mind an idea of intermingling of personalities"

"इस जीवन के विषय मे कुछ कहा नही जा सकता, आज हम क्या हैं, पता नही हम कल क्या हो जायें," मैंने कहा।

"हाँ, यह ठीक ही है, नागर, मेरी उम्र अभी चालीस की भी नही है, पर मेरे तीन प्रकार के जीवन रहे हैं।"

"एक साथ ?"

"नही एक-एक करक। किसी दिन बताऊँगी।'

"आप अपने सस्मरण क्यो नही लिखती ?'

"वह तो मुझसे नही हो सकेगा।" उदास और गम्भीर होकर सुश्री केम्प ने कहा और फिर बोली, "नागर ! तुम पूरे भारतवर्ष मे घूमे हो।"

'घूमा तो मैं बहुत हूँ, पर पूरी यू० पी० ही घूमा हूँ अभी। पहाड मैं गया हूँ—मसूरी, नैनीताल। पैदल घूमने का ही मुझे शौक था।"

"नागर, मैं बहुत घूमी हूँ। यह कदाचित् इसी का प्रभाव है कि मैं पैदा ही Train मे हुई थी।" इस पर सुश्री कैंप को हँसी आ गई। फिर बोली,

"मेरी माँ लकाशायर मे यात्रा कर रही थी, तभी मेरा जन्म हुआ। अब भी मेरी ambition घूमने सम्बन्धी ही है। अब तो तुम मेरे भाई हो, इसकी पूर्ति मे मेरी सहायता तुम्हें करनी ही होगी।"

"क्यों नही, सभी तरह। मैं तो सदैव तत्पर हूँ, पर आपकी ambition है क्या।"

"मैं एक बार Arctic जाना चाहती हूँ।"

"क्यों ?"

'Only to see the effect of snow and sky"

"लगता है आप चली जायेंगी।"

तांगा मेरे कमरे के सामने आकर रुक गया। सुश्री केम्प उतर कर कमरे मे आई। कमरे मे रखी हुई चीजो मे उन्हे table lamp पसन्द आया। मैंने एक प्रति 'निराधार' की उन्हे दी। कमरे को देख कर कहने लगीं,

"You are just living as students live in foreign countries in small and sturdy rooms I also used to live in such a room when I was of your age"

मैं उन्हे पहुँचाने घर गया। घर पर एक दो मिनट निराला जी के सम्बन्ध मे बात करते हुये बताने लगी, इस प्रकार इग्लैंड मे भी बहुत से कवि पागल हो चुके हैं, Clare, Smart, William Blake और Gray में भी कुछ-कुछ ऐसा ही था।

"जीवन की abnormal परिस्थितियो मे रहकर ही ये ऐसे हो जाते हैं," मैंने कहा। अब 9॥ बजने वाले थे। मैं विदा लेने लगा तो बोली, "अच्छा नागर, मुझे तुम्हारे साथ बाहर घूमने जाना अच्छा ही लगता है, पर आगे से तुम्हे एक वायदा करना पड़ेगा।"

मैंने कहा "क्या ?"

"कि तांगे वाले को तुम pay नही करोगे।"

"अच्छा चलिये, वायदा हो गया, बस।"

"हाँ, तुम यह क्यो भूल जाते हो, आखिर मैं तुम्हारी बडी बहिन हूँ।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र

67

30 ए, बेली रोड

इलाहाबाद

10/10/48

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका 27/9 का पत्र मिला। उत्तर प्रति दिन प्रयत्न करने पर भी नही दे पाया। 5 ता० को सुश्री केम्प देहली गई हैं। वहाँ वे रूसी राजदूत से मिलेंगी। उनसे उन्हे अपने यहाँ के Russian Association के अतर्गत कुछ सास्कृतिक विनिमय के विषय मैं बातचीत करनी है। उसमे पहले कई दिन तक उनकी तैयारी चलती रही। चारो ओर से चीजें इकट्ठी की। काम इतना था कि वे तीन ता० को दिल्ली जाने वाली थीं और पांच को जा सकी। परिस्थितियों मे ही इतना उलझा रहना पड़ा कि कितने ही आवश्यक कार्य अब भी नही हो पाये। तार मैंने इसीलिये दिया था कि आप यहाँ आ जायें। छुट्टियो मे यहाँ कुछ दिन रहें। अच्छा लगेगा।

दूसरी विशेष बात यह थी कि कलाकार परिषद के अन्तर्गत जिसका उद्घाटन श्री पंत जी द्वारा हो चुका है, हम एक कवि गोष्ठी रख रहे थे और यह निश्चय हुआ था कि वह आप के सभापतित्व मे हो। आठ ता० की प्रभात मे कटनी जाती हुई श्री शकुन्तला सिरोठिया जी यहाँ दुबे जी की अतिथि बनी थी। श्रीमती शान्ति एम० ए० ने भी आने की स्वीकृति दे दी थी। इन परिस्थितियो मे ही मैंने तार दे दिया था। अब आप जब कभी भी आइयेगा तो आपको इस परिषद मे बोलना है। आपके लिये विषय रखा गया है "कला और कलाकार।" आशा है आप विषय के लिये अपनी स्वीकृति दे देंगे। परिषद की शाखायें प्रत्येक नगर मे जहाँ अपने मित्र हैं डालने का विचार है।

पिछले दिनो महादेवी जी का स्वास्थ्य गिर गया था। वे कुछ बीमार भी थी। अब ठीक हैं।

बच्चो के नामकरण के विषय मे मैंने महादेवी जी से पूछा था तो हँसकर कहने लगी, "किसी को भी बिना देखे तो नामकरण नहीं होता भाई।" फिर थोडी देर रुक कर बोली, "नाम तो 'साधना' भी अच्छा है।"

"नन्ही सी बालिका के लिये 'साधना' नाम बहुत भारी लगता है" मैंने कहा।

"हमेशा तो वह वैसी नही रहेगी, बडी होने पर उसे यह नाम बहुत अच्छा लगेगा।"

आजकल महादेवी जी बाढ पीडितों की सहायता मे प्रयत्नशील हैं। जब बाढ आई और रसूलाबाद तथा आसपास के सैंकडो आदमियो के घर बार बह गये, तो बहुत से बेघर-बार पीडितो के लिये उन्होंने साहित्यकार ससद् भवन खुलवा दिया था। उसमे वे लोग कुछ दिन रहे।

मैंने महादेवी जी से ससद् के उद्घाटन के लिये पूछा, तो कहने लगी "वास्तव मे तो हमारा उद्घाटन हो गया।"

"कैसे ?" मैंने पूछा। कहने लगी, "यह सस्था तो गरीब पीडित लेखको की है। यदि इस स्थानों पर चार पीडित व्यक्ति मिल बैठे तो उसका वहाँ उद्घाटन हो गया। इसीलिये मैं तो जब इसमे बहुत से बाढ पीडित बेघर-बार व्यक्ति रहने लगे, उसे ही उद्घाटन समझती हूँ।" मैं जल्दी ही उठ खडा हुआ। वे बरामदे मे चली आयीं। मैंने उदास भाव से कहा :

"यह सभी के लिये दुःख की बात है कि आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता।"

"अब तो यह शरीर सचमुच ही व्याधि-मन्दिर हो गया है। अपने मे बाहर कोई चीज होनी तो उनके द्वार पर फेंक आते और यह कह आते 'कि लो यह रक्खो अपनी धरोहर।' पर अब तो ऐसे ही चलना पड रहा है जैसे वे चला रहे हैं। अब तो कभी-

कभी हमारा मन सचमुच रोने को करता है, पर जहाँ पीड़ा मे आदमी रोते हैं वहाँ हम हंसते हैं।" मैं प्रस्तर मूर्ति की तरह खड़ा सुनता रहा।

सुश्री केम्प यदि लखनऊ आई, तो आप से मिलेंगी।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र

68

30 ए, वेली रोड
इलाहाबाद
5/11/48

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका 4/11 का पत्र मिला।

पिछले सप्ताह जीवन इतनी गति से बढ़ा है कि मैं प्रयत्न करने पर भी उसे नही पकड़ सका। कभी शांति और अवकाश के समय उन पलो को बाँधूंगा।

मैं दिल्ली गया था—सुश्री केम्प को लन्दन के लिये विदा करने के लिये। यह आँसुओ भरी विदा भी भुलाई नही जा सकेगी। अब वे चली गईं। जाने वाले का क्या भरोसा लौटे या न लौटे। यहाँ प्रयाग मे स्नेह के दो केन्द्रो के बीच जीवन चल रहा था। एक केन्द्र अब नही रहा।

मन भरा-भरा है, और जीवन चारो ओर से इतना बँधा हुआ कि आपको सब कुछ लिख कर ही अपने मन को हल्का कर सकूंगा। इस समय तो इतना ही कहूँगा: यह महिला अद्भुत है—एकदम अद्भुत! इसके जीवन की एक कहानी है, उस कहानी के चारो ओर एक रहस्य है और उस रहस्य का सार इतना ही है कि भारत में वे प्रेम के लिये आई थी और प्रेम के लिये ही उन्होंने भारत छोड़ दिया।

शेष मिलने पर।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र

69

30 ए, वेली रोड
प्रयाग
22/12/48

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका 20/12 का पत्र आज मिला।

आपने इस पत्र मे सुख दुःख की बात उठाई है। जिस व्यक्ति ने जीवन मे बहुत सुख उठाया हो और बहुत दुःख भी तो फिर उस व्यक्ति की अनुभूति के तन्तु दोनो से

इतने परिचित हो जाते है कि सुख-सुख सा नही लगता और दु ख-दु ख सा।

सुख लौटेगा क्यो नही ? अवश्य लौटेगा। कलाकार का कोई भी पल व्यर्थ नही जाता। रात्रि में सोने पर जब वह प्रभात मे उठता है तो वह नही होता जो सोने से पहले था। अपने पिछले चार वर्षों को एक दु स्वप्न की तरह भूल जाइएगा। प्रकृति मे हम देखते हैं कि जब कभी जितनी गहरी शून्यता और घुटन घिरी रहती है, उतनी ही जोर की आँधी आती है। एक बडा दु ख, एक कलाकार के लिये, एक बडे ही सुख की भूमिका है, इसके अतिरिक्त और कुछ नही।

उत्साह का तुन्त टूटा कही नही, खो गया है या यों कहूँ कि मन पर पडे आघात ने ढक लिया है, पर समय मन के घाव को भर देता है। हाँ, यह मैं मानता हूँ उसका चिन्ह जीवन भर नही मिटता।

डा० रमेश का सब कुछ मेरे पास है। यहाँ रहकर उन्होने कहानियो मे सशोधन किया था। फिर सब चलती बार मुझे सौंप गए।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

70

30 ए, बेली रोड

प्रयाग

28/12/48

आदरणीय 'मानव' जी,

25/12 का आपका पत्र मिला।

23/12 की प्रभात मे मैं 'श्री राहुल' जी से मिला था। आपकी एक 'अवसाद' एक 'निराधार' तथा एक 'खडी बोली के गौरव ग्रन्थ' उन्हे दे आया था। 'रहस्य साधना' की तो एक भी प्रति शेष नही। राहुल जी आपको धन्यवाद भेजते हैं।

राहुल जी जरा विशालकाय है। इस व्यक्ति ने महान् साहित्यिक श्रम किया है इसमे कोई सदेह नही और परिश्रम किसी का भी व्यर्थ नही जाता। आज के साहित्यिकों मे यह एक ऐसा साहित्यिक है जिसने सबमे अधिक लिखा है। पर सब कुछ देखते हुए यही कहा जा सकता है कि ये एक महान् लेखक तो हैं, पर महान् कलाकार नही।

कांति जी आयेंगी। उनके हाथ 20 महादेवी की 'रहस्य-साधना', 10 खडी बोली के गौरव-ग्रन्थ, 5 निराधार, 5 अवसाद भेज दीजियेगा।

लौकिक सफलता तो केवल अवसर की बात है, पर जो साहित्य-साधना निष्काम पूजा-भावना से करते हैं, उनकी साधना निष्फल नही जाती, ऐसी मेरी धारणा है।

यह माना कि किसी को यह सफलता जीवन मे ही मिल जाती है और किसी को मृत्यु के उपरान्त और यह भी माना कि मृत्यु के उपरान्त वाली सफलता का उस व्यक्ति के लिए कोई मूल्य नही, पर साधक कलाकार मूल्य की अपेक्षा नही रखता। हीरा हो सकता है वर्षों तक अन्धकार के गर्भ मे पड़ा रहे, पर किसी दिन उसकी किरणें अवश्य किसी की दृष्टि आकर्षित कर लेती है, और जब जौहरी उसे परख कर हीरे की संज्ञा दे देता है तो उस दिन से उसकी कोई भी उपेक्षा करने का साहस तक नही करता।

ससार मे रहकर ससार के सामयिक मान दडो के अनुसार चलना पड़ता है। यदि शाश्वत मान दड समय से पीछे रह गए हैं और जीवन मे उनका कोई उपयोग नही रह गया, तो उन्हे फेंक देना चाहिये, उसी तरह जिस प्रकार पुजारी अगले दिन प्रभात मे देवता के चरणो मे मुरझाये फूल फेंक देता है। आप अपने जीवन-देवता स रूठे हुये है, तभी तो उसके नित नवीन शृंगार मे रस नही लेते। पर सच पूछिये तो आपको रस लेना होगा, अपने लिये नही तो दूसरो के लिए।

उचित-अनुचित, न्याय अन्याय, पाप पुण्य का Conception कभी शाश्वत नही होता। ये सभी सापेक्ष वस्तुयें हैं। एक ही बात जो एक स्थान पर पाप है, दूसरे पर पुण्य समझी जा सकती है। मेरे लिये तो केवल नैतिकता का इतना ही Conception है कि जिसने कभी हमारे मन को ठेस नही पहुँचायी, उसके मन को कभी ठेस, व्यथा या पीड़ा नही पहुँचानी चाहिए, और हमारा जो कार्य समाज के लिये अहितकर है, वह पाप है।

थीसिस के कार्य पर आपने ध्यान ही नही दिया, इसीलिए रह गई, पर मैं समझता हूँ अब भी कुछ बिगड़ा नही। यह काम तो हो ही जाना चाहिए।

जब जीवन म क्रियाशीलता आती है तो सब कामो के लिये मन करता है और निष्क्रियता मे डूबा मन कुछ भी नही कर पाता, मस्तिष्क कुछ भी नहीं सोच पाता, जीवन निष्प्राण सा हो जाता है। अब निष्क्रियता के चार वर्ष समाप्त हो गए समझिये। आप नवीन रूप से जीवन प्रारम्भ करने की बात क्यो नही सोचते?

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

71

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
2 / 2 / 49

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका पत्र तथा डा० देवराज जी की पुस्तक 'जीवन-रश्मि' दोनो ही मिले, पर मुझे बड़ा ही सकोच है कि मैं बहुत दिनो से आपको पत्र नही लिख सका।

कलाकार तो सदा से मानव-समाज मे नव-चेतना और नव-जीवन का संदेश वाहक रहा है। मैं नही समझता कि 'वादो' के वाद विवाद मे फंस कर वह कैसे पनप सकता है, चाहे वे 'वाद' राजनीति के हो अथवा साहित्य के। 'वाद' तो अन्धकार की सीमायें हैं और चेतना एक प्रकाश की भांति है। प्रकाश के लिये कोई अन्धकार की सीमा बंधन क्यो बने ? इसी प्रकार सदैव मेरा मन किसी भी प्रगतिशील आन्दोलन के साथ चलने को होता है, पर वह प्रगतिशील आन्दोलन यदि किसी विशेष पार्टी का है तो उसका सदस्य होना मुझे कभी नही भाया। इसीलिए मैं आज तक कई बार सोचने पर भी न तो समाजवादी और न साम्यवादी पार्टी मे ही अपना नाम लिखा सका। राजनीतिज्ञ तात्कालिक सत्य को लेकर चलता है और कलाकार चिरंतन सत्य को, फिर दोनो एक मे कैसे मिल सकते है ?

फ्रांस की क्रांति के द्रष्टा और जन-जन मे क्रांति-चेतना को प्रवाहित करने वाले वहाँ के कलाकार ही थे और उस क्रांति को मूर्त रूप देने वाले थे वहाँ के सैनिक और राजनीतिज्ञ।

एक तो वैदिक सूत्रो के निर्माण करने वाले ऋषि थे और दूसरे उन्ही वेदो की ऋचाओ का पाठ करके हवन करने वाले पुरोहित। उसी प्रकार का कलाकार और राजनीतिज्ञ का सम्बन्ध है। दोनो अपना-अपने स्थान पर महान् हैं।

× × ×

प्रयाग तो आप जानते ही हैं कि आज भी कला और साहित्य का केन्द्र है। यहाँ रहने से मुझे ऐसा लगने लगा है कि कम से कम एक साहित्यिक को तो यही रहना चाहिये। आपको संभव है लखनऊ सुन्दर लगता हो और सुन्दर है भी, पर वह सुन्दरता उन लहरो की तरह है जिनमें उषा और संध्या के सौ-सौ रंग झिलमिलाते रहते है पर अपने भीतर का वहाँ कुछ भी नही होता, और इस प्रयाग का सौंदर्य अजन्ता की गुफाओ का सा सौंदर्य है। मैं सोचता हूँ कि यदि आपके जीवन की साधना साहित्य है तो आपको प्रयाग मे ही अपना घर बनाना चाहिये। कुछ दिनो तक हो सकता है यहाँ किसी साहित्यिक को गलियो की धूल छाननी पड़े, पूंजीपतियो के शोषण का लक्ष्य बनना पड़े, पर फिर भी इसी शोषण के बीच जीवित रह कर यहाँ के अनेक साहित्यिक महान् बने है और यहाँ कि धूल ही ने अनेक मोतियों की आभा को और अधिक निखार दिया है।

महादेवी जी साहित्यकार संसद् के सम्बन्ध म मौलाना आजाद से मिलने दिल्ली गई हैं। इधर मैं यूनियन के चुनावो मे आवश्यकता से अधिक व्यस्त रहा, इसलिये उनसे भेंट नही हो पाई।

आप कभी यहाँ आइए न ? अब तो आपको प्रयाग आए काफी दिन हो गये।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

30 ए, वेली रोड
इलाहाबाद
1 / 3 / 49

आदरणीय 'मानव' जी,

मैं इधर यूनिवर्सिटी 'यूनियन की गतिविधि मे बहुत अधिक व्यस्त रहा, इसी से इस बीच कही भी कुछ नही लिख सका। उत्तर देने के लिये आपके कई पत्र हैं, पर फिर भी उन सबका उत्तर पहले इस पत्र को लिखे बिना नहीं दिया जा सकता।

राजनीति मे व्यक्ति का व्यक्तित्व दल के व्यक्तित्व में समाहित हो जाता है इसका अनुभव मुझे जीवन मे पहली बार अभी हुआ है। यहाँ मेरे एक मित्र श्री सुभाषचन्द्र कश्यप हैं। जहाँ तक प्रयाग विश्वविद्यालय यूनियन की राजनीति का सम्बन्ध है हम दोनो साथ-साथ रहे हैं। अब पिछले दिनो जो चुनाव हुए, तो सभापति पद के लिये मैं भी उम्मीदवार था और सुभाष भी। आरम्भ मे यह चुनाव लड़ने को मेरा विशेष मन नही था, पर फिर परिस्थितियो को अपने पक्ष मे मुड़ा हुआ देखकर मैंने सुभाष के सामने यह बात रख दी। अन्त मे मित्रो मे सर्वसम्मति से सुभाष का खड़ा होना ही निश्चय हुआ। मैंने अपना नाम वापिस ले लिया—बाह्य परिस्थितियो के कारण नही, बल्कि अपनी आन्तरिक नैतिकता के आवेश मे। लोग कहते हैं कि राजनीति तो केवल अवसर का खेल है, उसमे नैतिकता के लिये स्थान कहाँ ! पर मैं ऐसा नही मानता। मैंने अपनी सारी शक्ति सुभाष के पक्ष मे लगा दी। हम विजयी हो गये। सुभाष के विजयी होने से मुझे उतनी ही प्रसन्नता हुई, जितनी शायद मुझे अपने विजयी होने पर होती।

प्रत्येक नए चुनाव के उपरान्त, नए सभापति के सभापतित्व मे यूनियन का उद्घाटन होता आया है। सुभाष के सभापति होने के उपरान्त, एक दिन हम कई मित्र सभापति के कक्ष मे मिले। निश्चय यह करना था कि इस बार यूनियन का उद्घाटन कौन करे, अत अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार लोगो के नाम रखे जैसे यदि कोई समाजवादी था तो उसने जयप्रकाश नारायण और अरुणा आसफ अली के और यदि कोई कांग्रेसी था तो उसने कुछ कांग्रेसी नेताओ के, जिनमे श्री अबुल कलाम आजाद के लिए लोगो का विशेष सुझाव रहा। मैं चुपचाप बैठा रहा। सुभाष ने मुझसे पूछा—

"तुम क्यो चुप हो, बताओ न अगर तुम किसी को ठीक समझते हो तो ?"

मैने कहा, 'मैं तो यही सोचता था कि अबकी बार यूनियन का उद्घाटन किसी साहित्यिक द्वारा होता, तो अच्छा था।"

"तो कोई नाम बताओ न !"

"महादेवी वर्मा यदि स्वीकार कर लें तो बहुत ही अच्छा हो।" उस दिन बात

यही समाप्त हो गई थी। इसके बाद एक दिन सध्या को सुभाष के साथ घूमते-घूमते बात हुई। उन्होने मेरी बात मान ली। पर अब महादेवी जी के मानने का प्रश्न था।

मैं यह जानता था कि महादेवी जी कहीं बाहर सभा-सोसाइटियो में नही जाती, अत उन्हें यूनियन मे लाना सहज काम नहीं।

एक दिन सध्या को मैं और सुभाष महादेवी जी से मिलने गये। मिलने पर उसने यूनियन का उद्घाटन करने की प्रार्थना की गई। सुनकर बाली, "मैं तो कहीं आनी जाती नही, पत जी (सुमित्रानन्दन पत) यह काम कर देंगे।"

"वे भी अत्यत उपयुक्त व्यक्ति हैं, पर इस समय तो हम आपसे चाहते हैं। अब तक यूनियन का उद्घाटन डा झा को छोडकर राजनीतिज्ञो द्वारा ही होता आया है। हो सकता है परतत्र देश में राजनीति तथा राजनीतिज्ञो का प्रमुख स्थान रहा हो, पर स्वतत्र देश मे तो वह स्थान साहित्यिक का होना चाहिए। इस वर्ष से, हम राजनीति के रंग में रगे हुई यूनियन को साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियो मे भरना चाहते हैं। अत आप हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ही लीजिए।' महादेवी जी सुनकर हँस पडी। मैंने बात फिर आगे बढा दी, "जो दिन तथा समय आपको ठीक पडे, हम वही रख लेंगे, पर फरवरी के भीतर ही भीतर हम उद्घाटन कर देना चाहते हैं।"

अत मे महादेवी जी ने बात मान ली। मेरे लिए इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती थी?

कलाकार का जीवन असाधारण होने के कारण, उसको जानने के लिए जनता स्वाभाविक रूप से ही उत्सुक रहती है। फिर आप ही बताइये यदि कोई महान् कलाकार व्यक्ति के रूप में जनता स सदैव दूर रहा हो, तो उसके व्यक्तित्व के प्रति जनता मे कितना आकर्षक और कौतूहल होगा? सामान्य जनता के लिए तो महादेवी जी का जीवन, व्यक्तित्व और साहित्य सभी कुछ रहस्यमय रहा है। केवल इसीलिए उनको देखने के लिए, उनसे मिलने के लिए, लोग कितने उत्सुक रहते हैं इसे महादेवी जी नहीं जानती, मै जानता हूँ। ऐसी ही जनता की भीड प्रयाग विश्वविद्यालय में भी रहती है। उन सब को कितनी प्रसन्नता होगी इस विचार से, मुझे अपनी व्यक्तिगत प्रसन्नता मे ऐसी अनुभूति हुई कि जैसे उन सबकी सामूहिक प्रसन्नता मेरे मन की प्रसन्नता मे समा गई हो।

28 फरवरी को सध्या के 6 बजे, महादेवी जी द्वारा उद्घाटन करने की बात निश्चित हो गई।

परसों से ही मैं प्रबन्ध मे व्यस्त था। कल तो विशेष रूप से व्यस्त रहा। कल महादेवी जी द्वारा यूनियन का उद्घाटन करने की बात बिजली की तरह फैल गई।

दोपहर से ही मन ने चाहा जल्दी सन्ध्या हो तो अच्छा है। अन्त मे पाँच बजे।

सवा पाँच बजे मैं अपने एक मित्र की कार लेकर महादेवी जी को लेने पहुँच गया। महादेवी जी मिलीं तो लगा जैसे कुछ नाराज हैं। मुझे देखते ही बोलीं, "तुम लोग यह क्या गड़बड़ करते हो, अखबार में छपा है कि मेरे साथ यूनियन की कार्यकारिणी का फोटो होगा। मैं फोटो वोटो में सम्मिलित नहीं हो सकूँगी।"

"पत्र में देने से पहले यह फोटो की बात आपसे पहले पूछ लेना चाहिए थी, पर उसमें क्या बात है, मुश्किल से दो मिनट लगेंगे। हमारे यहाँ यह एक प्रथा सी है कि जो उद्घाटन करता है उसके साथ यूनियन की कार्यकारिणी फोटो खिंचवाती ही है।"

"मुझसे इस प्रथा का पालन नहीं होगा। आप लोग अधिक गड़बड़ करेंगे तो मैं यूनियन में भी नहीं जाऊँगी।"

मेरा मन धक से रह गया। एक क्षण के लिए मैं निस्तब्ध और निश्चेतन-सा खड़ा रहा। जैसे तैसे मैंने अपने को सँभाल कर कहा, "अच्छा! फोटो की बात रहने दीजिए। बाहर कार खड़ी है। मैं आपको लेने आया हूँ।"

"कार तुम ले जाओ। मैं अपने ताँगे से आऊँगी। तुम मुझे सवा छह बजे यूनिवर्सिटी कोर्ट की मीटिंग में से ले लेना। मैं तो वहाँ जाती भी न, पर आज तुम्हारे कुलपति का चुनाव है इसलिए अभी मैं तुरन्त वहीं जा रही हूँ।" मुझे लगा कि इस समय महादेवी जी शिवचन्द्र से बात नहीं कर रही थीं, बल्कि यूनियन के प्रतिनिधि बनकर आये हुए शिवचन्द्र नागर से बात कर रही थीं। यदि यह बात मेरे मन में न आई होती, तो उनकी कठोरता देखकर सचमुच मैं रो पड़ा होता। फिर भी खाली कार लेकर लौटना मुझे अच्छा नहीं लगा। सैकड़ों विद्यार्थियों की भीड़ प्रतीक्षा में खड़ी थी और मैं लज्जावनत अपराधी की तरह खाली कार लिए हुए लौट आया।

फोटो वाले को बुला तो लिया ही था, अतः फोटो तो खिंचवाना ही पड़ा। पर वास्तव में वह न खिंचने के बराबर ही था। छह बजते-बजते तो पूरा यूनियन हाल ठसाठस भर गया और बाहर के मैदान में भीड़ जमा होने लगी। सब मुझसे पूछने लगे, "अभी महादेवी जी नहीं आईं" और मैं उन्हें कुछ भी उत्तर न दे सका। छह बजे मैं फिर कार लेकर म्योर कालिज, जहाँ, यूनिवर्सिटी कोर्ट की मीटिंग हो रही थी, पहुँच गया। अभी थोड़ी देर पहले यहाँ कोर्ट की मीटिंग के सामने कुछ Students Federation के लोग घोर विरोधी प्रदर्शन कर चुके थे। इसी कोर्ट की मीटिंग विजयनगरम् हॉल में चारों ओर से द्वार बन्द करके हो रही थी। शीशों से झाँक-झूँक कर अन्त में मैंने पता लगाया कि महादेवी जी उस भीड़ में कहाँ बैठी हैं। बड़ी मुश्किल से एक चपरासी ने जरा सा दरवाजा खोला। महादेवी जी उसी ओर

हुए स्वर में बोला।

"चलिये !" और वे तुरन्त मेरे साथ उठ कर चल दीं।

सवा छह का समय हो गया था ! यूनियन के भीतर तो तिनका भर जगह थी ही नहीं और बाहर भी सैकड़ों विद्यार्थियों की भीड़ उत्सुकता से महादेवी जी की प्रतीक्षा कर रही थी। कार के रुकते ही, भीड़ ने चारों ओर से घेर लिया, महादेवी जी के दर्शन के लिए वह उमड़ पड़ी। भीड़ को हटाना बहुत कठिन था, फिर भी मैं तथा यूनियन की कार्यकारिणी के कुछ सदस्य भीड़ में से रास्ता बनाकर महादेवी जी को अन्दर 'कमेटी रूम' में ले गये। वहाँ चाय का प्रबन्ध था। चाय हुई। महादेवी जी को कार्यकारिणी के सदस्यों का परिचय दिया गया। अब तक मैं उदास था, पर अब मेरी प्रसन्नता का बाँध भी हँसी में टूट पड़ा। महादेवी जी बैठी थीं—चाय की ओर से बिल्कुल उदासीन। मैंने उनके सामने रक्खे हुए प्याले में चाय बनाते हुए कहा, "चाय पीजिये।"

"बाहर इतने विद्यार्थी खड़े हैं वे सभी तो यूनियन के सदस्य हैं न। उन सबको छोड़कर तुम थोड़े-से लोगों के साथ क्या चाय पियें ?"

"ये थोड़े से भी तो उन सब के ही भेजे हुए प्रतिनिधि हैं, और यह विशेषाधिकार तो उन्होंने इन्हें दिया ही है। डैमोक्रैसी में ऐसे ही होता है।"

"भाई खाने पीने के मामले में मुझे ऐसी डैमोक्रैसी पसन्द नहीं" महादेवी जी ने हँस कर कहा। मैं भी हँस पड़ा और बोला,

"आपकी बात तो ठीक है। फोटो खिंचवाने के विषय में आपकी बात मान ली गई; पर चाय के विषय में हम लोग नहीं मानेंगे।"

जैसे तैसे महादेवी जी ने एक प्याला चाय पी। फिर भी अपना असंतोष वे प्रकट करती रहीं; "जब कोई राजनीतिज्ञ आता है तो भी यही फोटो, चाय और फूल-मालायें चलती हैं। यदि हम भी सब कुछ वही स्वीकार करने लगें, तो फिर एक साहित्यिक और एक राजनीतिज्ञ में अन्तर ही क्या रह गया।"

बाहर भीड़ के धैर्य की सीमा का अन्त हो गया था, और अब वह चिल्लाने भी लगी थी। कुछ ही क्षणों में महादेवी जी के साथ हम लोग सभा-मंच पर पहुँच गये। करतलध्वनि से हाल दो मिनट तक बराबर गूँजता रहा। उस समय ऐसा ही लग रहा था जैसे इस भीड़ के महासमुद्र में प्रसन्नता, सम्मान और श्रद्धा का ज्वार आ गया हो और उस ज्वार की लहरें महादेवी जी जैसे महान् कलाकार के चरण स्पर्श करना चाहती हों।

कुछ लड़कियों द्वारा राष्ट्रीय-वन्दना के उपरान्त 'यूनियन' के सभापति श्री सुभाष

काश्यप ने महादेवी जी का स्वागत करते हुए तथा उन्हें अभिनन्दन-पत्र भेंट करते हुए कहा–

"इस यूनियन का इतिहास सभी दृष्टियों से बड़ा महान् और उज्जवल रहा है। विश्व बंधु बापू प० मदन मोहन मालवीय, प० जवाहर लाल नेहरू तथा कृपलानी जी जैसे अनेक उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ इस सभा-मंच से बोल चुके हैं। आज हमारे लिये सबसे अधिक प्रसन्नता की बात यह है कि उसी संस्था का उद्घाटन महादेवी जी जैसी महान् कला-साधिका द्वारा हो रहा है इस विश्व-विद्यालय के छात्रों की ओर से उनकी श्रद्धा के सुमनों के रूप में मैं यह अभिनन्दन पत्र भेंट करता हूँ।" यह कहकर श्री सुभाष ने अभिनन्दन पत्र पढ़ा—

'त्रिवेणी के तट पर बसे हुये प्रयाग विश्वविद्याल में काव्य, संगीत और चित्र-कला की त्रिवेणी रूप आज आपको अपने बीच पाकर हमारे आह्लाद की सीमा नहीं रही। हम हृदय से आज आप का अभिनन्दन करते हैं "

अंत में श्री सुभाष ने पढ़ा "जापान के कवि नागूची ने आपके लिए कहा था कि आप प्रयाग की गंगा हैं, पर हम उसमें इतना और जोड़ना चहाते हैं कि आप प्रयाग की गंगा ही नहीं, बल्कि, काव्य की गंगा, चित्र कला की यमुना और संगीत की अंत-सलिला सरस्वती से युक्त साक्षात् त्रिवेणी हैं और हमें लग रहा है कि आज हम आपके संपर्क से पावन हो गये हैं।"

महादेवी जी को फूल-मालाओं से लाद दिया गया था। उनको बिठाकर बीस मिनट से उन पर अभिनन्दनों की वर्षा हो रही थी। मैंने देखा, उनके गौरवर्णी मुख पर हल्की सी संकोच की अरुणिमा छा गई थी। वे सहमी जा रही थी, सकुचाई जा रही थी, कदाचित् अब अभिनन्दनों का बोझ उनके लिए असह्य हो गया। मैं उस समय यही सोच रहा था कि आज पता नहीं प्रयाग महिला-विद्यापीठ के एकांत शांत कोने में रहने वाली साहित्य-साधिका का इस अपार जनसमूह के बीच कैसा लग रहा होगा ? कहीं वे आज भी यही न सोच रही हों,

अश्रुमय कोमल कहाँ तू
आगई परदेशिनी री,

थोड़ी ही देर में खादी के वस्त्र परिधान किए वह चेतना-मूर्ति जिसके कंधों पर एक सुन्दर काश्मीरी श्वेत रंग का हल्का सा शाल पड़ा था, माइक के सामने भाषण देने के लिये खड़ी हो गई। सारे जन-समूह में शान्ति छा गई। महादेवी जी ने अपना भाषण प्रारम्भ किया—"बहनों तथा भाइयों !

आपके सौहार्द और अपनी अनेक स्मृतियों से घिरकर मुझे आज प्रसन्नता और विस्मय की वैसी ही मिश्रित अनुभूति हो रही है, जैसी किसी यात्री को एक दीर्घकाल के उपरान्त अचानक और अनजाने ही अपने घर के द्वार पर पहुँचकर होती है।

आपके समान ही इस विश्वविद्यालय की सीमा मे मेरे जीवन के आदर्श ढले है, संकल्प बने हैं और स्वप्नों ने रूपरेखा पाई है। इस नाते आप मुझे अपरिचित न लग कर छोटे भाई बहन जान पड़े, यह स्वाभाविक ही है।

जिस कार्य के लिये आपने मुझे आमन्त्रित किया है उसका पौरोहित्य तो कोई नवीन सन्देश देने का अधिकारी विशेष विज्ञ व्यक्ति ही कर सकता था। मैं तो जीवन की महान पुस्तक की वैसी ही जिज्ञासु विद्यार्थिनी हूँ जैसी एक युग पहले थी, अत आपने मुझसे जीवन के सम्बन्ध मे कोई तात्विक निर्णय पाने की आशा की होगी, तो आपको निराश ही होना पड़ेगा। किन्तु विद्यार्थी जीवन मे प्राप्त सम्बल मेरी अब तक की यात्रा मे कितना उपयोगी सिद्ध हुआ, आज मैं उसके महत्त्व को किस रूप मे स्वीकार करती हूँ और उस रूप का कितना मूल्य आँकती हूँ आदि प्रश्न स्वाभाविक ही हैं।

आप जानते ही है कि हमारे देश मे ज्ञान की परम्परा अत्यन्त भव्य और प्राचीन है। इस परम्परा को अविच्छिन्न रखने का श्रेय इस देश के तत्वदर्शी गुरु और साधक जिज्ञासुओं को ही दिया जा सकता है जिनकी पारदर्शी दृष्टि को गहनतम अन्धकार और दुर्लंघ्य बाधायें भी नहीं रोक सकी।

राजनीतिक जय-पराजय तो सयोग साध्य भी हो सकती है। इतिहास के आलोक मे हम अनेक बार अत्यन्त प्राचीन जातियो को किसी छोटी भूल के कारण परास्त होते देखते हैं। किन्तु किसी देश की सांस्कृतिक जय पराजय इस प्रकार सयोग पर निर्भर नही रहती, क्योंकि वह जीवन की एक विशेषता न होकर उसके बुद्धि, हृदय, आदर्श, आचरण, ज्ञानकर्म आदि का सम्पूर्ण परिष्कार-क्रम है।

सांस्कृतिक दृष्टि से तभी कोई जाति पराभूत *होती है जब उसके जीवन के मूल्य* गिर जाते हैं, मान भ्रामक हो जाते हैं और अतीत के सारतत्व के आधार पर नए निर्माण के उपकरण खोजने वाली जिज्ञासा समाप्त हो जाती है। कभी कभी राजनीतिक दृष्टि से पराजित जातियो की संस्कृति इतनी गम्भीर और अजस्र प्रवाहमयी होती है कि उसमे पराजय की क्लान्ति और जय का गर्व घुलकर एकरस हो जाता है।

जीवन की बाह्य व्यवस्था अथवा राजनीति तो वस्त्रों के समान पहनी उतारी जा सकती है। जिस प्रकार वस्त्र शरीर के नाप से काटे-छाँटे जाते हैं, उसी प्रकार शासन नीतियाँ भी जीवन के विकास की दृष्टि से बनाई जाती है और जीवन जाति-विशेष के संस्कार क्रम के साँचे मे ढाला जाता है। यदि एक पौधे के लिए आवश्यक जलवायु काटना-छाँटना आदि बाह्य उपचार हैं, तो दूसरा उसकी शाखा, उपशाखा, पल्लव आदि का विस्तार है जिसमे उसके जीवन-रस की अभिव्यक्ति होती है। जीवन रस के चुक जाने से सूखे पौधे के लिये बाह्य उपचार का प्रश्न ही व्यर्थ हो जाता है।

हमारे तत्वदर्शियो ने इस विकास श्रृंखला की हर कड़ी को भली भांति परख लिया था। अतः उन्होने प्रत्येक नवीन पीढ़ी को बुद्धि और हृदय की दृष्टि से स्वस्थ बनाने की क्रिया को सबसे अधिक महत्व दिया।

इस विशाल देश के पास ऐसी विराट संस्कृति है जिसमे ज्ञान के विभिन्न विचारो का, भाव की विविध अनुभूतियो का और कर्म के अनेक कर्त्तव्यो का समन्वयात्मक संघात है। कहने की आवश्यकता नही कि ऐसी संस्कृति तत्वतः समन्वयवादिनी होगी और समन्वय के लिये संकीर्णता घातक है। विचारगत संकीर्णता और हृदयगत अनुदारता एक ऐसी अस्वाभाविक स्थिति उत्पन्न कर देती है जिसमे तत्वतः किसी विषय की परीक्षा सम्भव नही रहती। ज्ञान मे बुद्धि की मुक्ति और भाव मे हृदय की मुक्ति सहज करने के लिए ही हमारे यहां जिज्ञासु ब्रह्मचारी को वर्ण और सम्प्रदाय की कठिन सीमा मे नही बांधा जाता था। वह जिस वातावरण मे जीवन के मूल्यो का अध्ययन करता था उसमे शक्ति बुद्धि को प्रणति देती थी और ज्ञान साधना के निकट नतमस्तक रहता था। बुद्धि और हृदय का समन्वय ही ऐसा ज्योतिद्वार था जिसे पार कर कर्म-क्षेत्र मे प्रवेश सम्भव हो सकता था।

मेरे कथन का यह तात्पर्य नही कि हम हजारो वर्ष पीछे लौट जावें। यह तो सम्भव भी नही है और यदि सम्भव भी होता तो यह प्रत्यावर्तन किसी जीवित जाति का लक्षण नहीं कहा जा सकता। लक्ष्य इतना ही है कि संकीर्णता और अनुदारता दूर रखने की परम्परा हमारी शिक्षा की आधार शिला रही है। आज भी हमारी शिक्षा का उद्देश्य अपने आपको सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक स्वस्थ्य और पूर्ण मनुष्य बनाना होना चाहिए, क्योकि उसके अभाव मे हम अपनी युगव्यापी विषमता से संघर्ष करने मे असमर्थ रहेंगे।

गत कई शताब्दियो से हम परतन्त्र रहे हैं और परिस्थितियो से उत्पन्न गतिरोध ने हमारी दृष्टि के सामने एक ऐसी कुहेलिका उत्पन्न कर दी है कि हम भविष्य की किसी रूपरेखा की कल्पना ही नही कर पाते और ऐसी कल्पना के बिना निर्माण सम्बन्धी शक्ति और साधनों का प्रश्न ही नही उठता। हमारी स्थिति उस शिल्पी के समान है जो अपने औजारो से खेलकर ही शिल्प कर्म की कमी पूरी कर लेता है।

आज हम राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र हैं, किन्तु राजनीतिक स्वतन्त्रता अपने आप मे निरपेक्ष साध्य नही है। बुद्धि को जडता से, संस्कृति को रूढ़िग्रस्तता से और जीवन को विषमता मे मुक्ति दिलाने के लिए राजनीतिक स्वतन्त्रता साधन मात्र रहेगी। यदि हम उसी को साध्य मान लेने की भूल करेंगे, तो अपने जीवन को और भी संकीर्ण कारावद्ध कर लेंगे। पात्रता का प्रमाण किसी वस्तु के उपयोग की क्षमता मे मिलता है, उसे पा लेने मात्र मे नही। अच्छे से अच्छे अस्त्र के प्रयोग मे यदि दिशा ज्ञान न रहे तो वह चलाने वाले के शरीर को भी आहत कर सकता है।

हमारे वर्तमान दृष्टिकोण की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि वह जीवन को आदर नही

देता, अत जीवन के मूल्यों के सम्बन्ध में भ्रम हो जाना अनिवार्य हो जाता है। हम ऐसे पुजारी हैं जो देवता से अधिक मुखर होने के कारण शङ्ख घड़ियाल को गूंजने लगे हैं।

समय ने जैसी चुनौती आपको दी है, किसी अन्य युग के विद्यार्थी को कदाचित् ही मिली हो।

हमारे विजय के शङ्ख रव के नीचे जीवन का हाहाकार गूंज रहा है, हमारी मुक्त आकाश मे फहराती हुई पताका के तले ही दुख और अभावो का ससार बसता जा रहा है और हमारे स्वत्व के प्रसाद की छाया मे जीवन के खण्डहर बिखरते जा रहे हैं।

भावी नागरिक के नाते आपके कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व इतने विविध और गुरु हैं कि विशेष तैयारी के अभाव मे उन्हे आप न सभाल सकेंगे। आपका इसी क्षत-विक्षत मानवता को स्वस्थ शरीर देना है। इसी खण्डहर मे जीवन का प्रासाद बनाना है और इसी राख को शस्यश्यामला धरती मे परिवर्तित करना है।

ऐसे युग मे उत्पन्न होना सौभाग्य और दुर्भाग्य दोनो हो सकता है। यदि आप अपने परिश्रम से इस विकलाग ससार को सुन्दर रूप दे जावें, तो ऐसे कठिन युग मे उत्पन्न होना वरदान है और यदि आप अपने जीवन को भी परिस्थितियो के साँचे मे ढलकर विरूप बन जाने दें, तो इस अभिशाप ही कहना उचित होगा।

कृत्रिम उष्णता देकर और वर्षा आँधी से बचाकर जिन पौधों की रक्षा की जाती है, उनमे वे देवदारु के वृक्ष श्रेष्ठ हैं जिनकी जड़ें पर्वत के कठिन नीरस पत्थरों से संघर्ष करके अपनी स्थिति बनाये रखती हैं और जिनका मस्तक अताप और हिमपात, झझा और वज्रपात सब कुछ सहकर भी मुक्त आकाश में उन्नत रहता है।

मेरा विश्वास है कि आप अपने युग की अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकेंगे!

आपके शिक्षा-केन्द्र आपको जीवन के नव-निर्माण के साधन देने मे अभी इतने समर्थ नहीं हैं जितने अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों के हो सकते हैं। वे जिस परतन्त्र युग की कठिन परिस्थितियों के साँचे में ढाले गए हैं, उसकी जड़ीभूत रेखायें उन्हें बाँधे हुए हैं। परतन्त्र देश का ज्ञानवैभव न शासको से सम्मान पाता है और न शासितों से, अत. यह दोहरी उपेक्षा उसे एक विशेष अस्वाभाविक स्थिति दे देती है।

आप बौद्धिक दासता से मुक्ति पाने के लिए जीवन पुस्तक के खुले बिखरे पृष्ठों पर भी दृष्टि रखें। उससे बड़ी विशाल पर सरल भाषा मे लिखी कोई अन्य पुस्तक नहीं है।

आप अपनी सम्मेलन सभाओ को भी पारस्परिक विचार-विनिमय, सौहार्द तथा सद्भाव के आदान प्रदान का केन्द्र बनाने का प्रयत्न करते रहें। उन्हें राजनीतिक दलों के आदर्श पर चलाने पर आपको वे सभी त्रुटियाँ अपनानी पड़ेंगी जिनके कारण समस्त मानव-समूह केवल स्वपक्ष और विपक्ष में बंट जाता है।

यह सत्य है कि जीवन के सब विभाग आज इस प्रकार मिल-जुल गए हैं कि उनकी सघर्षशीलता अनिवार्य हो उठती है, परन्तु प्रयत्न का चरमबिन्दु विकास ही रहना चाहिये। यदि हम अपनी समस्त क्रियाशीलता की परीक्षा कर उसे मानव-कल्याण की दिशा मे मोडते चले, तो यह कार्य इतना दुष्कर नही रहेगा। एक ही देवता के पुजारियो मे श्रद्धा की मात्रा मे अन्तर चाहे रहे, परन्तु विरोध का प्रश्न नहीं उठता।

आपको उत्तराधिकार मे अतीत का सास्कृतिक वैभव भी प्राप्त है और वर्तमान जीवन की अकिंचनता भी। आप अपने दायित्व का इस प्रकार निर्वाह करें कि यह दोनो सीमा-रेखायें एक दूसरे के समीप आ सकें।

एक यात्री दूसरे यात्रियो को शुभकामना के अतिरिक्त और सम्बल क्या दे सकता है। अत 'शुभास्त पन्थान' के साथ विदा लेती हूँ।'

भाषण समाप्त हो गया पर उसकी गूंज अब भी मेरे कानो मे बनी हुई है। यह महाप्राण देह क्या कभी भुलाया जा सकता है!

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

73

30 ए बली रोड
इलाहाबाद
19/3/49

आदरणीय मानव जी

प्रयाग मे आपके ये दो तीन दिन सुन्दर बीते। मेरा तो ऐसा विचार है कि आपको प्रयाग आ ही जाना चाहिये। मैंने किसी पुस्तक मे पढा था कि कलाकार को किसी एक स्थान मे बँधकर नही रहना चाहिये। इस दृष्टि से आपका लखनऊ का एक वर्ष बहुत तो नही पर फिर भी लगता है बहुत हो गया। आपके लखनऊ आ जाने पर मुझे ऐसा लगा था कि यह आपके जीवन मे एक नए जीवन का सचार करेगा और वहाँ का क्रियाशील रुपहला वातावरण आपके अतर मे उमडे हुए उदासी के बादल चीर देगा, जिससे सृजनात्मकता की शिराओ मे नवीन रस का सचार होगा, पर लगता है आपके प्राणो की उस वृत्ति के अनुकूल या तो उस नगर का वातावरण नही या फिर वह नगर कलाकार की सौंदर्य वृत्ति को तुष्ट करने मे जितना अधिक समर्थ है, उतना ही उस कलात्मक अभिव्यक्ति दिन ने मे असमर्थ भी। मैं समझता हूँ इस कला और सस्कृति के केन्द्र प्रयाग मे कदाचित् आपको साहित्य सृजन का अनुकूल आधार मिल जाये।

आपके पत्र की प्रतीक्षा मे—

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

30 ए, बेली रोड
इलाहाबाद
4/4/49

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका पत्र 2/4 की मध्याह्न मे मिल गया था। इस बार आपने पत्र ने प्रतीक्षा बहुत करायी ?

परीक्षा के छह दिन शेष रह गये हैं। जैसे-जैसे दिन पास आते जा रहे हैं, लगता है कोर्स की शुष्क और निर्जीव पुस्तकें प्राणवान होती जा रही हैं। पहले जिन पर धूल जमी देखकर भी उपेक्षा कर जाता था, अब उनमें डर लगता है। आप शायद हँसे, पर सच समझिये कभी-कभी सुबह को जब थका-माँदा सो कर उठता हूँ तो सबसे पहले सिरहाने रखी हुई कूट-नीति की पुस्तको को हाथ जोड़ने को मन होता है। अब तो यही डर लगा रहता है कि कही ये पुस्तकें रूठ न जायें।

परसो संध्या को महादेवी जी से मिलने चला गया था। उनसे मिलने पर जो प्रसन्नता होती है, उसे बहुत दिनो तक अपने मे ही सीमित रखना मेरे लिये कठिन हो जाता है, इसलिये इस समय पुस्तकें एक ओर रखकर पत्र लिखने बैठ गया हूँ।

महादेवी जी का स्वास्थ्य इन दिनो अच्छा है और वे कुछ अधिक प्रसन्न भी हैं। मेरा स्वास्थ गिरा हुआ देख कर उन्होने पूछा "क्यो कैसे हो ?"

"कुछ नही, अब तो चार दिन बाद परीक्षायें हैं। पुस्तकों मे जुटा रहना पड़ता है।"

"तभी इतने थके हुये से लग रहे हो !"

मैं बोला, "अच्छा, आप अपने हाथ का एक चित्र तो यूनियन को दे दीजिये।"

"वह मैं दे दूँगी। महात्मा बुद्ध का एक बड़ा-सा चित्र ठीक रहेगा, पर यहाँ अभी इतना बड़ा कोई अच्छा कागज नही मिल रहा !"

"मैंने आपके हाथ का महात्मा बुद्ध का एक चित्र आत्माराम जी के यहाँ देखा था ! मुझे तो सुन्दर लगा !"

"वह तो जल्दी में उसके जन्म-दिन पर बनाकर उसे दे दिया था।"

"जल्दी तो आप सभी चित्र बना लेती हैं।"

"हाँ, चित्र बनाने मे कोई अधिक देर तो लगती नही। जब तूलिका चल गई तो चित्र के पूर्ण होने मे पन्द्रह मिनट से अधिक मुझे कभी नही लगे।"

"मैं समझता हूँ चित्रकार का समय ड्राइंग पर अधिक लगता है। रंगो से उसे सजीवता प्रदान करने मे उतना नही लगता। आप रंगो का सबल लेकर ही चलती हैं, ड्राइंग का नही ?"

"हम अपने को चित्रकार ही कब कहते हैं ?" महादेवी जी ने सहसा एक हल्का सा प्रश्न मेरे सामने फेंक दिया, पर मुझे लगा कि जैसे उस प्रश्न का उत्तर भी उ प्रश्न में ही निहित है।

"यह निर्णय करना तो दूसरा का काम है। यदि हमे आपके चित्र भाते हैं तो हमे आपको चित्रकार कहने से कौन रोक सकता है ?" मैंने कहा। फिर पूछा--

"आपकी रग योजना की शैली पश्चिमी शैली के अधिक निकट लगती है पर ह चित्र मे Figures आपकी अपनी ही होती है कोई यही का चित्रकार कह रहा था कि आपके चित्रो पर शम्भुनाथ मिश्र का प्रभाव है ?

"शम्भुनाथ जी तो मुझसे हमेशा मेरे चित्रो की रग योजना तथा रेखाओ के लि झगडते रहे हैं। तब उनके प्रभाव की तो बात ही नही उठती। उनका रास्ता अल है, मेरा अलग। उन्हे मोटी-मोटी रेखायें भाती हैं, मुझे उकील ब्रदर्स की सी सूक्ष पर घनी नही, बल्कि कनुदेसाई की भांति कम से कम। उन्हे गहरे रग पसद है औ मुझे हल्के।"

'पर क्या शभुनाथ जी चित्रकला मे आपके गुरु नही रहे ? चित्रकला तो आप यहाँ इलाहाबाद मे ही सीखी होगी ?"

नही, चित्रकला तो मैं बचपन म इदौर मे ही सीखती रही थी। हमारे गुरु ए मराठी सज्जन श्री सदाशिव राव थे। रगो पर तो उनसे भी झगडा रहता था। ए बार एक चित्र मे मैंने सीता जी को हलके गेरुए रग की साडी पहना दी। शाम जब गुरु जी आये तो बोले सीता तो एक विवाहिता राजरानी हैं। उन्हें लाल सा पहनाओ। उनके कहने मे मैंने उनके सामने उस पर लाल रग फेर दिया। पर ज वे चले गये तो फिर उस पर वही पुराना रग चढा दिया। इस तरह पता नहीं उ पर कितनी बार रग चढे और उतरे। वह चित्र मेरे पास अब भी रखा है।"

इस पर मैं हँस पडा। मैंने पूछा, "अब बताइये।" सीता जी की साडी प आपका रग है या गुरु जी का।"

"मेरा ही है।"

'आपके पास तो बहुत स रग तथा बहुत से ब्रुश होगे।"

"बहुत से कहाँ ? मेरे पास तो गिने हुए तीन रग और दो ब्रुश हैं।"

"अच्छा ?" मैंने आश्चर्य स कहा, "पर आपके चित्रों मे तो बहुत रग मिलते हैं

"बहुत से कहाँ हैं। मेरे पास तो White, Cina blue और Pink बस तीन तो रग हैं। अन्य रग इन्ही को एक दूसरे मे मिलाकर बना लिये जाते हैं।"

"आपके पास ब्रुश कौन-कौन से नबर के हैं ?" मैने पूछा।

'एक बारीक जीरा नबर का और एक मोटा 5 का। बस।"

"उपकरणो की दृष्टि ये जिन आचार्यो ने चित्रकला को काव्य के बाद रक्खा था र दूसरा स्थान दिया था, आपके रग और ब्रुश तो उनके लिये निस्सदेह चुनौती लगता है आप चित्रकला को काव्य के स्थान पर विभूषित करने मे प्रयत्नशील एक कवि को भी तो लेखनी और मसि-पात्र चाहिये। मैं समझता हूँ आपके तीन और दो ब्रुश कदाचित् ही उस लेखनी और मसि पात्र से अधिक मारी हो?"

"रवीन्द्र नाथ टैगोर के बहुत से चित्र तो उनकी कविता लिखने वाली लेखनी से बने हैं। रवीन्द्र नाथ कमी कमी कविता लिखते लिखते जब उसे काट देते थे तो ा काटने मे ही चित्र बना देते थे। लगता है जैसे रवीन्द्र की चित्रकला उनकी वेता का विराम हो। उपकरणो की बात यदि हम जाने दें, तो मूलत सब कलायें ़ ही हैं।" महादेवी जी ने कहा और मैं मत्र मुग्ध सा सुनता रहा। सहसा पास के ़ मे घटे बज उठे। मैं चौंक कर खडा हो गया। मैंने हाथ जोडकर विदा मांगते महादेवी जी से कहा, "अच्छा अब मैं चलूँ।"

"अच्छा, तुम्हे पढना है, जाओ।'

मैं बाहर बरामदे मे आ गया। महादेवी बाहर तक आई। उन्होने आपके विषयें पूछा, "मानव जी 'किताब-महल' म आने वाले थे? अभी नही आये लगत?"

"किताब महल वालो ने उन्ह पहली एप्रिल को आने को लिखा था। उन्होने उनर या है, पहली एप्रिल को तो क्या आऊँगा?"

महादेवी जी हँस पडी।

और मैं चला आया।

मिस कैंप का एक पत्र पाँच दिन हुए लदन से आया था। अब तो आप स्थायी प से प्रयाग मे रहने के लिए आ ही रहे हैं। कहने के लिए बहुत कुछ है। पत्रों में ब कुछ लिखा भी तो नही जा सकता। मिलने पर बतलऊँगा।

सश्रद्धा

परिशिष्ट

महादेवी जी के गीतों के सम्बन्ध मे 'मानव' जी की ऐसी धारणा रही है कि उनकी मार्मिकता सार्वकालिक एव सार्वदेशिक होने से वे विश्व-साहित्य की निधि हैं, अत. बहुत दिनो तक वे इस प्रयत्न में रहे कि यदि उनके चुने हुए 100 गीतो का अंग्रेजी मे अनुवाद करने वाला कोई उपयुक्त व्यक्ति मिल जाए तो बाहरी ससार को हिन्दी-काव्य की समृद्धि और शक्ति का परिचय मिल सकता है। इस काम के लिए समय समय पर कई व्यक्तियो को चुना गया, पर सतोष नही हुआ। अन्त मे मैंने अपने मित्र नन्दकुमार को उनसे मिलाया। नन्द कुमार जी अंग्रेजी के कवि हैं, पर उनकी मातृ-भाषा गुजराती होने के कारण हिन्दी बहुत अच्छी नही जानते। अत. यह निश्चय हुआ कि पहले प्रत्येक गीत की व्याख्या और सौन्दर्य की विवेचना 'मानव' जी कर दें और फिर नन्दकुमार जी उसका अनुवाद करें। इस पद्धति पर सबसे पहले 'रश्मि' के 'दीप' शीर्षक गीत का अनुवाद हुआ। यह अनुवाद स्वीकृति और सशोधन के प्रस्तावों के लिए महादेवी जी के पास भेजा गया, परन्तु बहुत दिनों तक इसका कोई उत्तर नही मिला। इसी बीच नन्दकुमार जी बम्बई चले गए और फिर उनका लौटना नही हुआ। प्रारम्भिक पत्रो मे इसी अनुवाद की चर्चा हुई। अनुवाद मूल सहित नीचे दिया जा रहा है।

नागर

दीप

किन उपकरणों का दीपक
किसका जलता है तेल ?
किसकी वर्ति, कौन करता
इसका ज्वाला से मेल ?

शून्य काल के पुलिनों पर
आकर चुपके से मौन,
इसे बहा जाता लहरों में
वह रहस्यमय कौन ?

कुहरे-सा धुँधला भविष्य है
है अतीत तम घोर,
कौन बता देगा जाता यह
किस असीम की ओर ?

पावस की निशि में जुगनू का
ज्यों आलोक-प्रसार,
इस आभा मे लगता तम का
और गहन विस्तार ।

इन उत्ताल तरंगों पर
सह झंझा के आघात
जलना ही रहस्य है, बुझना
है नैसर्गिक बात ।

THE LAMP

Which matter constituteth, this lamp of mystic glory ?
Which oil doth cause its burning, to tell in flame its story ?
Whose is the wick ? Enkindleth who ? What maketh it so bright ?
Who passeth unknowingly, and flames with it unite ?

On eternity's shore, midst voidness, who doth come ?
Pacing silent and gentle, so quiet and so dumb,
To leave it on the waters floating up all alone,
Who is so mysterious, so hidden, so unknown ?

As though in foggy dimness, its future is enshrouded.
Its past to it is as if in dead of dark enclouded.
Who can its course ditermine, and destination know ?
To what unconfined object, doth it unconcious flow ?

The more the glow worms twinkle, while in the rainy-night.
The denser grows the darkness, to its deluding sight,
Embracing crazy waters, under the stormy sway.
Itt glowing is but mystic, no wonder its decay.